Copies of This Volume, postage paid, may be had from your usual Book-seller or from The Director, Mithila Institute, Darbhanga, on pre-payment either in cash, Postal Order or M. O. of Rs. 10.00 for Ordinary edition and Rs. 12.50 for Library edition

The entire cost of preparation and production of this Volume has been met out of a subvention kindly placed at the disposal of the Institute by 2500th Buddha Jayanti Celebration Committee and the Government of India, Ministry of Education.

Printed by Laxmibai Narayan Chaudhari, at Nirnaya Sagar Press, 26-28 Kolbhat Street, Bombay 2, and Published by Dr. P. L. Vaidya, Director, Mithila Institute, Darbhanga, Bihar.

अनुक्रमणिका ।



INTRODUCTION

(1) The Edition

The Avadānaśataka or Century of Noble Deeds of Lord Buddha was edited by Dr. J. S. Speyer of Leiden University (Holland) and published in the Bibliotheca Buddhica III, in 1906–9 (B in marginal references). The present edition is based on this edition, with such modifications as required by modern trends of thought and advance in textual criticism. For fixing his text Dr. Speyer utilised four Mss., three in Nepalese and one in Devanāgarī scripts and fragments of a fifth. He utilised also the Tibetan and Chinese translations, Féer's French translation of the work, as also the texts of the Divyāvadāna, Kalpadrumāvadāna, Bhadrakalpāvadana, Aśokāvadāna, Vicitrakarnikāvadāna, Ratnāvadānamālā, Dvātrimśatyavadanamālā and Avadānakalpalatā of Ksemendra. His careful study of this vast material has given us a very readable text of this work. Many of his foot-notes may appear to be superfluous now as textual criticism has made a great advance since the days of Speyer; they only indicate a very methodical handling of his Mss. material. I have retained as many of his foot-notes as appeared to me quite necessary.

(2) The Avadāna Literature

The term Avadāna, Sk. Apadāna, primarily means good, illustrious, heroic or noble act. It sometimes designates *Buddhavacana* and constitutes seventh of the twelve *Dharma Pravacanas* of Sanskrit Buddhism. There must have been a vast literature under this class of which only a fraction is preserved in Mss. We have got only four works in print, viz., Divyāvadāna, Jātakamālā, Avadānakalpalatā and the present work. A few more are printed here and there. It appears from references in the Kalpadrumāvadānamālā, tenth story of which is printed here in Appendix I, that some scholars specialised in this class of literature and were known as Avadānārthakovida (St. 162) or Āvadānika (St. 106), just as some monks were called Suttantika or Ābhidhammika or Suttadhara and Vinayadhara. The Avadāna type of literature, is closely related to the Jātaka literature with this difference that Jātaka stories usually refer to the past life of Buddha as Bodhisattva, while in avadānas Buddha himself plays an important role.

*

The Avadānas and Jātakas do not belong to the higher plane of Buddhist teaching; they do not pretend to afford scope for higher philosophical study or meditation, and hence perhaps works like Jātaka, Apadāna, Petavatthu, Vimānavatthu, Buddhavaṃsa, Cariyāpiṭaka, Theragāthā and Therīgāthā do not find place in Siamese Tripitaka. They are found to have a place in the Vinaya and Sutta Piṭaka in their Pali and Sanskrit versions.

The Avadāna literature can be classified into three types, two of them canonical and the third post-canonical. The first is to be found in Vinaya texts or Sūtras in the episodes or examples of rules. The Divyāvadāna belongs to this class. The second canonical type is represented by Apadāna and Jātaka. The third is represented by all later collections of avadānas or single avadānas, remnants of which in Sanskrit constitute only a small portion of what once existed.

(3) The Avadānaśataka and its Translations

The Avadānaśataka, according to Wessillief, belongs to the first preaching period of Śākyamuni, indicating a high antiquity of the work. It was translated into Chinese in the first half of the 3rd century A. D. as stated in Nanjio's Catalogue, No. 1324. In Avadāna No. 83 there is a mention of Dīnāra as a minted coin (lakṣaṇāhataṁ dīnāradvayam). This indicates that the present collection must be placed later than the beginnin of the Chistian era. It would not be far from wrong if we place the date of the present work at about 100 A. D. The Tibetan translation of the Avadānaśataka is found in Tanjur, Mdo. XXIX. Burnouf drew attention of scholars in his work *Introduction à l' Histoire du Buddhisme* and gave translations of portions from it. Léon Féer published a translation of the whole work in French in AMG. Vol. XVIII, using the Tibetan translation. Dr. Speyer frequently refers to this translation as well as personal correspondence with Féer in his notes in deciding doubtful passages of the text. He has also utilized the Divyāvadāna, and several unpublished avadānas in manuscripts.

(4) The Contents

The stories in the Avadānaśataka are divided into ten sections or vargas of ten stories each. The fifth story is unfortunately lost in the original Sanskrit, but is preserved in its

I should like to draw the attention of the reader to a chronological statment in story No. 100, in which the time which elapsed between Buddha's Parinirvāṇa and the days of Aśoka and Upagupta is mentioned as hundred years, while the tradition as recorded by Buddhaghosa, with a detailed chronological data, gives this to be 218 years. A good deal of the text of Nos. 40 and 100 has been borrowed from a Sanskrit redaction of the Mahāparinirvāṇa Sūtra. There are similar parallelisms; e.g., a portion of No. 99 is equal to Majjhima Nikāya No. 74, and of No. 90 equal to No. 82.

There is one more point to be noted. The difference between Avadānaśataka and other Avādānamālās is that the authors of the latter works were followers of Mahāyāna. The introduction of Bodhisattvas among attendants of Buddha, references to Amitābha and Sukhāvatī in those works clearly prove this point.

Mithila Institute,
Darbhanga,
20-1-1957

P. L. V.

भूमिका

१ सम्पादन

अवदानशतक अथवा भगवान् बुद्ध के सत्कर्मशतक का सम्पादन लीडेन यूनिव्हर्सिटी हॉलेंड के डा. जे एस् स्पेयर ने किया और उसका प्रकाशन १९०६–९ में Bibliotheca Buddhica III में हुआ था। यह संस्करण, उक्त संस्करण का आधार लेकर वर्तमान विचारशैली और ग्रन्थसंस्कारपद्धति में प्रगति के दृष्टिकोण से उपयुक्त सपरिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। मूल आवृत्ति में ग्रन्थनिश्चिति के लिये डॉ स्पेयरने चार मातृकाओ का उपयोग किया था। जिनमे से तीन नेपाली मे और चतुर्थ देवनागरी लिपि में थीं, अज्ञात प्राप्त पंचम मातृका का भी उन्होने उपयोग किया था। उनके द्वारा उपयोग में लाये गए अन्य ग्रन्थो में तिब्बती तथा चीनी अनुवाद, फीयर महोदयकृत फ्रेंच अनुवाद, दिव्यावदान, कल्पद्रुमावदान, भद्रकल्पावदान, अशोकावदान, विचित्रकर्णिकावदान, रत्नावदानमाला, द्वात्रिंशत्यवदानमाला और क्षेमेन्द्ररचित अवदानकल्पलता का भी उल्लेख किया जा सकता है। उनके उपर्युक्त असीम सामग्री के गहन अध्ययन के फलस्वरूप ही यह ग्रन्थ इतना पठनीय होसका। वर्तमान काल में उनकी बहुतसी टिप्पणियाँ अनावश्यक प्रतीत होगी, क्योकि डा. स्पेयर के समय से अबतक के काल में ग्रन्थसंस्कारपद्धति में अत्यधिक प्रगति हो चुकी है। उससे केवल उनका मातृकाओ को विधिवत् तथा कुशलतापूर्वक काम में लाना सिद्ध होता है। जो टिप्पणियॉ मुझे अधिक आवश्यक प्रतीत हुई उनको मैंने अधिक से अधिक सख्या में सुरक्षित रक्खा है।

२ अवदान–साहित्य

अवदान अथवा संस्कृत अपदान शब्द का प्राथमिक (मूल) अर्थ समीचीन, शिक्षात्मक, वीरतापूर्ण कार्य अथवा सत्कर्म है। इसको कभी कभी बुद्धवचन की संज्ञा भी दी जाती है, और यह संस्कृतबौद्धमत के द्वादश धर्मप्रवचनों में सप्तम है। यह अनुमान करना असङ्गत नही कि इस विभाग के अन्तर्गत एक अपरिमित साहित्य रहा होगा, जो मातृकाओं में आंशिक रूप से सुरक्षित है। दिव्यावदान, अवदानकल्पलता तथा प्रस्तुत ग्रन्थ ही मुद्रितरूप में विद्यमान हैं। कुछ अन्य अवदान भी यत्र तत्र प्रकाशित हुए हैं। परिशिष्ट में प्रकाशित कल्पद्रुमावदान में आये हुए प्रसङ्गों से यह सिद्ध होता है कि कुछ विद्वानों ने इस प्रकार के साहित्य में विशेष योग्यता प्राप्त की थी। फलस्वरूप वे अवदानार्थकोविद (श्लोक–१६२) अथवा आवदानिक (श्लोक–१०६) के नाम से उसी प्रकार प्रसिद्ध थे जैसे कि कुछ भिक्षु सुत्तन्तिक, अभिधम्मिक, सुत्तधर और विनयधर

कहलाते थे । अवदान–साहित्य का जातक–साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है । अन्तर केवल इतना है कि जातक–कथाएँ बुद्ध के विगत जीवन के विषय में हैं, जबकि अवदान–कथाओं में प्रमुख पात्र स्वयं बुद्ध ही हैं । अवदान–साहित्य तथा जातक साहित्य में बुद्ध के उच्च अथवा तत्त्वज्ञानात्मक उपदेश नहीं पाये जाते । समाधि तथा तत्त्वज्ञान के लिये भी कोई निर्देश नहीं है, और संभवतः इसीलिये जातक, अपदान, पेतवत्थु विमानवत्थु, बुद्धवंश, चरियापिटक, थेरगाथा और थेरीगाथा आदि कृतियों के लिये सयामी त्रिपिटक में कोई स्थान नहीं मिल सका । पाली तथा संस्कृत विनयपिटक तथा सूत्रपिटक में इन को स्थान अवश्य मिला है ।

अवदान–साहित्य को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है । जिनमें से दो पाली त्रिपिटकसदृश ग्रन्थों में संगृहीत हैं और तृतीय उनपर आधारित है । प्रथम वर्ग विनयसाहित्य के अन्तर्गत-कथाओं के सूत्रों में अथवा सैद्धान्तिक उदाहरणों में उपलब्ध है । दिव्यावदान इसी वर्ग के अन्तर्गत है । द्वितीय, प्राचीन उपदेशात्मक वर्ग का, प्रतिनिधित्व अपदान तथा जातक-साहित्य करते हैं, तथा अवदान-साहित्य अथवा स्वतन्त्र अवदान के उत्तरकालीन संपूर्ण संग्रहों में तृतीय वर्ग प्राप्त है और विद्यमान संस्कृत-साहित्य में इसका एक अतीव अल्प-अंश उपलब्ध है ।

२ अवदान–शतक तथा उसके अनुवाद

रुसी इतिहासज्ञ वॉसिलियेफ महोदय के अनुसार शाक्यमुनि के प्रथम उपदेश-काल में अवदानशतक की रचना हुई, जिससे उसकी प्राचीनता का प्रमाण मिलता है। नान्जियो के कॅटलॉग क्रमाङ्क १३२४ में प्राप्त उल्लेखानुसार तृतीयशताब्दि के प्रथमार्द्ध में इसका चीनीभाषा में अनुवाद हुआ । क्रमाङ्क ८३ की कथा में मुद्राके लिये दीनार शब्द का प्रयोग किया गया है (लक्षणाहतं दीनारद्वयम्) यह इस बात को प्रमाणित करता है कि प्रस्तुत संग्रह का संकलन ईसवी सन के प्रारम्भ के अनन्तर हुआ था । ईसवी सन के प्रथम शतक में इसका रचनाकाल मानना अनुचित न होगा । अवदान-शतक का तिब्बती अनुवाद तांजुर खण्ड के Mdo XXIX में पाया गया है । Burnouf महोदय ने Introduction àlth's Histoire du Buddhisme के द्वारा विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है । तिब्बतीय अनुवाद की सहायता से लिओ फीयर महोदय ने इस संपूर्ण ग्रन्थका अनुवाद AMG Vol. XVIII में प्रकाशित किया था । डॉ० स्पेयर की स्फुटटिप्पणियों में उक्त अनुवाद तथा मूलग्रन्थ के संदिग्ध स्थलों के निर्णय के लिये फीयर महोदय के साथ किये गए निजी पत्रव्यवहार का बहुत स्थलों पर उल्लेख किया है । उन्होंने दिव्यावदान तथा अन्य बहुतसी अप्रकाशित अवदान-मातृकाओं का भी उपयोग किया है ।

४ विषयसूची

अवदान-शतक की कथाएं दस वर्गों में विभाजित हैं। प्रत्येक वर्ग में दस कथाएं हैं। दुर्भाग्य से पंचम कथा लुप्त है। प्रत्येक वर्ग की एक स्वकीय विशेषता है। प्रथम तथा तृतीय वर्ग में बुद्ध तथा प्रत्येक बुद्ध के सम्बन्ध में भविष्यवाणी अथवा व्याकरण का वर्णन है। चालीसवीं कथा को छोडकर द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ग के अवदानों में भगवान् बुद्ध के अतीत जीवन का उल्लेख है। यद्यपि द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ग में क्रमशः वर्तमान और विगत जीवन की कथायें ही मुख्य हैं इसीलिये चतुर्थवर्ग की कथा का जातक-कथा से साम्य है। पंचम वर्ग में प्रेतकथायें हैं जिनका पाली पेतवत्थु ग्रन्थ में निर्दिष्ट कथाओं से साम्य है। षष्ठ वर्ग की कथायें उन व्यक्तियों के विषय में हैं जिन्होने सत्कर्मों के पुण्यफलस्वरूप स्वर्ग को प्राप्त किया। सप्तम से दशम वर्ग की कथाओं के नायकों का अर्हत् बनने का वर्णन है। सप्तम वर्ग की कथाओं के सब नायक शाक्यकुलोत्पन्न हैं। अष्टम वर्ग के कथानायक स्त्रीपात्र हैं। दशम वर्ग की कथाओं में पूर्वजन्म मे किये गए दुष्कर्मों के दुष्परिणामो का वर्णन है जिनके कारण पुण्यात्माओं को अन्तिम जन्म में भी कष्टों का अनुभव करना पडा। संग्रह की अन्तिम कथा, मुख्यकथा को अशोक तथा उपगुप्त के समय से सम्बन्धित करती है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि अवदान-शतक एक संस्कृत कृति है और इसका सम्बन्ध हीनयान अथवा थेरवाद परम्परा से निगडित है। चीनी बौद्धमत के अनुसार अवदान-शतक हीनयान सम्प्रदाय का ही ग्रन्थ है, क्योंकि इसमें महायान सिद्धान्तों का पूर्ण अभाव, शैली की तुलनात्मक सरलता, तथा समान अंशों की पुनः पुनः आवृत्ति है।

संस्करण में आये हुए समान अंशों की पुनरावृत्ति के प्रसङ्ग के विषय में अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। पचीस से अधिक अंशों का संग्रह द्वितीय परिशिष्ट में दिया गया है, जो प्रत्येक कथा का आवश्यक अङ्ग कहा जा सकता है। कुछ अवतरणों का यहां उल्लेख किया जाता है:—

प्रारम्भिक अवतरण जिसमें बुद्ध का वर्णन है; कथाओं का अन्तिम वाक्य जिस में भिक्षुओं ने बुद्धोपदेश की प्रशंसा की है; बुद्ध के स्मित तथा उसके परिणाम का वर्णन, बुद्ध का संसार की तरफ़ किसी पीडित की खोज करते हुए देखना, जिसको वे मुक्त कर सकें; अर्हत् के गुण, सन्तानप्राप्ति के स्वाभाविक कारण; गर्भवती स्त्री के उपचार तथा शिशुपरिचारिकाओं का वर्णन; राजा तथा देश; कर्मविपाक सिद्धान्त का वर्णन; नवजात देवता का बुद्ध के पास रात्रिकालीन आगमन; तथा भिक्षुओं की प्रार्थना पर बुद्धद्वारा सुनाई गई विगत जीवन की कथाओं की प्रस्तावना। इन में से बहुतसे अवतरण दिव्यावदान ग्रन्थ में कभी विस्तृत रूप में तथा कभी यावत् शब्द से निर्दिष्ट

संक्षिप्तरूप से प्राप्त हैं। परन्तु अवदान-शतक में यावत् अथवा पेय्यालं शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। अपि तु उक्त अवतरण हमेशा संपूर्ण तथा विस्तृतरूप में दिये हैं।

पाठक का ध्यान अवदान-शतक की १०० वीं कथा में दिये गये कालसम्बन्धी वक्तव्य की ओर आकर्षित करना आवश्यक है, जिसमें बुद्ध परिनिर्वाण से लेकर अशोक तथा उपगुप्त तक का समय १०० वर्ष का बताया है, जबकि बुद्धघोष ने दी हुई परम्परागत समयानुक्रमणिका के अनुसार यह स्पष्ट है कि उक्त समय २१८ वर्ष का है। कथा क्रमाङ्क ४० तथा १०० का बहुत कुछ अंश महापरिनिर्वाणसूत्र की संस्कृत या पाली आवृत्ति से उद्धृत है। इस प्रकार के कुछ और भी समानान्तर उद्धरण इसमें हैं जैसेः—

क्रमाङ्क ९० = मज्झिमनिकाय ८२
„ ९९ = „ „ ७४

यहां एक और बात भी उल्लेखनीय है, अवदान-शतक तथा अन्य अवदानमालाओं में यह अन्तर है कि अवदानमालाओं के लेखक महायान सम्प्रदाय के माननेवाले थे। बुद्ध के परिचारकों में बोधिसत्त्व का परिचय, अमिताभ तथा सुखावती के प्रसङ्ग इस बात को स्पष्टतया प्रमाणित करते हैं।

मिथिला विद्यापीठ
दरभंगा
२०–१–५७

प. ल. वै.

अवदानशतकम् ।

॥ नमः श्रीसर्वज्ञाय ॥

प्रथमो वर्गः । B 1

तस्योद्दानम्—

पूर्णभद्रो यशोमती कुसीदो वणिजस्तथा ।
सोमो वडिकः पद्माङ्कः पद्मालो धूप एव च ।
राजानं पश्चिमं कृत्वा वर्गो ह्येष समुद्दितः ॥ १ ॥

१ पूर्णभद्रः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किंनरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिंनरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे । तत्र भगवतोऽचिराभिसंबुद्धबोधेर्यशसा च सर्वलोक आपूर्णः ॥ B 2

अथ दक्षिणागिरिषु जनपदे संपूर्णो नाम ब्राह्मणमहाशालः प्रतिवसति आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । स च श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलस्त्यागरुचिः प्रदानरुचिः प्रदानाभिरतो महति त्यागे वर्तते ॥

यावदसौ सर्वपापण्डिकं यज्ञमारब्धो यष्टुम्, यत्रानेकानि तीर्थिकशतसहस्राणि भुञ्जते स्म । यदा भगवता राजा बिम्बिसारः सपरिवारो विनीत॰, तस्य च निनयाद्बहूनि प्राणिशतसहस्राणि विनयमुपगतानि, तदा राजगृहात्पूर्णस्य ज्ञातयोऽभ्यागत्य पूर्णस्य पुरस्ताद्बुद्धस्य वर्णं भाषयितु प्रवृत्ता धर्मस्य संघस्य च । अथ पूर्णो ब्राह्मणमहाशालो भगवतो गुणसंकीर्तनं प्रतिश्रुत्य महान्तं प्रसादं प्रतिलब्धवान् । ततः शरणमभिरुह्य राजगृहाभिमुखः स्थित्वा उभौ जानुमण्डले पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य पुष्पाणि क्षिपन्, धूपमुदकं च भगवन्तमायाचितुं प्रवृत्तः—आगच्छतु भगवान् यज्ञं मे अनुभवितु यज्ञवाटमिति । अथ तानि पुष्पाणि बुद्धानां बुद्धानुभावेन देवतानां च देवतानुभावेनोपरि भगवतः पुष्पमण्डपं क्षिप्त्वा तस्थुः धूपोऽभ्रकूटवदुदकं वैडूर्यशलाकवत् ॥ B

अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—कुत इदं भदन्त निमन्त्रणमायातमिति । भगवानाह—दक्षिणागिरिष्वानन्द जनपदे संपूर्णो नाम ब्राह्मणमहाशालः प्रतिवसति,

तत्रास्माभिर्गन्तव्यम्, सज्जीभवन्तु भिक्षव इति। भगवान् भिक्षुसहस्रपरिवृतो दक्षिणागिरिषु जनपदे चारिकां चरित्वा पूर्णस्य ब्राह्मणमहाशालस्य यज्ञवाटसमीपे स्थित्वा चिन्तामापेदे—यन्वहं पूर्णब्राह्मणमृद्धिप्रातिहार्येणावर्जयेयमिति। अथ भगवांस्तं भिक्षुसहस्रमन्तर्धाप्य एकः पात्रकरकव्यग्रहस्तः पूर्णसमीपे स्थितः। अथ पूर्णो ब्राह्मणमहाशालो भगवन्तं ददर्श द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। दृष्ट्वा च पुनस्त्वरितत्वरितं भगवतः समीपमुपसंक्रम्य भगवन्तमुवाच—स्वागतं भगवन्, निषीदतु भगवान्, क्रियतां [[1]आसनपरिग्रहो] ममानुग्रहार्थमिति। भगवानाह—यदि ते परित्यक्तं दीयतामस्मिन्पात्र इति। अथ पूर्णो ब्राह्मणमहाशालः पञ्चमाणवकशतपरिवृतो भगवतो विविधभक्ष्यभोज्यखाद्यलेह्यपेयचोष्यादिभिराहारैरारब्धः पात्रं परिपूरयितुम्। भगवानपि स्वकात्पात्राद्भिक्षुपात्रेष्वाहारं संक्रमयति। यदा भगवतो विदितं पूर्णानि भिक्षुसहस्रस्य पात्राणीति, तदा स्वपात्रं पूर्णमादर्शितम्। ततो भिक्षुसहस्रं पूर्णपात्रमर्धचन्द्राकारेण दर्शितवान्। देवताभिरप्याकाशस्थाभिः शब्दमुदीरितम्—पूर्णानि भगवतो भिक्षुसहस्रस्य च पात्राणीति।

B 4 ततः प्रातिहार्यदर्शनात्पूर्णः प्रसादजातो मूलनिकृत्त इव द्रुमो हृष्टतुष्टप्रमुदितः उदग्रप्रीतिसौमनस्यजातो भगवतः पादयोर्निपत्य प्रणिधिं कर्तुमारब्धः—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अन्धे लोके अनायके अपरिणायके बुद्धो भूयासमतीर्णानां सत्त्वानां तारयिता, अमुक्तानां मोचयिता, अनाश्वस्तानामाश्वासयिता, अपरिनिर्वृतानां परिनिर्वापयितेति॥

अथ भगवान् पूर्णस्य ब्राह्मणमहाशालस्य हेतुपरंपरां कर्मपरंपरां च ज्ञात्वा स्मितं प्राविरकार्षीत्। धर्मता खलु यस्मिन्समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति। या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति। तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते। तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति। तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति। तेषां निर्मितं दृष्ट्वा भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः, अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति। ते निर्मिते चित्त-
B 5 मभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्त्वानां भाजनभूता भवन्ति। या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्

[1] Portion in [ ] wanting in Mss.

निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्शुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शानानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥
यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥ इति ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं B 6
व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्माल्लवणजलादिराजधैर्याः
सम्बुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।

यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

B 7 भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । एष आनन्द पूर्णो ब्राह्मणमहाशालः । अनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणापरिभाविताः षट् पारमिताः परिपूर्य पूर्णभद्रो नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति, दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति ॥ यदा भगवता पूर्णो ब्राह्मणमहाशालोऽनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ व्याकृतः, तदा पूर्णेन भगवान् सश्रावकसंघस्त्रैमास्यं यज्ञवाटे भोजितः । भूयश्चानेन चित्राणि कुशलमूलानि समवरोपितानि ॥

तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः, शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

२ यशोमती ।

B 8 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो वैशालीमुपनिश्रित्य विहरति मर्कटह्रदतीरे कूटागारशालायाम् । अथ पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो वैशालीं पिण्डाय प्राविक्षत् । सावदानीं वैशालीं पिण्डाय चरित्वा येन सिंहस्य सेनापतेर्निवेशनं तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः ॥

अथ सिंहस्य सेनापतेः स्नुषा यशोमती नाम अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका । सा भगवतो विचित्रलक्षणोज्ज्वलकायं दृष्ट्वा अत्यर्थं प्रसादं लब्धवती । सा श्वशुरं पप्रच्छ—अस्ति कश्चिदुपायो येनाहमप्येवंगुणयुक्ता स्यामिति । अथ सिंहस्य सेनापतेरेतदभवत्—उदाराधिमुक्ता वतेयं दारिका । यदि पुनरियं प्रत्ययमासादयेत्, कुर्यादनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ प्रणिधानमिति विदित्वोक्तवान्—दारिके यदि हेतुं समादाय वर्तिष्यसि, त्वमप्येवंविधा भविष्यसि यादृशो भगवानिति ॥

B 9 ततः सिंहेन सेनापतिना यशोमत्याः प्रसादाभिवृद्ध्यर्थं प्रभूतं हिरण्यसुवर्णं रत्नानि च दत्तानि । ततो यशोमत्या दारिकया भगवान् सश्रावकसंघः श्वोऽन्तर्गृहे भक्तेनो-

निमन्त्रितः । अधिवासितं च भगवता तस्या अनुग्रहार्थम् ॥ अथ यशोमती दारिका सुवर्णमयानि पुष्पाणि कारयित्वा रूप्यमयाणि रत्नमयानि प्रभूतगन्धमाल्यविलेपनसंग्रहं कृत्वा शतरसमाहारं सज्जीकृत्य भगवतो दूतेन कालमारोचयति—समयो भदन्त, सज्जं भक्तं यस्येदानीं भगवान् कालं मन्यत इति । अथ भगवान् भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो येन सिंहस्य सेनापतेर्निवेशनं तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य पुरस्ताद्भिक्षुसंघस्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः । अथ यशोमती दारिका सुखोपनिषण्णं बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं विदित्वा शतरसेनाहारेण स्वहस्तं संतर्प्य पुष्पाणि भगवति क्षेप्तुमारब्धा । अथ तानि पुष्पाणि उपरि भगवतो रत्नकूटागारो रत्नच्छत्रं रत्नमण्डप इवावस्थितम्, यन्न न शक्यं सुशिक्षितेन कर्मकारेण कर्मान्तेवासिना वा कर्तुम्, यथापि तद्बुद्धानां बुद्धानुभावेन देवतानां च देवतानुभावेन ॥ अथ यशोमती दारिका तदत्यद्भुतं देवमनुष्यावर्जनकरं प्रातिहार्यं दृष्ट्वा मूलनिकृत्त इव द्रुमः सर्वशरीरेण भगवतः पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कर्तुमारब्धा—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अन्धे लोके अनायके अपरिणायके बुद्धो भूयासमतीर्णानां ॥ 10
सत्त्वानां तारयिता, अमुक्तानां मोचयिता, अनाश्वस्तानामाश्वासयिता, अपरिनिर्वृतानां परिनिर्वापयितेति ॥

अथ भगवान् यशोमत्या दारिकाया हेतुपरंपरां कर्मपरंपरां च ज्ञात्वा स्मितं प्राविरकार्षीत् । धर्मता खलु यस्मिन्समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन्समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः सजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः नाप्यन्यत्रोपपन्नाः । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रयस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानबृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, B 1
गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥

यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

B 7 भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । एष आनन्द पूर्णो ब्राह्मणमहाशालः । अनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणापरिभाविताः षट् पारमिताः परिपूर्य पूर्णभद्रो नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति, दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति ॥ यदा भगवता पूर्णो ब्राह्मणमहाशालोऽनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ व्याकृतः, तदा पूर्णेन भगवान् सश्रावकसंघस्त्रैमास्यं यज्ञवाटे भोजितः । भूयश्चानेन चित्राणि कुशलमूलानि समवरोपितानि ॥

तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः, शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

२ यशोमती ।

B 8 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो वैशालीमुपनिश्रित्य विहरति मर्कटह्रदतीरे कूटागारशालायाम् । अथ पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो वैशालीं पिण्डाय प्राविक्षत् । सावदानीं वैशालीं पिण्डाय चरित्वा येन सिंहस्य सेनापतेर्निवेशनं तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः ॥

अथ सिंहस्य सेनापतेः स्नुषा यशोमती नाम अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका । सा *भगवतो विचित्रलक्षणोज्ज्वलकायं दृष्ट्वा अत्यर्थं प्रसादं लब्धवती । सा श्वशुरं पप्रच्छ—अस्ति कश्चिदुपायो येनाहमप्येवंगुणयुक्ता स्यामिति । अथ सिंहस्य सेनापतेरेतदभवत्—उदाराधिमुक्ता बतेयं दारिका । यदि पुनरियं प्रत्ययमासादयेत्, कुर्यादनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ प्रणिधानमिति विदित्वोक्तवान्—दारिके यदि हेतुं समादाय वर्तिष्यसि, त्वमप्येवंविधा भविष्यसि यादृशो भगवानिति ॥

B 9 ततः सिंहेन सेनापतिना यशोमत्याः प्रसादाभिवृद्ध्यर्थं प्रभूतं हिरण्यसुवर्णं रत्नानि च दत्तानि । ततो यशोमत्या दारिकया भगवान् सश्रावकसंघः श्वोऽन्तर्गृहे भक्तेनोप-

निमन्त्रितः । अधिवासितं च भगवता तस्या अनुग्रहार्थम् ॥ अथ यशोमती दारिका सुवर्णमयानि पुष्पाणि कारयित्वा रूप्यमयाणि रत्नमयानि प्रभूतगन्धमाल्यविलेपनसंग्रहं कृत्वा शतरसमाहारं सज्जीकृत्य भगवतो दूतेन कालमारोचयति—समयो भदन्त, सज्जं भक्तं यस्येदानीं भगवान् कालं मन्यत इति । अथ भगवान् भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो येन सिंहस्य सेनापतेर्निवेशनं तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य पुरस्ताद्भिक्षुसंघस्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः । अथ यशोमती दारिका सुखोपनिषण्णं बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं विदित्वा शतरसेनाहारेण स्वहस्तं संतर्प्य पुष्पाणि भगवति क्षेप्तुमारब्धा । अथ तानि पुष्पाणि उपरि भगवतो रत्नकूटागारो रत्नच्छत्रं रत्नमण्डप इवावस्थितम्, यन्न न शक्यं सुशिक्षितेन कर्मकारेण कर्मान्तेवासिना वा कर्तुम्, यथापि तद्बुद्धानां बुद्धानुभावेन देवतानां च देवतानुभावेन ॥ अथ यशोमती दारिका तदत्यद्भुतं देवमनुष्यावर्जनकरं प्रातिहार्यं दृष्ट्वा मूलनिकृत्त इव द्रुमः सर्वशरीरेण भगवतः पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कर्तुमारब्धा—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अन्धे लोके अनायके अपरिणायके बुद्धो भूयासमतीर्णानां B 10 सत्त्वानां तारयिता, अमुक्तानां मोचयिता, अनाश्वस्तानामाश्वासयिता, अपरिनिर्वृतानां परिनिर्वापयितेति ॥

अथ भगवान् यशोमत्या दारिकाया हेतुपरंपरां कर्मपरंपरां च ज्ञात्वा स्मितं प्राविरकार्षीत् । धर्मता खलु यस्मिन्समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन्समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः नाप्यन्यत्रोपपन्नाः । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति यत्र सत्त्वानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रयस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, B 1 गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥

यो ह्यस्मिन्धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥ इति ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

I 12 नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्धवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द अनया यशोमत्या दारिकया ममैवंविधं सत्कारं कृतम् । एवं भदन्त । एषा आनन्द यशोमती दारिका अनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणा-

परिभाविताः षट् पारमिताः परिपूर्य रत्नमतिर्नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति, दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च । अयमस्या देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तस्याभिप्रसाद इति ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

३ कुसीदः । B 13

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे ॥

श्रावस्त्यामन्यतमः श्रेष्ठी प्रतिवसति, आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतो न पुत्रो न दुहिता । स करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः—अनेकधनसमुदितं मे गृहम् । न मे पुत्रो न दुहिता । ममात्ययात्सर्वस्वापतेयमपुत्रकमिति कृत्वा राजविधेयं भविष्यतीति । स श्रमणब्राह्मणनैमित्तिकसुहृत्सम्बन्धिबान्धवैरुच्यते—देवतायाचनं कुरुष्वेति ॥ अस्ति चैष लोके प्रवादो यदायाचनहेतोः पुत्रा जायन्ते दुहितरश्चेति । तच्च नैवम् । यद्येवमभविष्यत्, एकैकस्य पुत्रसहस्रमभविष्यत् तद्यथा राज्ञश्चक्रवर्तिनः । अपि तु त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा B 14
जायन्ते दुहितरश्च । कतमेषां त्रयाणाम्? मातापितरौ रक्तौ भवतः संनिपतितौ । माता कल्या भवति ऋतुमती । गन्धर्वश्च प्रत्युपस्थितो भवति । एषां त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च । तथा त्वसौ श्रमणब्राह्मणनैमित्तिकसुहृत्संबन्धिबान्धवैरभिप्रलब्धोऽपुत्रः पुत्राभिनन्दी शिववरुणकुबेरशक्रब्रह्मादीनन्यांश्च देवताविशेषानायाचते स्म । तद्यथा—आरामदेवता वनदेवताश्चत्वरदेवताः शृङ्गाटकदेवता बलिप्रतिग्राहिका देवताः । सहजाः सहधर्मिका नित्यानुबन्धा अपि देवता आयाचते स्म । स चैवमायाचनपरस्तिष्ठति । अन्यतमश्च सत्त्वोऽन्यतमस्मात्सत्त्वनिकायाच्च्युत्वा तस्य प्रजापत्याः कुक्षिमवक्रान्तः ॥ पञ्चावेणिका धर्मा एकत्ये पण्डितजातीये मातृग्रामे । कतमे पञ्च? रक्तं पुरुषं जानाति, विरक्तं पुरुषं जानाति । कालं जानाति ऋतुं जानाति । गर्भमवक्रान्तं जानाति । यस्य सकाशाद्गर्भोऽवक्रामति तं जानाति । दारकं जानाति, दारिकां जानाति । सचेद्दारको भवति, दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति । सचेद्दारिका भवति, वामं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति ॥ सा आत्तमनात्तमनाः स्वामिन आरोचयति—दिष्ट्या आर्यपुत्र वर्धसे । आपन्नसत्त्वास्मि संवृत्ता । यथा च मे दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति, नियतं दारको भविष्यतीति । सोऽप्यात्त-

---

¹ 'निश्रय°' promiscuously in Mss.

अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति, तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धाः इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति यत्र सत्त्वानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रयस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभान् शुभकृत्स्नानानभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानबृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति । गाथाद्वयं च भाषन्ते—

B 20 आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥
यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥ इति ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जान्वोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ च ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

B 21 नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ १ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ २ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्यवीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ३ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ४ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द अनेन कुसीदेन दारकेण ममैवंविधं सत्कारं कृतम् । एवं भदन्त । एष आनन्द कुसीदो दारकोऽनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन B 22 देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणापरिभाविताः षट् पारमिताः परिपूर्य अतिबलवीर्यपराक्रमो नाम सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति, दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते च भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

——×——

४ सार्थवाहः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 23 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । श्रावस्त्यामन्यतमो महासार्थवाहो महासमुद्राद्भग्नयानपात्र आगतः । स द्विरपि त्रिरपि स्वदेवतायाचनं कृत्वा महासमुद्रमवतीर्णो भग्नयानपात्र एवागतः । ततोऽस्य महान् खेद उत्पन्नः । स इमां चिन्तामापेदे—को मे उपायः स्याद्येन धनार्जनं कुर्यामिति । तस्यैतदभवत्—अयं बुद्धो भगवान् सर्वदेवप्रतिविशिष्टतरः आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महाधर्मरामः प्रजावत्सलः, यन्न्वहमिदानीमस्य नाम्ना पुनरपि महासमुद्रमवतरेयम् । सिद्धयानपात्रस्त्वागच्छेयं चेदुपार्धेन धनेनास्य पूजां कुर्यामिति ॥

स एवं कृतव्यवसायः पुनरपि महासमुद्रमवतीर्णः । बुद्धानुभावेन च रत्नद्वीपं संप्राप्य
महारत्नसंग्रहं कृत्वा कुशलस्वस्तिना स्वगृहमनुप्राप्तः । स मार्गश्रमं प्रतिविनोद्य भाण्डं
प्रत्यवेक्षितुमारब्धः । तस्य नानाविचित्राणि रत्नानि दृष्ट्वा महांल्ला[लो ?]भ उत्पन्नः । चिन्तयति
II 24 च—मया ईदृशानां रत्नानां श्रमणस्य गौतमस्य उपार्धं दातव्यं भविष्यति । यन्न्वहमेतानि
स्वस्याः पश्या [1]आयः । तेन कार्षापणद्वयेन विक्रीय भगवतो गन्धं दद्यामिति । स कार्षापण-
द्वयेनागरुं क्रीत्वा जेतवनं गतः । ततोऽपत्रपमाणरूपो द्वारकोष्ठके स्थित्वागरुं धूपितवान् ॥

अथ भगवांस्तद्रूपमृद्ध्यभिसंस्कारमभिसंस्कृतवान् येन स धूप उपरि विहायसमभ्युद्गम्य सर्वां च श्रावस्तीं स्फुरित्वा महदभ्रकूटवदवस्थितः । तस्य तदत्यद्भुतं देवमनुष्यावर्जनकरं प्रातिहार्यं दृष्ट्वा महान् प्रसाद उत्पन्नः । स स्वचित्तं परिभावितवान्—नैतन्मम प्रतिरूपं स्याद्यदहं भगवन्तं रत्नैर्नाभ्यर्चयेयमिति ॥ अथ तेन सार्थवाहेन भगवान् सश्रावकसंघोऽन्तर्निवेशने भक्तेनोपनिमन्त्रितः । ततः प्रणीतेनाहारेण संतर्प्य महारत्नैरवकीर्णः । ततस्तानि रत्नानि उपरि विहायसमभ्युद्गम्य मूर्ध्नि भगवतो रत्नकूटागारो रत्नच्छत्रं रत्नमण्डपश्चावस्थितः, यन्न शक्यं सुशिक्षितेन कर्मकारेण कर्मान्तेवासिना वा कर्तुम्, यथापि तद्बुद्धस्य बुद्धानुभावेन देवतानां च देवतानुभावेन ॥

B 25 अथ सार्थवाहो द्विगुणजातप्रसादस्तत्प्रातिहार्यदर्शनान्मूलनिकृत्त इव द्रुमो भगवतः
पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कर्तुमारब्धः—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन
च अन्धे लोके अनायके अपरिणायके बुद्धो भूयासमतीर्णानां सत्त्वानां तारयिता, अमुक्तानां
मोचयिता, अनाश्वस्तानामाश्वासयिता, अपरिनिर्वृतानां परिनिर्वापयितेति ॥

अथ भगवांस्तस्य सार्थवाहस्य हेतुपरंपरां कर्मपरंपरां च ज्ञात्वा स्मितं प्राविष्कार्षीत् । धर्मता खलु यस्मिन्समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन्समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रश्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युता नाप्यन्यत्रोपपन्नाः । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रश्रब्धा इति । ते निर्मिते
चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति यत्र
B 26 सत्त्वानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान्
यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः

1 B आयत्तेन for आयः । तेन.

रीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति । गाथाद्वयं च भाषन्ते–

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥

यो ह्यस्मिन्धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥ इति ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ।

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ–

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कासितः कलापः । B 27
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते–

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतृणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्मात्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।

यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिपलन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द अनेन सार्थवाहेन ममैवंविधं सत्कारं कृतम् । एवं भदन्त । एष सार्थवाहोऽनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणापरिभाविताः षट् पारमिताः परिपूर्य रत्नोत्तमो नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तस्याभिप्रसादः ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

B 23 ५ सोमः ।

[नोपलभ्यते कथेयम् ।] [Lost]

---

६ वडिकः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किंनरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिंनरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । श्रावस्त्यामन्यतमो गृहपतिः श्रेष्ठी प्रतिवसति आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः गृहपतेः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा नवानां मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातो अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः ॥ तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा वडिक इति नामधेयं कृतवान् पिता । वडिको दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तः अंसधात्रीभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां मलधात्रीभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेन अन्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् । यदा महान् संवृत्तः पञ्चवर्षो षड्वर्षो वा, तदा गुरौ भक्तिं कृत्वा सर्वशास्त्राणि अधीतानि । तीक्ष्णबुद्धितया शीघ्रं सर्वशास्त्रस्य पारं गतः ॥

B 27 तदनन्तरं तस्य वडिकस्य किंचित्पूर्वजन्मकृतकर्मविपाकेन शरीरे कायिकं दुःखं पतितम्, इति दुःखी भूत्वा चिन्तापरः स्थितः—किं पापं कृतं मया, यदिदं कायिकं दुःखं मम शरीरे जातम् । तस्य पितापि पुत्रस्येदं कायिकं दुःखमार्तं दृष्ट्वा महदृद्धिमः पुत्राल्पपराङ्कया दीनमानसः शोकमुत्पादयन्नन्यानपि वैद्यमाहूय तस्य पुत्रस्य रोगं दर्शयति—यो रोगः

केन हेतुना मम पुत्रस्य देहे जात इति। ततः वैद्यस्तस्य रोगचिह्नं दृष्ट्वा चिकित्सां कर्तुमारब्धः। तथापि तस्य रोगशान्तिर्न भवति, पुनर्वृद्धिर्भवति। पिता पुत्रस्य रोगं वृद्धं जातं दृष्ट्वा अवश्यं पुत्रो मरिष्यति, यद्वैद्येनापि चास्य रोगस्य चिकित्सितुं न शक्यते, इति मूर्च्छया भूमौ पतितः। तं दृष्ट्वा भूयोऽपि पुत्रस्य चिन्ता जाता। भूयोऽपि चिन्तया मानसी व्यथा जाता। स दारको रोगी भूतोऽशक्योऽपि वदितुं कथंचित्पितरं बभाषे—मा तात B 30 साहसम्। धैर्यमवलम्ब्योत्तिष्ठ। ममात्ययाशङ्कया मा भूस्त्वमपि मादृशः। मम नाम्ना देवानां पूजां कुरु, दानं देहि। ततो मम स्वस्था [स्वास्थ्यं] भविष्यति। स गृहपतिरिति पुत्रस्य वच आकर्ण्य सर्वदेवेभ्यः पूजां कृतवान्। सर्वब्राह्मणतीर्थिकपरिव्राजकेभ्यो दानं दत्तवान्। तथापि तस्य रोगशान्तिर्न भवति। तदा तस्य महान् मानसो दुःखोऽभूत्। सर्वदेवेषु पूजा कृता, दानोऽपि दत्तः पित्रा मम, तथापि स्वस्था न भवति। ततस्तथागतगुणाननुस्मृत्य बुद्ध नमस्कारं कर्तुमारब्धः॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम्। धर्मता खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां चतुर्षु संग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वविहारसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को B 31 हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः सबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः। कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्य कामपङ्कनिमग्नस्य हस्तोद्धारमनुप्रदद्याम्, कमार्यधननिरहितमार्यधनैश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम्। आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेला सागरो मकरालयः।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत्॥ १॥

ततो भगवता वडिकस्य गृहपतेः पुत्रस्य तामवस्थां दृष्ट्वा सूर्यसहस्रातिरेकप्रभाः कनकवर्णा मरीचयः सृष्टाः, यैस्तद्गृहं समन्तादवभासितम्। कल्पसहस्रपरिभाविताश्च मैत्र्यंशव उत्सृष्टाः, यैरस्य स्पृष्टमात्र शरीरं प्रह्लादितम्। ततो भगवांस्तस्य द्वारकोष्ठकमनुप्राप्तः। दौवारिकपुरुषेणास्य निवेदितं भगवान् द्वारे तिष्ठतीति। अथ वडिकः श्रेष्ठिपुत्रो लब्धप्रसादोऽधिगतसमाश्वास आह—प्रविशतु भगवान्, स्वागतं भगवते, आकाङ्क्षामि भगवतो दर्शनमिति। अथ भगवान् प्रविश्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः। निषद्य भगवान् वडिकमुवाच—किं ते वडिक बाधत इति। वडिक उवाच—कायिकं च मे दुःखं चेतसिकं

यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिपलन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द एवमेतत्। नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति। पश्यस्यानन्द अनेन सार्थवाहेन ममैवंविधं सत्कारं कृतम्। एवं भदन्त। एष सार्थवाहोऽनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणापरिभाविताः षट् पारमिताः परिपूर्य रत्नोत्तमो नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च। अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तस्याभिप्रसादः ॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

B 28

५ सोमः।

[नोपलभ्यते कथेयम्।] [Lost]

६ षडिकः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। श्रावस्त्यामन्यतमो गृहपतिः श्रेष्ठी प्रतिवसति आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः गृहपतेः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। सा नवानां मासानामत्ययात्प्रसूता। दारको जातो अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः ॥ तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा षडिक इति नामधेयं कृतवान् पिता। षडिको दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तः अंसधात्रीभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां मलधात्रीभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेन अन्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्। यदा महान् संवृत्तः पञ्चवर्षो षड्वर्षो वा, तदा गुरौ भक्तिं कृत्वा सर्वशास्त्राणि अधीतानि। तीक्ष्णबुद्धितया शीघ्रं सर्वशास्त्रस्य पारं गतः ॥

B 29 तदनन्तरं तस्य षडिकस्य किंचित्पूर्वजन्मकृतकर्मविपाकेन शरीरे कायिकं दुःखं पतितम्, इति दुःखी भूत्वा चिन्तापरः स्थितः—किं पापं कृतं मया, यदिदं कायिकं दुःखं मम शरीरे जातम्। तस्य पिताऽपि पुत्रस्येदं कायिकं दुःखमार्तं दृष्ट्वा महद्भिः पुत्रालयपदाङ्ग्या दीनमनाः शोकाश्रुस्नातवदनस्त्वरितं वैद्यमाहूय तस्य पुत्रस्य रोगं दर्शयति—को रोगः

केन हेतुना मम पुत्रस्य देहे जात इति। ततः स वैद्यस्तस्य रोगचिह्नं दृष्ट्वा चिकित्सां कर्तुमारब्धः। तथापि तस्य रोगशान्तिर्न भवति, पुनर्वृद्धिर्भवति। पिता पुत्रस्य रोगं वृद्धं जातं दृष्ट्वा अवश्यं पुत्रो मरिष्यति, यद्वैद्येनापि चास्य रोगस्य चिकित्सितुं न शक्यते, इति मूर्च्छया भूमौ पतितः। तं दृष्ट्वा भूयोऽपि पुत्रस्य चिन्ता जाता। भूयोऽपि चिन्तया मानसी व्यथा जाता। स दारको रोगी भूतोऽशक्योऽपि वदितुं कथंचित्पितरं बभाषे—मा तात B 30 साहसम्। धैर्यमवलम्ब्योत्तिष्ठ। ममात्ययाशङ्कया मा भूस्त्वमपि मादृशः। मम नाम्ना देवानां पूजां कुरु, दानं देहि। ततो मम स्वस्था [स्वास्थ्यं] भविष्यति। स गृहपतिरिति पुत्रस्य वच आकर्ण्य सर्वदेवेभ्यः पूजां कृतवान्। सर्वब्राह्मणतीर्थिकपरिव्राजकेभ्यो दानं दत्तवान्। तथापि तस्य रोगशान्तिर्न भवति। तदा तस्य महान् मानसो दुःखोऽभूत्। सर्वदेवेषु पूजा कृता, दानोऽपि दत्तः पित्रा मम, तथापि स्वस्था न भवति। ततस्तथागतगुणाननुस्मृत्य बुद्धं नमस्कारं कर्तुमारब्धः॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम्। धर्मता खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां चतुर्षु संग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वविहारसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाध- B 31 प्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः। कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्य कामपङ्कनिमग्नस्य हस्तोद्धारमनुप्रदद्याम्, कमार्यधनविरहितमार्यधनैश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम्। आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत्॥ १॥

ततो भगवता वडिकस्य गृहपतेः पुत्रस्य तामवस्थां दृष्ट्वा सूर्यसहस्रातिरेकप्रभाः कनकवर्णा मरीचयः सृष्टाः, यैस्तद्गृहं समन्तादवभासितम्। कल्पसहस्रपरिभाविताश्च मैत्र्यंशव उत्सृष्टाः, यैरस्य स्पृष्टमात्रं शरीरं प्रह्लादितम्। ततो भगवांस्तस्य द्वारकोष्ठकमनुप्राप्तः। दौवारिकपुरुषेणास्य निवेदिते भगवान् द्वारे तिष्ठतीति। अथ वडिकः श्रेष्ठिपुत्रो लब्धप्रसादोऽधिगतसमाश्वास आह—प्रविशतु भगवान्, स्वागतं भगवते, आकाङ्क्षामि भगवतो दर्शनमिति। अथ भगवान् प्रविश्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः। निषद्य भगवान् वडिकमुवाच—किं ते वडिक बाधत इति। वडिक उवाच—कायिकं च मे दुःखं चैतसिकं

चेति। ततोऽस्य भगवता सर्वसत्त्वेषु मैत्र्युपदिष्टा—अयं ते चैतसिकस्य प्रतिपक्ष इति। लौकिकं च चित्तमुत्पादयामास—अहो बत शक्रो देवेन्द्रो गन्धमादनात् पर्वतात् क्षीरिका-
B 32 मोषधीमानयेदिति। सहचित्तोत्पादाद्भगवतः शक्रो देवेन्द्रो गन्धमादनात् पर्वतात् क्षीरिकामोषधीमानीय भगवते दत्तवान्। भगवता च स्वपाणिना गृहीत्वा वडिकाय दत्ता—इयं ते कायिकस्य दुःखस्य परिदाहशमनीति ॥

स कायिकं प्रश्रब्धिसुखं लब्ध्वा भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादयामास। प्रसन्नचित्तश्च राज्ञः प्रसेनजितो निवेद्य भगवन्तं सश्रावकसंघं भोजयित्वा शतसाहस्रेण वस्त्रेणाच्छाद्य सर्वपुष्पमाल्यैरभ्यर्चितवान्। ततश्चेतनां पुष्णाति स्म, प्रणिधिं च चकार—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन यथैवाहं भगवता अनुत्तरेण वैद्यराजेन चिकित्सितः, एवमहमप्यनागतेऽध्वनि अन्धे लोके अनायके अपरिणायके बुद्धो भूयासमतीर्णानां सत्त्वानां तारयिता, अमुक्तानां मोचयिता, अनाश्वस्तानामाश्वासयिता, अपरिनिर्वृतानां परिनिर्वापयितेति ॥

अथ भगवान् वडिकस्य धातुपरंपरां कर्मपरंपरां च ज्ञात्वा स्मितं प्राविरकार्षीत्। धर्मता खलु यस्मिन्समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन्समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति। या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति। तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रश्रभ्यन्ते। तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति। तेषां प्रसाद-
B 33 संजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति। तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः। अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः। अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रश्रभ्यन्ते। ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति। या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नानभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानबृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति। गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ २ ॥
यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ ३ ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति। तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते।

अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, B. 34 नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्सम्बोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ।

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कासितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥
तत्कालं स्वयमधिगम्य धीर[1] बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥
नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः B 35 सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यनेन वडिकेन गृहपतिपुत्रेण ममैवंविधं सत्कारं कृतम् । एवं भदन्त । एष आनन्द वडिको गृहपतिपुत्रोऽनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणापरिभाविताः षट् पारमिताः परिपूर्य शाक्यमुनिर्नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

[1] S usually वीर, but here धीर.

७ पद्मः ।

B 36 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यार्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति स्म जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । यदा भगवांल्लोके नोत्पन्न आसीत्, तदा राजा प्रसेनजित् तीर्थिकदेवतार्चनं कृतवान् पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनैः। यदा तु भगवांल्लोके उत्पन्नः, राजा च प्रसेजिद्दहरसूत्रोदाहरणेन विनीतो भगवच्छासने श्रद्धां प्रतिलब्धवान्, तदा प्रीतिसौमनस्यजातस्त्रिर्भगवन्तमुपसंक्रम्य दीपधूपगन्धमाल्यविलेपनैरभ्यर्चयति ॥

अथान्यतम आरामिको नवं पद्ममादाय राज्ञः प्रसेनजितोऽर्थं श्रावस्तीं प्रविशति । तीर्थिकोपासकेन च दृष्टः [पृष्ट]श्च—किमिदं पद्मं विक्रीणिष्ये ? स कथयति—आमेति । स क्रेतुकामो यावदनाथपिण्डदो गृहपतिस्तं प्रदेशमनुप्राप्तः । तेन तस्माद् द्विगुणेन मूल्येन वर्धितम् । ततः परस्परं वर्धमानौ यावच्छतसहस्रं वर्धितवन्तौ । अथारामिकस्यैतदभवद्—
B 37 अयमनाथपिण्डदो गृहपतिरचञ्चलः स्थिरसत्त्वः । नूनमत्र कारणेन भवितव्यमिति । तेन संशयजातेन स तीर्थिकाभिप्रसन्नः पुरुषः पृष्टः—कस्यार्थे भवानेवं वर्धत इति । स आह—अहं भगवतो नारायणस्यार्थे इति ॥ अनाथपिण्डद आह—अहं भगवतो बुद्धस्यार्थे इति । आरामिक आह—क एष बुद्धो नामेति ? ततोऽनाथपिण्डदेन विस्तरेणास्य बुद्धगुणा आख्याताः । तत आरामिकोऽनाथपिण्डदमाह—गृहपते अहं स्वयमेव तं भगवन्तमभ्यर्चयिष्य इति ॥

ततोऽनाथपिण्डदो गृहपतिरारामिकमादाय येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । ददर्शारामिको बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्च आरामिकेण तत्पद्मं भगवति क्षिप्तम् । ततः क्षिप्तमात्रं शकटचक्रप्रमाणं भूत्वा उपरि भगवतः स्थितम् ॥

अथ स आरामिकस्तत्प्रातिहार्यं दृष्ट्वा मूलनिकृत्त इव द्रुमो भगवतः पादयोर्निपत्य कृतकरपुटश्चेतनां पुष्णाति, प्रणिधिं च कर्तुमारब्धः—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अन्धे लोके अनायके अपरिणायके बुद्धो भूयासमतीर्णानां सत्त्वानां तारयिता, अमुक्तानां मोचयिता, अनाश्वस्तानामाश्वासयिता, अपरिनिर्वृतानां परिनिर्वापयितेति ॥

अथ भगवांस्तस्यारामिकस्य हेतुपरंपरां कर्मपरंपरां च ज्ञात्वा स्मितं प्राविरकार्षीत् ।
B 38 धर्मता खलु यस्मिन्समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन्समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ता-

द्रच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति यत्र सत्त्वानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने । B III
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥

यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥ इति ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कासितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

B 40 तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यसि त्वमानन्द अनेनारामिकेण प्रसादजातेन ममैवंविधां पूजां कृताम् । एवं भदन्त । एष आरामिकोऽनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणापरिभाविताः षट् पारमिताः परिपूर्य पद्मोत्तमो नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

८ पञ्चालः ।

B 41 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति स्म जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे ॥ तेन खलु समयेनोत्तरपञ्चालराजो दक्षिणपञ्चालराजेन सह प्रतिविरुद्धो बभूव । * * *

अथ राजा प्रसेनजित्कौशल्यो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा एकान्ते निषण्णः । एकान्ते निषण्णो राजा प्रसेनजित्कौशल्यो
B 42 भगवन्तमिदमवोचत्—भगवान्नाम भदन्त अनुत्तरो धर्मराजो व्यसनगतानां सत्त्वानां परित्राता, अन्योन्यवैरिणां वैरप्रशमयिता । अयं चोत्तरपञ्चालो राजा दक्षिणपञ्चालराजेन सह प्रतिविरुद्धः । तौ परस्परमेव महाजनविप्रघातं कुरुतः । तयोर्भगवान् दीर्घरात्रानुगतस्य वैरस्योपशमं

1 There seems to be a gap in all Mss. which should describe the war and intervention of Buddha.

कुर्यादनुकम्पामुपादायेति । अधिवासयति भगवान् राज्ञः प्रसेनजितः कौशल्यस्य तूष्णीभावेन । अथ राजा प्रसेनजित्कौशल्यो भगवतस्तूष्णीभावेनाधिवासनां विदित्वा भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वोत्थायासनात्प्रक्रान्तः ॥

अथ भगवांस्तस्या एव रात्रेरत्ययात्पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय येन वाराणसी काशीनां नगरं तेन चारिकां प्रक्रान्तः । अनुपूर्वेण चारिकां चरन् वाराणसीमनुप्राप्तो वाराणस्यां विहरति ऋषिपतने मृगदावे । यावत्तयोर्विदितं भगवानस्मद्विजितमनुप्राप्त इति । यावद्भगवता ऋद्धिबलेन चतुरङ्गबलकायं निर्मायोत्तरपञ्चालराजस्त्रासितः । स भीत एकरथमभिरुह्य भगवत्सकाशमुपसंक्रान्तः । तस्य भगवता वैरप्रशमाय धर्मो देशितः । स तं धर्मं श्रुत्वा भगवत्सकाशे प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् ॥

दक्षिणपञ्चालराजेनापि भगवान् सश्रावकसंघस्त्रैमास्यं शतरसेनाहारेणोपनिमन्त्रितः, B 43 शतसाहस्रेण च वस्त्रेणाच्छादितः । प्रणिधानं कृतम्—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अन्धे लोके अनायके अपरिणायके बुद्धो भूयासमतीर्णानां सत्त्वानां तारयिता, अमुक्तानां मोचयिता, अनाश्वस्तानामाश्वासयिता, अपरिनिर्वृतानां परिनिर्वापयितेति ॥

अथ भगवान् दक्षिणपञ्चालराजस्य हेतुपरंपरां कर्मपरंपरां च ज्ञात्वा स्मितं प्राविरकार्षीत् । धर्मता खलु यस्मिन्समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन्समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रश्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वा च एवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म B 44 क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानबृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥

यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं
B 45 व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कासितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य धीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः
B 46 सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द अनेन दक्षिणपञ्चालराजेन ममैवंविधं सत्कारं कृतम् । एवं भदन्त । एष आनन्द पञ्चालराजोऽनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणपरिभाविताः

षट् पारमिताः परिपूर्य त्रिजयो नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च। अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसादः ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

९ धूपः[1] ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 4 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन श्रावस्त्यां द्वौ श्रेष्ठिनौ । तावन्योन्यं प्रति विरुद्धौ बभूवतुः । ताभ्यामेकः पूरणेऽभिप्रसन्नः, द्वितीयो बुद्धे भगवति । ततस्तयोः परस्परं कथासांकथ्यविनिश्चये[2] वर्तमाने पूरणोपासक आह—बुद्धात्पूरणो विशिष्टतर इति । बुद्धोपासक आह—भगवान् सम्यक्संबुद्धो विशिष्टतर इति । ततस्ताभ्यां सर्वस्वापहरणे बन्धनिक्षेपः कृतः ॥

यावद्राज्ञः प्रसेनजितः श्रुतम् । तेनामात्यानामाज्ञा दत्ता—तयोर्मीमांसा कर्तव्येति । B 41 ततस्तैरमात्यैः सर्वविजिते घण्टावघोषणं कारितम्—सप्तमे दिवसे बुद्धतीर्थिकोपासकयोर्मीमांसा भविष्यति, ये चाद्भुतानि द्रष्टुकामास्ते आगच्छन्त्विति । ततः सप्तमे दिवसे विस्तीर्णावकाशे पृथिवीप्रदेशेऽनेकेषु प्राणिशतसहस्रेषु संनिपतितेषु गगनतले चानेकेषु देवतासहस्रेषु संनिपतितेषु गोमयमण्डलके कृते सर्वगन्धमाल्येषूपहृतेषु पूर्वतरं तीर्थिकोपासकेन सत्योपयाचनं कृतम्—येन सत्येन पूरणप्रभृतयः षट् शास्तारो लोके श्रेष्ठाः, अनेन सत्येनेमानि पुष्पाणि अयं च धूपः इदं च पानीयं तानुपगच्छन्त्विति ॥ एवं प्रव्याहतमात्रे तानि पुष्पाणि भूमौ पतितानि, अग्निर्निर्वृतः, पानीयं पृथिव्यामस्तं परिक्षयं पर्यादानं गतम् । ततो महाजनकायेन किलकिलाप्रक्ष्वेडोच्चैर्नादो मुक्तः, यमभिवीक्ष्य तीर्थ्योपासकस्तूष्णीभूतो मङ्कुभूतः[3] स्रस्तस्कन्धोऽधोमुखो निष्प्रतिभानः प्रध्यानपरमः करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः ॥

ततो भगवच्छ्रावकेण हर्षोत्कण्ठजातेन प्रसादविकसिताभ्यां नयनाभ्यामेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणजानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य सत्योपयाचनं कृतम्—येन सत्येन भगवान् B 43 सर्वसत्त्वानामग्र्यः, अनेन सत्येनेमानि पुष्पाणि धूप उदकं भगवन्तमुपगच्छन्त्विति । एवं प्रव्याहतमात्रे तानि पुष्पाणि हंसपंक्तिरिवाकाशे जेतवनाभिमुखं संप्रस्थितानि, धूपोऽभ्रकूटवत्, उदकं वैडूर्यशलाकावत् । अथ स महाजनकायस्तत्प्रातिहार्यं दृष्ट्वा किलकिलाप्रक्ष्वेडोच्चैःशब्दं कुर्वंस्तेषां संप्रस्थितानां पृष्ठतः पृष्ठतः समनुबद्धः ॥

---

१ Mss धूमः which probably stands for धूपः. २ Speyer reads कथाःसंकथ्य against Mss. ३ Speyer मद्गुभूतः.

ततस्तानि पुष्पाणि भगवत उपरि स्थितानि, धूप उदकं चाग्रतः। ततः स महाजनकायो लब्धप्रसादो भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। तेषां भगवानिदं सूत्रं भाषते स्म—

तिस्र इमा ब्राह्मणगृहपतयोऽग्रप्रज्ञप्तयः। कतमास्तिस्रः? बुद्धे अग्रप्रज्ञप्तिः, धर्मे, संघे अग्रप्रज्ञप्तिः। बुद्धे अग्रप्रज्ञप्तिः कतमा? ये केचिद्ब्राह्मणगृहपतयः सत्त्वा अपदा वा द्विपदा वा बहुपदा वा, रूपिणो वा अरूपिणो वा, संज्ञिनो वा असंज्ञिनो वा, नैवसंज्ञिनो नासंज्ञिनः, तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेषामग्र आख्यातः। ये केचिद्बुद्धेऽभिप्रसन्नाः,
B 50 अग्रे तेऽभिप्रसन्नाः। तेषामग्रेऽभिप्रसन्नानामग्र एव विपाकः प्रतिकांक्षितव्यो देवेषु वा देवभूतानां मनुष्येषु वा मनुष्यभूतानाम्। इयमुच्यते ब्राह्मणगृहपतयो बुद्धे अग्रप्रज्ञप्तिः। धर्मे अग्रप्रज्ञप्तिः कतमा? ये केचिद्धर्माः संस्कृता वा असंस्कृता वा, विरागो धर्मस्तेषामग्र आख्यातः। ये केचिद्धर्मेऽभिप्रसन्नाः, अग्रे ते अभिप्रसन्नाः। तेषामग्रेऽभिप्रसन्नानामग्र एव विपाकः प्रतिकांक्षितव्यो देवेषु वा देवभूतानां मनुष्येषु वा मनुष्यभूतानाम्। इयमुच्यते ब्राह्मणगृहपतयो धर्मे अग्रप्रज्ञप्तिः। संघेषु अग्रप्रज्ञप्तिः कतमा? ये केचित्संघा वा गणा वा पूगा वा परिषदो वा, तथागतश्रावकसंघस्तेषामग्र आख्यातः। ये केचित् संघेऽभिप्रसन्नाः, अग्रे तेऽभिप्रसन्नाः। तेषामग्रेऽभिप्रसन्नानामग्र एव विपाकः प्रतिकांक्षितव्यो देवेषु देवभूतानां मनुष्येषु मनुष्यभूतानाम्। इयमुच्यते ब्राह्मणगृहपतयः संघे अग्रप्रज्ञप्तिः॥

अस्मिन् खलु धर्मपर्याये भाष्यमाणे तेषां ब्राह्मणगृहपतीनां कैश्चिद्बुद्धधर्मसंघेषु प्रसादः प्रतिलब्धः, कैश्चिच्छरणगमनशिक्षापदानि गृहीतानि, कैश्चित्प्रव्रज्य इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा, सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य,
R 51 सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। तेन च तीर्थ्योपासकेन तथागतान्तिके प्रसादः प्रतिलब्धः। ततो मूलनिकृत्त इव द्रुमः पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कर्तुमारब्धः—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अन्धे लोके अनायके अपरिणायके बुद्धो भूयासमतीर्णानां सत्त्वानां तारयिता, अमुक्तानां मोचयिता, अनाश्वस्तानामाश्वासयिता, अपरिनिर्वृतानां परिनिर्वापयितेति॥

अथ भगवांस्तस्य तीर्थिकोपासकस्य हेतुपरंपरां कर्मपरंपरां च ज्ञात्वा स्मितं प्राविरकार्षीत्। धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति। या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति। तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रश्रभ्यन्ते। तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति। तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति। तेषां निर्मितं दृष्ट्वा भवति—

न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति यत्र सत्त्वानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मित- B 52
वशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानबृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥

यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥ इति ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कासितः कलापः । B 53
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र कांक्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृप वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्त सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यसि त्वमानन्द अनेन तीर्थिकोपासकेन ममैवंवि सत्कारं कृतम् । एवं भदन्त । एष आनन्द तीर्थोपासकोऽनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणापरिभाविताः षट् पारमिता परिपूर्य अचलो नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकै स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

१० राजा ।

D 54 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौ श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरु किन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लान प्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । ते खलु समयेन राजा प्रसेनजित् कौशलो राजा च अजातशत्रुः उभावप्येतौ परस्परं विर वभूवतुः । अथ राजा अजातशत्रुश्चतुरङ्गबलकायं संनह्य हस्तिकायमश्वकायं रथकायं पत्तिका राजानं प्रसेनजितं कौशलमभिनिर्यातो युद्धाय ॥

अश्रौषीद्राजा प्रसेनजित्कौशलः—राजा अजातशत्रुश्चतुरङ्गबलकायं संनह्य ह्रि कायमश्वकायं रथकायं पत्तिकायं च अभिनिर्यातो युद्धायेति । श्रुत्वा च चतुरङ्गबलका संनह्य हस्तिकायमश्वकायं रथकायं पत्तिकायं राजानमजातशत्रुं प्रत्यभिनिर्यातो युद्धाय
D 55 अथ राज्ञा अजातशत्रुणा राज्ञः प्रसेनजितः कौशलस्य सर्वो हस्तिकायः पर्यस्तः, अश्वका रथकायः पत्तिकायः पर्यस्तः । राजा प्रसेनजित्कौशलो जितो भीतो भग्नः पराजितः प पृष्ठीकृत एकरथेन श्रावस्तीं प्रविष्टः । एवं यावत् त्रिरपि ॥

अथ राजा प्रसेनजित् कौशलः शोकागारं प्रविश्य करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो
व्यवस्थितः। तत्र च श्रावस्त्यामन्यतमः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशाल-
परिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन श्रुतं यथा राजा प्रसेनजित्कौशलो
जितो भग्नः परापृष्ठीकृतः, एकरथेनेह प्रविष्ट इति। श्रुत्वा च पुनर्येन राजा प्रसेनजित्
कौशलस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य राजानं प्रसेनजितं कौशलं जयेनायुषा च वर्धयित्वा च—
किमर्थं देव शोकः क्रियते? अहं देवस्य तावत्सुवर्णमनुप्रयच्छामि, येन देवः पुनरपि II 56
यथेष्टप्रचारणं करिष्यतीति। तेन तस्य महान् सुवर्णराशिः कृतः, यत्रोपविष्टः पुरुष उत्थितं
पुरुषं न पश्यति, उत्थितो वा उपविष्टम्॥

अथ राज्ञा प्रसेनजित्कौशल्येन स्वविषये चरपुरुषाः समन्तत उत्सृष्टाः—शृणुत
जनप्रवादानिति। यावज्जेतवने द्वौ मल्लावन्योन्यं संजल्पं कुरुतः—अस्ति केसरी नाम III
संग्रामः। तत्र ये कातराः पुरुषास्ते संग्रामशिरसि स्थाप्यन्ते, ये मध्यास्ते मध्ये, ये उत्कृष्टाः
शूरपुरुषास्ते पृष्ठत इति। ततस्ते राज्ञे इति वेदितवन्तः। श्रुत्वा च राजा प्रसेनजित्
कौशलस्तथा चतुरङ्गबलकायं संनाह्य हस्तिकायमश्वकायं रथकायं पत्तिकायं च राजानमजात- D 57
शत्रुमभिनिर्यातो युद्धाय। ततो राज्ञा प्रसेनजिता कौशलेन राज्ञोऽजातशत्रोर्वैदेहीपुत्रस्य
सर्वो हस्तिकायः पर्यस्तः, अश्वकायो रथकायः पत्तिकायः पर्यस्तः। राजानमप्यजातशत्रुं
वैदेहीपुत्रं जितं भीतभग्नपराजितं परापृष्ठीकृतं जीवग्राहं गृहीत्वा एकरथेऽभिरोप्य येन
भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा एकान्ते निषीदति।
एकान्तनिषण्णो राजा प्रसेनजित्कौशलो भगवन्तमिदमवोचत्—अयं हि भदन्त राजा
अजातशत्रुर्दीर्घरात्रमवैरस्य मे वैरी, असपत्नस्य सपत्नः। न चेच्छाम्येनं जीविताद् व्यपरोप-
यितुम्, यस्माद्वयस्यपुत्रोऽयं भवति। मुञ्चाम्येनमिति। मुञ्च महाराजेत्युक्त्वा भगवांस्तस्यां
वेलायां गाथां भाषते—

जयो वैरं प्रसवति दुःखं शेते पराजितः।
उपशान्तः सुखं शेते हित्वा जयपराजयम्॥ १॥

अथ राज्ञः प्रसेनजितः कौशलस्यैतदभवत्—यन्मया राज्यं प्रतिलब्धम्, तदस्य श्रेष्ठिनः D 58
प्रसादात्। यन्न्वहमेनं वरेण प्रवारयेयमिति। अथ राजा प्रसेनजित्कौशलस्तं श्रेष्ठिनं वरेण
प्रवारयति। स कथयति—आकांक्षामि वरम्—सप्ताहं मे यथाभिरुचितं राज्यमनुप्रयच्छेति।
ततो राज्ञा सर्वविजिते घण्टावघोषणं कारितम्—दत्तं मे श्रेष्ठिने सप्ताहमेकं राज्यमिति।
यावत्तेन श्रेष्ठिना बुद्धप्रमुखो भिक्षुसंघः सप्ताहं भक्तेनोपनिमन्त्रितः, राजा च प्रसेनजित्
सपरिवारः। यावन्तश्च काशिकोशलेषु जनकायाः प्रतिवसन्ति, तेषां दूतसंप्रेषणं कृतम्—सप्ताहं
यूयं सरक्ता यथेष्टचारिणः सुखस्पर्शं विहरत। किंचिदागत्य बुद्धं शरणं गच्छत, धर्मं च

१ Mss. यथेष्टप्रचारणं for °प्रचारं. २=धम्मपद 201 and संयुत्त-निकाय, 3. 2. 4.

नाम्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथा- B 61
युष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य धीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्रादुष्कुर्वन्ति । पश्यसि त्वमानन्द अनेन श्रेष्ठिना तथागतस्य सश्रावकसंघस्यैवंविधं सत्कारं कृतम्, महाजनकायं च कुशले नियुक्तम् । एवं भदन्त । B 62
एष आनन्द श्रेष्ठी अनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणापरिभाविताः षट् पारमिताः परिपूर्य अभयप्रदो नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥



B 59 भिक्षुसंघं च । मामकं च भोजनं भुञ्जानास्तथागतं पर्युपासध्वमिति । तेन सप्ताहं
भगवान् सश्रावकसंघो महता सत्कारेण सत्कृतः, बहूनि च प्राणिशतसहस्राणि कुशले
नियोजितानि । सप्ताहस्यात्ययेन भगवतः पादयोर्निपत्य चेतनां पुष्णाति, प्रणिधिं च
चकार—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अन्धे लोके अनायके
अपरिणायके बुद्धो भूयासमतीर्णानां सत्त्वानां तारयिता, अमुक्तानां मोचयिता, अनाश्वस्ताना-
माश्वासयिता, अपरिनिर्वृतानां परिनिर्वापयितेति ॥

अथ भगवांस्तस्य श्रेष्ठिनो हेतुपरंपरां कर्मपरंपरां च ज्ञात्वा स्मितं प्राविरकार्षीत् ।
धर्मता खलु यस्मिन्समये बुद्धाः भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन्समये नीलपीतलोहिता-
वदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ता-
द्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुद-
मटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूत्वा
निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूत्वा निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः
प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना
B 60 इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव
वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं
कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म
क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टा-
द्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो
ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभा-
नप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानबृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शना-
नकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥
यो ह्यस्मिन्धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥ इति ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः
समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते ।
अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति,
पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं
व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनो-
रन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्ति-
राज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति,

नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथा- II 61
युष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कासितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्रादुष्कुर्वन्ति । पश्यसि त्वमानन्द अनेन श्रेष्ठिना तथागतस्य एवंविधं सत्कारं कृतम्, महाजनकायं च कुशले नियुक्तम् । एवं भदन्त । B 62
एष आनन्द श्रेष्ठी अनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येय-समुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणापरिभाविताः षट् पारमिताः परिपूर्य अभयप्रदो नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

———

द्वितीयो वर्गः ।

तस्योद्दानम्—

नावा स्तम्भं च स्नात्रं च तथेतिः प्रतिसारकम् (प्रातिहार्यकम्) ।
पाञ्चवार्षिकं स्तुतिर्वरदः काशिकं दिव्यभोजनम् ॥

११ नाविकाः ।

B 63 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नर-
महोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लान-
प्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति नद्या अजिरवत्या अधस्ता-
न्नाविकग्रामे । अथ ते नाविका येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्य भगवतः पादौ
शिरसा वन्दित्वैकान्ते न्यषीदन् । एकान्तनिषण्णांस्तान्नाविकान् भगवान् धर्म्यया कथया
संदर्शयति समादापयति समुत्तेजयति संप्रहर्षयति । अनेकपर्यायेण धर्म्यया कथया
संदर्श्य समादाप्य समुत्तेज्य संप्रहर्ष्य तूष्णीम् । अथ ते नाविका उत्थायासनादेकांस-
B 64 मुत्तरासङ्गं कृत्वा येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमूचुः—अधिवासयतु भगवानस्माकं
नद्या अजिरवत्यास्तीरे श्वोभक्तेन सार्धं भिक्षुसंघेन । नौसंक्रमेणोत्तारयिष्याम इति ।
अधिवासयति भगवान्नाविकानां तूष्णीभावेन ॥

अथ नाविका नद्या अजिरवत्यास्तीरमपगतपाषाणशर्करकठल्लं[1] व्यवस्थापयामासु-
रुच्छ्रितच्छत्रध्वजपताकं नानापुष्पावकीर्णं गन्धघटिकावधूपितम् । प्रणीतमाहारं कृतवन्तः ।
प्रभूतं च पुष्पसंग्रहं कृत्वा नौसंक्रमं पुष्पमण्डपैरलंकारयामासुः । भगवतश्च दूतेन काल-
मारोचयामासुः—समयो भदन्त, सज्जं भक्तम्, यस्येदानीं भगवान् कालं मन्यत इति । अथ
भगवान् भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो येन नाविकग्रामकस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य
पुरस्ताद्भिक्षुसंघस्य प्रज्ञप्त एवासने न्यषीदत् । अथ ते नाविकाः सुखोपनिषण्णं बुद्धप्रमुखं
भिक्षुसंघं विदित्वा शुचिना प्रणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन स्वहस्तं संतर्पयन्ति संप्रवार-
यन्ति । अनेकपर्यायेण शुचिना प्रणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन स्वहस्तं संतर्प्य संप्रवार्य
भगवन्तं भुक्तवन्तं विदित्वा धौतहस्तमपनीतपात्रं[2] नीचतराण्यासनानि गृहीत्वा भगवतः
पुरस्तान्निषण्णा धर्मश्रवणाय । अथ भगवांस्तेषां नाविकानामाशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च
B 65 ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा अनेकैर्नाविकैः स्रोत-
आपत्तिफलानि प्राप्तानि, कैश्चित्सकृदागामिफलानि, कैश्चिदनागामिफलानि, कैश्चित्प्रव्रज्य
सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्, कैश्चिच्छ्रावकबोधौ चित्तान्युत्पादितानि, कैश्चित्प्रत्येक-
बोधौ, कैश्चिदनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । सर्वा च सा पर्षद् बुद्धनिम्ना धर्मप्रवणा संघप्राग्भारा
व्यवस्थिता । ततस्तैर्नाविकैर्भगवान् महता सत्कारेण नौसंक्रमेणोत्तारितः सार्धं भिक्षुसंघेन ॥

---

1 The word कठल्ल is promiscuously spelt as कठल or कठल्य in Mss.
2 Mss. अपनीय पात्रं for अपनीतपात्रं. Compare ओनीतपत्तपाणिं in Pali.

भिक्षवो बुद्धपूजादर्शनादावर्जितमनसो बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कुत्रेमानि भगवतः कुशलमूलानि कृतानीति । भगवानाह— तथागतेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि, येन तथागतस्यैवंविधा पूजा । इच्छथ भिक्षवः श्रोतुम् ? एवं भदन्त । तेन हि भिक्षवः शृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि भागीरथो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स द्वाषष्ट्यर्हत्सहस्रपरिवृतो जनपदचारिकां चरन् गङ्गातीरमनुप्राप्तः । तस्मिन् समयेऽन्यतरः सार्थवाहोऽनेकशतपरिवारो नद्यां गङ्गायां सार्थमुत्तारयति । तस्मिंश्च प्रदेशे महत्तस्करभयम् । अथ ददर्श सार्थवाहो भागीरथं सम्यक्संबुद्धं द्वाषष्ट्यर्हत्सहस्रपरिवृतम् । दृष्ट्वा च पुनः चित्तं प्रसादयामास । प्रसन्नचित्तश्च भगवन्तमामन्त्रितवान्— B 66 तत्प्रथमतरमेव भगवन्तं तारयिष्यामीति । अधिवासयति भागीरथः सम्यक्संबुद्धः सार्थवाहस्य तूष्णीभावेन । ततस्तेन सार्थवाहेन भागीरथः सम्यक्संबुद्धो द्वाषष्ट्यर्हत्सहस्रपरिवृतो महत्या विभूत्या नौसंक्रमेणोत्तारितः । प्रणीतेन चाहारेण संतर्प्यानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ प्रणिधानं कृतम् ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन सार्थवाहो बभूव, अहं सः । मया स भागीरथः सम्यक्संबुद्धो द्वाषष्ट्यर्हत्सहस्रपरिवृतो नौसंक्रमेणोत्तारितः, प्रणीतेनाहारेण संतर्पितः, प्रणिधानं च कृतम् । तस्य मे कर्मणो विपाकेनानन्तसंसारे महत्सुखमनुभूतम् । इदानीमप्यनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धस्यैवंविधा पूजा । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यम्—यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः । शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

१२ स्तम्भः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 67 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किंनरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिंनरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कौरव्येषु जनपदचारिकां चरन् कौरव्यं नगरमनुप्राप्तः । स च कौरव्यो जनकायो बुद्धनेय उदारचित्तः प्रदानरुचिश्च । ततो भगवत एतदभवत्—यन्न्वहं शक्रं देवेन्द्रं मरुद्गणपरिवृतमाह्वयेयम्, यद्दर्शनादेषां कुशलमूलविवृद्धिः

स्यादिति । ततो भगवांल्लौकिकं चित्तमुत्पादयति—अहो बत शक्रो देवेन्द्रो मरुद्गणसहायो गोशीर्षचन्दनमयं स्तम्भमादाय गच्छेदिति ॥ सहचित्तोत्पादाच्छक्रो देवेन्द्रो मरुद्गणपरिवृत आगतो यत्र विश्वकर्मा चत्वारश्च महाराजा अनेकदेवनागयक्षकुम्भाण्डपरिवृता गोशीर्ष-
B 68 चन्दनस्तम्भमादाय । हाहाकारकिलकिलाप्रक्ष्वेडोच्चैर्नादं कुर्वाणा भगवतोऽर्थे गोशीर्षचन्दनमयं प्रासादमभिसंस्कृतवन्तः । ततस्तस्मिन्प्रासादे शक्रेण देवेन्द्रेण भगवान् सश्रावकसंघो दिव्येनाहारेण दिव्येन शयनासनेन दिव्यैर्गन्धमाल्यपुष्पैः सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितः ॥

अथ कौरव्यो जनकायस्तां दिव्यां विभूपिकां[1] दृष्ट्वा परं विस्मयमापन्न इमां चिन्तामापेदे—नूनं बुद्धो भगवांल्लोकेऽग्र्यः । यत्तु नाम सेन्द्रैर्देवैः पूज्यत इति आवर्जितमना भगवन्तमुपसंक्रान्तः । भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वैकान्ते न्यषीदत् । एकान्तनिषण्णः कौरव्यो जनकायस्तस्मिन्प्रासादेऽत्यर्थं प्रसादमुत्पादयति ॥

ततो भगवांस्तत्प्रासादमन्तर्धाप्य अनित्यताप्रतिसंयुक्तां तादृशीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा अनेकैः कौरव्यनिवासिभिर्मनुष्यैः स्रोतआपत्तिफलान्यनुप्राप्तानि, कैश्चित्सकृदागामिफलानि, कैश्चिदनागामिफलानि, कैश्चित्प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्, कैश्चिच्छ्रावकबोधौ चित्तान्युत्पादितानि, कैश्चित्प्रत्येकायां बोधौ, कैश्चिदनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । सर्वा च सा पर्षद् बुद्धनिम्ना धर्मप्रवणा संघप्राग्भारा व्यवस्थापिता ॥

ततस्ते भिक्षवो भगवतो दिव्यपूजादर्शनादावर्जितमनसो बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—
B 69 कुत्रेमानि भगवता कुशलमूलानि कृतानीति ॥ भगवानाह—तथागतेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि, येन तथागतस्यैवंविधा पूजा । इच्छथ भिक्षवः श्रोतुम्? एवं भदन्त । तेन हि भिक्षवः शृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि ब्रह्मा नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि, तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । अथ ब्रह्मा सम्यक्संबुद्धो द्वाषष्ठ्यर्हत्सहस्रपरिवृतो जनपदचारिकां चरन्नन्यतमां राजधानीमनुप्राप्तः । अश्रौषीद्राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तः—ब्रह्मा सम्यक्संबुद्धो द्वाषष्ठ्यर्हत्सहस्रपरिवृतो जनपदचारिकां चरन्नस्माकं विजितमनुप्राप्त इति । श्रुत्वा च पुनर्महत्या राजर्द्ध्या महता राजानुभावेन येन भगवान् ब्रह्मा सम्यक्संबुद्धस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य ब्रह्मणः सम्यक्संबुद्धस्य पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते न्यषीदत् । एकान्तनिषण्णं राजानं क्षत्रियं मूर्धाभिषिक्तं भगवान् बोधिकरकैर्धर्मैः समादापयति । अथ स राजा लब्धप्रसाद उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमिदमवोचत्—अधिवासयतु

1 Speyer suggests विभूषिकां for विभूपिकां.

मे भगवानस्यां राजधान्यां त्रैमास्यवासाय । अहं भगवन्तं सश्रावकसंघमुपस्थास्यामि चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैरिति । अधिवासयति ब्रह्मा सम्यक्संबुद्धो राज्ञस्तूष्णींभावेन । अथ स राजा मूर्धाभिषिक्तो भगवतोऽर्थे गोशीर्षचन्दनमयं प्रासादं कारयामास । स तं विचित्रैर्वस्त्रालंकारैरलंकृतं नानापुष्पावकीर्णं गन्धघटिकाधूपितं भगवतः B 70 सश्रावकसंघस्य निर्यात्य त्रैमास्यं प्रणीतेनाहारेण संतर्प्य विविधैर्वस्त्रविशेषैराच्छाद्यानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ प्रणिधिं चकार ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तो बभूव, अहं सः । यन्मया ब्रह्मणः सम्यक्संबुद्धस्यैवंविधा पूजा कृता, तस्य मे कर्मणो विपाकेनानन्तसंसारे महत्सुखमनुभूतम् । इदानीमप्यनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धस्यैवंविधा पूजा । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः । शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

—x—

१३ स्नात्रम् ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 71 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन श्रावस्त्यां पञ्चमात्राणि वणिक्शतानि कान्तारमार्गप्रतिपन्नानि । ते मार्गात्परिभ्रष्टा यावत्कान्तारमनुप्राप्ताः । ते घर्मश्रमपरिपीडिताः क्षीणपथ्यादनाश्च मध्याह्नसमये तीक्ष्णकररश्मिसंतापिता जलोद्धृता इव मत्स्याः पृथिव्यामावर्तन्ते दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां वेदयमानाः । तानि देवतासहस्राण्यायाचन्ते—तद्यथा—शिववरुणकुबेरवासवादीनि । न चैनान् कश्चित्परित्रातुं समर्थः ॥

तत्र चान्यतर उपासको बुद्धशासनाभिज्ञः । स तान् वणिज आह—भवन्तो B 72 बुद्धं शरणं गच्छन्त्विति ॥ तत एकरवेण सर्व एव बुद्धं शरणं गताः ॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम् । धर्मता खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलप्रतिष्ठितानां चतुर्षु संग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां

स्यादिति । ततो भगवांल्लौकिकं चित्तमुत्पादयति—अहो बत शक्रो देवेन्द्रो मरुद्गणसहायो गोशीर्षचन्दनमयं स्तम्भमादाय गच्छेदिति ॥ सहचित्तोत्पादाच्छक्रो देवेन्द्रो मरुद्गणपरिवृत आगतो यत्र विश्वकर्मा चत्वारश्च महाराजा अनेकदेवनागयक्षकुम्भाण्डपरिवृता गोशीर्ष-
B 68 चन्दनस्तम्भमादाय । हाहाकारकिलकिलाप्रक्ष्वेडोच्चैर्नादं कुर्वाणा भगवतोऽर्थे गोशीर्षचन्दनमयं प्रासादमभिसंस्कृतवन्तः । ततस्तस्मिन्प्रासादे शक्रेण देवेन्द्रेण भगवान् सश्रावकसंघो दिव्येनाहारेण दिव्येन शयनासनेन दिव्यैर्गन्धमाल्यपुष्पैः सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितः ॥

अथ कौरव्यो जनकायस्तां दिव्यां विभूषिकां[1] दृष्ट्वा परं विस्मयमापन्न इमां चिन्तामापेदे—नूनं बुद्धो भगवांल्लोकेऽग्र्यः । यत्तु नाम सेन्द्रैर्देवैः पूज्यत इति आवर्जितमना भगवन्तमुपसंक्रान्तः । भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वैकान्ते न्यषीदत् । एकान्तनिषण्णः कौरव्यो जनकायस्तस्मिन्प्रासादेऽत्यर्थं प्रसादमुत्पादयति ॥

ततो भगवांस्तत्प्रासादमन्तर्धाप्य अनित्यताप्रतिसंयुक्तां तादृशीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा अनेकैः कौरव्यनिवासिभिर्मनुष्यैः स्रोतआपत्तिफलान्यनुप्राप्तानि, कैश्चित्सकृदागामिफलानि, कैश्चिदनागामिफलानि, कैश्चित्प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्, कैश्चिच्छ्रावकबोधौ चित्तान्युत्पादितानि, कैश्चित्प्रत्येकायां बोधौ, कैश्चिदनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । सर्वा च सा पर्षद् बुद्धनिम्ना धर्मप्रवणा संघप्राग्भारा व्यवस्थापिता ॥

ततस्ते भिक्षवो भगवतो दिव्यपूजादर्शनादावर्जितमनसो बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—
B 69 कुत्रेमानि भगवता कुशलमूलानि कृतानीति ॥ भगवानाह—तथागतेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि, येन तथागतस्यैवंविधा पूजा । इच्छथ भिक्षवः श्रोतुम्? एवं भदन्त । तेन हि भिक्षवः शृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि ब्रह्मा नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि, तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । अथ ब्रह्मा सम्यक्संबुद्धो द्वाषष्ट्यर्हत्सहस्रपरिवृतो जनपदचारिकां चरन्नन्यतमां राजधानीमनुप्राप्तः । अश्रौषीद्राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तः—ब्रह्मा सम्यक्संबुद्धो द्वाषष्ट्यर्हत्सहस्रपरिवृतो जनपदचारिकां चरन्नस्माकं विजितमनुप्राप्त इति । श्रुत्वा च पुनर्महत्या राजर्द्ध्या महता राजानुभावेन येन भगवान् ब्रह्मा सम्यक्संबुद्धस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य ब्रह्मणः सम्यक्संबुद्धस्य पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते न्यषीदत् । एकान्तनिषण्णं राजानं क्षत्रियं मूर्धाभिषिक्तं भगवान् बोधिकरकैर्धर्मैः समादापयति । अथ स राजा लब्धप्रसाद उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमिदयोचत्—अधिवासयतु

---

1 Speyer suggests विभूतिकां for विभूषिकां.

मे भगवानस्यां राजधान्यां त्रैमास्यवासाय। अहं भगवन्तं सश्रावकसंघमुपस्थास्यामि चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैरिति। अधिवासयति ब्रह्मा सम्यक्संबुद्धो राज्ञस्तूष्णीभावेन। अथ स राजा मूर्धाभिषिक्तो भगवतोऽर्थे गोशीर्षचन्दनमयं प्रासादं कारयामास। स तं विचित्रैर्वस्त्रालंकारैरलंकृतं नानापुष्पावकीर्णं गन्धघटिकाधूपितं भगवतः B 70 सश्रावकसंघस्य निर्यात्य त्रैमास्यं प्रणीतेनाहारेण संतर्प्य विविधैर्वस्त्रविशेषैराच्छाद्यानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ प्रणिधिं चकार॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तो बभूव, अहं सः। यन्मया ब्रह्मणः सम्यक्संबुद्धस्यैवंविधा पूजा कृता, तस्य मे कर्मणो विपाकेनानन्तसंसारे महत्सुखमनुभूतम्। इदानीमप्यनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धस्यैवंविधा पूजा। तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः। शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

—×—

१२ स्नात्रम्।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। तेन खलु समयेन श्रावस्त्यां पञ्चमात्राणि वणिक्शतानि कान्तारमार्गप्रतिपन्नानि। ते मार्गात्परिभ्रष्टा वालुकास्थलमनुप्राप्ताः। ते घर्मश्रमपरिपीडिताः क्षीणपथ्यादनाश्च मध्याह्नसमये तीक्ष्णकररश्मिसंतापिता जलोद्धृता इव मत्स्याः पृथिव्यामावर्तन्ते दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां वेदयमानाः। तानि देवतासहस्राण्यायाचन्ते—तद्यथा—शिववरुणकुबेरवासवादीनि। न चैनान् कश्चित्परित्रातुं समर्थः॥ B 71

तत्र चान्यतर उपासको बुद्धशासनाभिज्ञः। स तान् वणिज आह—भवन्तो B 72 बुद्धं शरणं गच्छन्त्विति॥ तत एकरवेण सर्व एव बुद्धं शरणं गताः॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम्। धर्मता खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलप्रतिष्ठितानां चतुर्षु संग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां

नवानुपूर्वसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः । कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्य कामपङ्कनिमग्नस्य हस्तोद्धारमनुप्रदद्याम्, कमार्यधनविरहितमार्यधनैश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम् । आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः ।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत् ॥ १ ॥

B 73 यावत्पश्यति भगवान् संबहुलान् वणिजो व्यसनसंकटसंबाधप्राप्तान् । ततश्चक्षुःसंप्रेषणमात्रेण जेतवनेऽन्तर्हितो भिक्षुगणपरिवृतस्तं प्रदेशमनुप्राप्तः । ददृशुस्ते वणिजो भगवन्तं सभिक्षुसंघम् । दृष्ट्वा च उच्चैर्नादं मुक्तवन्तः । ततो भगवता लौकिकं चित्तमुत्पादितम्—अहो बत शक्रो देवेन्द्रो माहेन्द्रं वर्षमुत्सृजतु, शीतलाश्च वायवो वान्त्विति । सहचित्तोत्पादाद्भगवतः शक्रेण माहेन्द्रं वर्षमुत्सृष्टम्, शीतलाश्च वायवः प्रेषिताः, यतस्तेषां वणिजां तृषा विगता, दाहश्च प्रशान्तः । ततस्तैर्वणिग्भिः संज्ञा प्रतिलब्धा । भगवता चैषां मार्ग आख्यातो येन श्रावस्तीमनुप्राप्ताः ॥

ते मार्गश्रमं प्रतिविनोद्य ततो भगवत्सकाशमुपसंक्रान्ताः । तेषां भगवता तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा कैश्चित्स्रोतआपत्तिफलमधिगतम्, कैश्चित्सकृदागामिफलम्, कैश्चिदनागामिफलम्, कैश्चित्प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्, कैश्चिच्छ्रावकबोधौ चित्तान्युत्पादितानि, कैश्चित्प्रत्येकायां बोधौ, कैश्चिदनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । यद्भूयसा च सा पर्षद्बुद्धनिम्ना धर्मप्रवणा संघप्राग्भारा व्यवस्थिता ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—आश्चर्यं भगवन्, B 74 यावदिमे वणिजो भगवता कान्तारमार्गात्परित्राताः । सहचित्तोत्पादाच्च माहेन्द्रवर्षं वृष्टम् । शीतलाश्च वायवः प्रवाता इति । भगवानाह—तथागतेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । मयैतानि कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि अपि कल्पशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ २ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि चन्दनो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता

देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । अथ चन्दनः सम्यक्संबुद्धो जनपदचारिकां चरन्नन्यतमां B 75
राजधानीमनुप्राप्तः । अथ राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तो येन चन्दनः सम्यक्संबुद्धस्तेनोप-
संक्रान्तः । उपसंक्रम्य चन्दनस्य सम्यक्संबुद्धस्य पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते न्यषीदत् ।
एकान्ते निषण्णं राजानं क्षत्रियं मूर्धाभिषिक्तं चन्दनं सम्यक्संबुद्धो बोधिकरकैर्धर्मैः
समादापयति । अथ राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्त उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं
जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन चन्दनः सम्यक्संबुद्धस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य चन्दनं
सम्यक्संबुद्धमिदमवोचत्—अधिवासयतु मे भगवानस्यां राजधान्यां त्रैमास्यवासाय सार्धं
भिक्षुसंघेनेति । अधिवासयति चन्दनः सम्यक्संबुद्धो राज्ञस्तूष्णीभावेन । तत्र च समये
महती अनावृष्टिः प्रादुर्भूता, यया नद्युदपानान्यल्पसलिलानि संवृत्तानि, पुष्पफलवियुक्ताश्च
पादपाः । ततो राजा चन्दनं सम्यक्संबुद्धमध्येषितुं प्रवृत्तः—भगवन्, अस्मिन्नगरमध्ये
पुष्करिणीं गन्धोदकपरिपूर्णां कारयिष्यामि, यत्र भगवान् सश्रावकसंघः स्नास्यति ।
अप्येव नाम भगवतः स्नानादस्मिन् मे विजिते देवो वर्षेदिति । अधिवासयति भगवांश्चन्दनः
सम्यक्संबुद्धो राज्ञस्तूष्णीभावेन ॥

ततो राज्ञा क्षत्रियेण मूर्धाभिषिक्तेनामात्येभ्य आज्ञा दत्ता—गन्धोदकं सज्जीकुर्वन्तु
भवन्तः, रत्नमयांश्च कुम्भान्, येन वयं भगवन्तं सश्रावकसंघं स्नापयिष्याम इति । ततो राज्ञा B 76
अमात्यगणपरिवृतेन तन्नगरमपगतपाषाणशर्करकठल्लं व्यवस्थापितमुच्छ्रितध्वजपताकं नाना-
पुष्पावकीर्णं गन्धोदकपरिषिक्तं विचित्रधूपधूपितम् । पुष्करिणी चास्य कारिता । ततो
भगवांश्चन्दनः सम्यक्संबुद्धः सर्वानुग्रहार्थमेकचीवरकः पुष्करिण्यां स्थितः । ततो राज्ञामात्य-
गणपरिवृतेन चन्दनः सम्यक्संबुद्धः सश्रावकसंघो नानागन्धपरिभावितेनोदकेन स्नापितः ।
सहस्नानादेव चन्दनस्य सम्यक्संबुद्धस्य शक्रेण देवेन्द्रेण तथाविधं माहेन्द्रं वर्षमुत्सृष्टं येन
सर्वसस्यानि निष्पन्नानि । तद्धेतुकं च महाजनकायेन बुद्धे भगवति श्रद्धा प्रतिलब्धा ।
अनेके च गन्धस्तूपाः प्रतिष्ठापिताः । ये च तत्र चन्दनं सम्यक्संबुद्धं शरणं गताः, सर्वे ते B 77
परिनिर्वृताः । अहमेकस्तेषामवशिष्टः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं
सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः । शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मान-
यित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---:o:---

१४ ईतिः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 78
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुड-
किन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासन-
ग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति वेणुवने कलन्दक-

निवापे । तस्मिंश्च समये नाडकन्थायां महाजनमरको बभूव । ततो जनकायो रोगैः पीडितः तानि तानि देवतासहस्राण्यायाचते शिववरुणकुबेरवासवादीनि । न चास्य सा ईतिरुपशमं गच्छति । अथान्यतम उपासको नाडकन्थायां प्रतिवसति । स नाडकन्थेयान् ब्राह्मणगृहपतीनिदमवोचत्—एत यूयं बुद्धं शरणं गच्छत, तं च भगवन्तमायाचध्वमिहागमनाय । अप्येव भगवता स्वल्पकृच्छ्रेणास्या ईतेर्व्युपशमः स्यादिति । अथ नाडकन्थेया ब्राह्मणगृहपतयो भगवन्तमायाचितुं प्रवृत्ताः—आगच्छतु भगवानस्माद् व्यसनसंकटान्मोचनायेति ॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम् । धर्मता खलु
B 79 बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां
त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां चतुर्षु संग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः । कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्य कामपङ्कनिमग्नस्य हस्तोद्धारमनुप्रदद्याम्, कमार्यधनविरहितमार्यधनैश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम् । आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः ।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत् ॥ १ ॥

अथ भगवान् पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो नाडकन्थामनुप्राप्तः । ततो भगवता तन्नगरं सर्वं हृदि मैत्र्या स्फुटम्, यतो मरकाः प्रक्रान्ताः, ईतिश्च व्युपशान्ता । ततस्तेषां ब्राह्मणगृहपतीनां बुद्धदर्शनान्महाप्रसाद उत्पन्नः, प्रसादजातैश्च भगवान् सश्रावकसंघः चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैः संप्र-
B 80 वारितः । ततस्तेभ्यो भगवता तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा अनेकैर्ब्राह्मणगृहपतिभिः स्रोतआपत्तिफलमनुप्राप्तम्, अपरैः सकृदागामिफलमनुप्राप्तम्, अपरैः अनागामिफलम्, अपरैः प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । सर्वं च तन्नगरं बुद्धनिम्नं धर्मप्रवणं संघप्राग्भारं संवृत्तम् ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—आश्चर्यं भदन्त यावदिमे सत्त्वा भगवतः प्रसादात् व्यसनगताः सन्तो व्यसनात्परिमुक्ता इति । भगवानाह—तथागतेनैवैतानि भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । मयैव तानि कर्माणि कृतान्युपचितानि ।

१४ ईतिः ।

कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, न अब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ २ ॥ B 61

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि चन्द्रो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । अथ चन्द्रः सम्यक्संबुद्धो जनपदचारिकां चरन्नन्यतमां राजधानीमनुप्राप्तः । अश्रौषीद्राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तश्चन्द्रः—सम्यक्संबुद्धोऽस्माकं विजितमनुप्राप्त इति । श्रुत्वा च पुनर्महत्या राजर्द्ध्या महता राजानुभावेन समन्वागतो येन चन्द्रः सम्यक्संबुद्धस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य चन्द्रस्य सम्यक्संबुद्धस्य पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते न्यषीदत् । एकान्तनिषण्णं राजानं क्षत्रियं मूर्धाभिषिक्तं चन्द्रः सम्यक्संबुद्धो बोधिकरकैर्धर्मैः समादापयति । अथ राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तो लब्धप्रसाद उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन चन्द्रः सम्यक्संबुद्धस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य चन्द्रं सम्यक्संबुद्धमिदमवोचत्—अधिवासयतु मे भगवानिह वासं त्रैमास्यं सार्धं भिक्षुसंघेन । अहं भगवन्तमुपस्थास्यामि चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैरिति । अधिवासयति चन्द्रः सम्यक्संबुद्धो राज्ञस्तूष्णीभावेन । तस्य च राज्ञो नगरे तेन समयेन महाजनमरको बभूव, ईतिश्च, येन स महाजनकायोऽतीव संतप्यते । ततो राज्ञा व्याधिप्रशमनार्थं चन्द्रः सम्यक्संबुद्धोऽधीष्टः—साधु भगवन्, क्रियतामस्या ईतेरुपशमोपाय B 62 इति । ततो भगवांश्चन्द्रः सम्यक्संबुद्धो राजानमुवाच—गच्छ महाराज इमां संघाटीं ध्वजाग्रे बद्ध्वा महता सत्कारेण स्वे विजिते पर्यटय, अस्य च महान्तमुत्सवं कुरु । सर्वं च महाजनकायं बुद्धानुस्मृतौ समादापयेति । ते स्वस्तिर्भविष्यतीति । ततो राज्ञा यथानुशिष्टं सर्वं तथैव च कृतम् । तद्धेतुतत्प्रत्ययं च सर्वा ईतयः प्रशान्ताः । ततः स जनकायो लब्धप्रसादो राजामात्यपौराश्च बुद्धं शरणं गताः, धर्मं संघं च शरणं गताः ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन राजा बभूव, अहं सः । मयासौ चन्द्रस्य सम्यक्संबुद्धस्य महती पूजा कृता । तस्य मे कर्मणो विपाकेन देवमनुष्यसंप्रापकं संसारे महत्सुखमनुभूतम् । इदानीमपि तद्धेतुक्येव विभूतिः, येन यच्चिन्तयामि यत्प्रार्थये तत्तथैव सर्वं समृध्यति । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः । शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

१५ प्रातिहार्यम् ।

B 83 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति स्म वेणुवने कलन्दकनिवापे । यदा राज्ञा अजातशत्रुणा देवदत्तविग्राहितेन पिता धार्मिको धर्मराजो जीविताद्व्यपरोपितः, स्वयमेव च राज्ये प्रतिष्ठितः, तदा ये अश्राद्धास्ते बलवन्तो जाताः, श्राद्धास्तु दुर्बलाः संवृत्ताः । यावदन्यतमो वृद्धामात्योऽश्राद्धो भगवच्छासनविद्वेषी, स ब्राह्मणेभ्यो यज्ञमारब्धो यष्टुम् । तत्रानेकानि ब्राह्मणशतसहस्राणि संनिपतितानि । तैः
B 84 क्रियाकारः कृतः—न केनचिच्छ्रमणगौतमं दर्शनायोपसंक्रमितव्यम् । अथ ते ब्राह्मणाः कृतावयः[1] समग्राः संमोदमाना वीथीमध्ये वेदोक्तेन विधिना शक्रमायाचितुं प्रवृत्ताः—एह्येहि अहल्याजार ॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम् । धर्मता खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां चतुर्षु संग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः । कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्य कामपङ्कनिमग्नस्य हस्तोद्धारमनुप्रदद्याम्, कमार्यधनविरहितमार्यधनैश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम् । आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः ।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत् ॥ १ ॥

B 85 पश्यति भगवान्—इमे ब्राह्मणाः पूर्वावरोपितकुशलमूला गृहीतमोक्षमार्गाः सत्यदर्शिनोऽभिमुखा निर्वाणे बहिर्मुखाः संसारादकल्याणमित्रसंसर्गादिदानीं मच्छासनं विद्विषन्ति, यन्न्वहमेषां विनयहेतोरौत्सुक्यमापद्येयेति । अथ भगवाञ्छक्रवेषमभिनिर्माय तं यज्ञवाटं दिव्येनावभासेनावभास्य अवतरितुमारब्धः । ततस्ते ब्राह्मणा हृष्टतुष्टप्रमुदिता उदग्रप्रीति-

[1] Speyer reads कृतावयः and holds that it stands for कृताविनः from कृताविन्, similar to सिक्खितावी, सुतावी in Pali.

सौमनस्यजाता एकसमूहेनोक्तवन्तः—एह्येहि भगवन्, स्वागतं भगवत इति । ततो भगवान् शक्रवेषधारी प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः । एष शब्दो राजगृहे नगरे समन्ततो विसृतः—यज्ञे शक्रो देवेन्द्रोऽवतीर्ण इति । यं श्रुत्वानेकानि प्राणिशतसहस्राणि संनिपतितानि । ततो भगवान् आवर्जिता ब्राह्मणा इति विदित्वा शक्रवेषमन्तर्धाप्य बुद्धवेषेणैव स्थित्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा षष्ट्या ब्राह्मणसहस्रैर्विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम्, अनेकैश्च प्राणिशतसहस्रैर्भगवति श्रद्धा प्रतिलब्धा ॥

ततो भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—आश्चर्यं भदन्त यावदेभिर्ब्राह्मणैर्भगवन्तमागम्य सत्यदर्शनं कृतम्, अनेकैश्च प्राणिशतसहस्रैर्महान् B 86
प्रसादोऽधिगत इति । भगवानाह—तथागतेनैतानि भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययान्योघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । मयैतानि कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ २ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि इन्द्रदमनो नाम सम्यक्संबुद्धो लोके उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स जनपदचारिकां चरन्नन्यतमां राजधानीमनुप्राप्तः । सा राजधानी तीर्थिकावष्टब्धा । अश्रौषीदन्यतमो राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्त इन्द्रदमनः—सम्यक्संबुद्धोऽस्माकं विजितमनुप्राप्त इति । श्रुत्वा च पुनर्महत्या राजर्द्ध्या महता राजानुभावेन समन्वागतो येनेन्द्रदमनः सम्यक्संबुद्धस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवत इन्द्रदमनस्य सम्यक्संबुद्धस्य पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णः । एकान्ते निषण्णं राजानं क्षत्रियं मूर्धाभिषिक्तमिन्द्रदमनः सम्यक्संबुद्धो बोधिकरैर्धर्मैः समादापयति । अथ स राजा लब्धप्रसाद उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां
प्रतिष्ठाप्य येनेन्द्रदमनः सम्यक्संबुद्धस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य इन्द्रदमनं सम्यक्संबुद्धमिदमवोचत्— B 87
अधिवासयतु मे भगवांस्त्रैमास्यवासाय । अहं भगवन्तमुपस्थास्यामि चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैरिति । भगवानाह—अस्ति ते महाराज विजिते कश्चिद्विहारो यत्रागन्तुका गमिकाश्च भिक्षवो वासं कल्पयिष्यन्तीति ? राजोवाच— नास्ति भगवन्, किं तर्हि तिष्ठतु भगवान्, अहं विहारं कारयिष्यामि, यत्रागन्तुका गमिकाश्च भिक्षवो वासं कल्पयिष्यन्तीति । ततो राज्ञा तथागतस्यार्थे विहारः कारितः अविद्धप्राकारतोरणो गवाक्ष-

निर्यूहजालार्धचन्द्रवेदिकाप्रतिमण्डित आस्तरणोपेतो जलाधारसंपूर्णस्तरुगणपरिवृतो नानापुष्पफलोपेतः । कृत्वा च भगवतः सश्रावकसंघस्य निर्यातितः । अधीष्टश्च भगवान् महाप्रातिहार्यं प्रति । ततो भगवता इन्द्रदमनेन सम्यक्संबुद्धेन राज्ञोऽध्येषया महाप्रातिहार्यं विदर्शितं बुद्धावतंसकविक्रीडितम्, यद्दर्शनाद्राजा सामात्यनैगमजानपदः सर्वे च नागराः सुप्रसन्नाः शासने संरक्ततराः संवृत्ताः ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन राजा बभूव, अहं सः । मया सा इन्द्रदमनस्य सम्यक्संबुद्धस्यैवंविधा पूजा कृता । तस्य मे कर्मणो विपाकेन संसारेऽनन्तं सुखमनुभूतम् । इदानीं मे तथागतस्य सत इयं शासनशोभा । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः । शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥



१६ पञ्चवार्षिकम् ।

B 88 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति स्म वेणुवने कलन्दकनिवापे । यदा देवदत्तेन मोहपुरुषेण भगवच्छासनेऽनर्थसहस्राणि कृतानि, न च शकितं भगवतो रोमोञ्जनमपि कर्तुम्, तदा राजानमजातशत्रुमामन्त्रितवान्—क्रियतां राजगृहे क्रियाकारो न केनचिच्छ्रमणस्य गौतमस्योपसंक्रमितव्यम्, पिण्डकेन वा प्रतिपादयितव्यः । एवमयमलब्धलाभोऽलब्धसंमानो नियतमन्यदेशं संक्रान्तिं करिष्यतीति । राज्ञा तथा कारितम् । तत्र ये उपासका दृष्टसत्यास्ते रोदितुं प्रवृत्ताः—हा कष्टमनाथीभूतं राजगृहनगरं यत्र हि नाभोदुम्बरपुष्पदुर्लभप्रादुर्भावं बुद्धं भगवन्तमासाद्य तस्य न शक्यते संग्रहः B 89 कर्तुमिति । एष शब्दः श्रुतिपरंपरया भिक्षुभिः श्रुतः । तत आयुष्मतानन्देन यथाश्रुतं भगवतो निवेदितः । भगवानाह—अल्पोत्सुकस्त्वमानन्द भव, तथागता एवात्र कालज्ञाः । अपि तु यावच्छासनं मे तावच्छ्रावकाणामुपकरणवैकल्यं न भविष्यति प्रागेवेदानीमिति ॥

अथान्तरे शक्रस्य देवानामिन्द्रस्याधस्ताज्ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते । स पश्यति भगवच्छासनस्यैवंविधां विकृतिम् । सहदर्शनादेव दायकदानपतीनामुत्साहसंजननार्थं बुद्धोत्पादस्य माहात्म्यसंजननार्थमजातशत्रोर्देवदत्तस्य च मददर्पच्छित्त्यर्थमात्मनश्च प्रसादसंजननार्थं सकलं राजगृहमुदारेणावभासेनावभास्योच्चैःशब्दमुदाहरितवान्—एषोऽहमद्याग्रेण भगवन्तं सश्रावकसंघं दिव्यैश्चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैरुपस्थास्यामि । इत्युक्त्वा येन

भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते स्थितः। अथ शक्रो देवेन्द्रो भगवन्तमिदमवोचत्—अधिवासयतु मे भगवानस्मिन्नेव राजगृहे नगरे। अहं भगवन्तमुपस्थास्यामि दिव्यैश्चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैरिति। भगवानाह—अलं कौशिक, कृतमेतयावदेव चित्तमभिप्रसन्नम्। बहवो हि लोके पुण्यकामा इति। शक्रः प्राह—अधिवासयतु मे भगवान् पञ्चवर्षाणि। तथागतस्यार्थे पञ्चवार्षिकं करिष्यामीति। भगवानाह—अलं कौशिक, कृतमेतयावच्चित्तमभिप्रसन्नम्। बहवो हि लोके पुण्यकामा इति। शक्रः प्राह—अधिवासयतु मे भगवान् पञ्च दिवसानिति। ततो भग- B 80)
वान् स्वपुण्यबलप्रत्यक्षीकरणार्थं शक्रस्य च देवेन्द्रस्यानुग्रहार्थमनागतपञ्चवार्षिकप्रबन्धहेतोश्चाधिवासितवांस्तूष्णीभावेन॥

अथ शक्रो देवेन्द्रो भगवतस्तूष्णीभावेनाधिवासनां विदित्वा तद्वेणुवनं वैजयन्तं प्रासादं प्रदर्शितवान्, दिव्यानि चासनानि, दिव्याः पुष्करणीर्दिव्यं च भोजनम्। अथ भगवान् प्रज्ञप्त एव आसने निषण्णः। ततः शक्रो देवेन्द्रः सुखोपनिषण्णं बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं विदित्वा अनेकदेवतासहस्रपरिवृतः स्वहस्तं संतर्पयति संप्रवारयति। अनेकपर्यायेण स्वहस्तं संतर्प्य संप्रवार्य भगवन्तं भुक्तवन्तं विदित्वा धौतहस्तमपनीतपात्रं नीचतरमासनं गृहीत्वा भगवतः पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। ततो भगवान् शक्रं देवेन्द्रं सपरिवारं धर्म्यया कथया संदर्शयति समादापयति समुत्तेजयति संप्रहर्षयति। पश्यति च राजा अजातशत्रुरुपरिप्रासादतलगतः सन् भगवतो वेणुवने एवंविधां पूजाम्। दृष्ट्वा च पुनर्विप्रतिसारजातो महान्तं प्रसादं प्रवेदितवान्। राजगृहनिवासिनश्च पौरा धर्मवेगप्राप्ता राजानमुपसंक्रम्यैवमूचुः—मुष्यन्ते देव महाराज राजगृहनिवासिनः पौराः, यत्र नाम देवाः प्रमत्ताः सन्तः प्रमादविहारिणो दिव्यान् विषयानपहाय भगवन्तं पूजयन्ति। साधु देव उद्घाट्यतां क्रियाकार इति॥

ततो राज्ञा अजातशत्रुणा क्रियाकारमुद्घाट्य राजगृहे नगरे घण्टावघोषणं कारितम्—क्रियतां भगवतः सत्कारो यथासुखमिति। ततो राजगृहनिवासिनः पौराः सपरिवारा हृष्टतुष्टप्रमुदिता उदग्रप्रीतिसौमनस्यजाताः पुष्पगन्धमाल्यान्यादाय भगवन्तं दर्शनायोप- B 81
संक्रान्ताः। ततो देवैर्मनुष्यैश्च भगवतो महान् सत्कारः कृतः, भगवता च तदधिष्ठानं देवमनुष्याणां तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा अनेकैर्देवमनुष्यैः सत्यदर्शनं कृतम्॥

भिक्षवो भगवतः पूजां दृष्ट्वा संशयजाता भगवन्तं पप्रच्छुः—आश्चर्यं भदन्त यद्भगवतः शासने एवंविध उत्सव इति। भगवानाह—तथागतेनैवैतानि भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। मयैतानि कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ,

न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि रत्नशैलो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स जनपदचारिकां चरन्नन्यतमां राजधानीमनुप्राप्तः । तस्यां च राजधान्यां धर्मबुद्धिर्नाम राजा राज्यं कारयति । तस्यां च राजधान्यां महती ईतिः । ततस्तेन राज्ञा ईतिप्रशमनहेतोर्भगवान् श्रावकसंघस्त्रैमास्ये भक्तेनोपनिमन्त्रितः । त्रयाणां मासानाम् B 92 अत्ययेन सा ईतिः प्रशान्ता । ततो राज्ञा नागरैश्चावर्जितमानसैस्तथागतस्य सश्रावकसंघस्य पञ्चवार्षिकं कृतम् । आह च—

राजभूतेन आनन्द रत्नशैलो महाद्युतिः ।
अधीष्टः शान्तिकामेन अकार्षीत्पञ्चवार्षिकम् ॥ २ ॥ इति ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन राजा बभूव, अहं सः । यन्मया रत्नशैलस्य तथागतस्य पञ्चवार्षिकं कृतम्, तेन मे संसारे महत्सुखमनुभूतम् । तद्धेतुकश्चेदानीं तथागतस्यैवंविधः सत्कारः । परिनिर्वृतस्य च मे शासने अनेकानि पञ्चवार्षिकशतानि भविष्यन्ति । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यम् यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः । शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

१७ स्तुतिः ।

B 93 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन श्रावस्त्यां पञ्चमात्राणि गान्धर्विकशतानि गोष्टिकानां प्रतिवसन्ति । तत्र च काले सुप्रियो नाम गान्धर्विकराजोऽभ्यागतः । तस्यैवंविधा शक्तिः—एकस्यां तन्त्र्यां सप्त स्वरानादर्शयति, एकविंशतिं मूर्छनाः । स षण्महानगराण्यपटुकान्युद्घोषयमाणः श्रावस्तीमनुप्राप्तः । श्रावस्तीनिवासिभिश्च गान्धर्विकै राज्ञे निवेदितम् । राजाह—अल्पोत्सुका भवन्तु भवन्तः, वयमत्र कालज्ञा भविष्याम इति ॥

अथ सुप्रियस्य गान्धर्विकराजस्यैतदभवत्—एवमनुश्रूयते राजा प्रसेनजिद्गान्धर्वेऽतीव B. 94
कुशलः । यन्न्वहमनेन सह वादमारोचयेयमिति । ततः सुप्रियो गान्धर्विकराजो येन
राजा प्रसेनजित्कौशलस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य राजानं प्रसेनजितं कौशलमिदमवोचत्—
श्रुतं मे राजन् यथा त्वं गान्धर्वकुशल इति । यदि ते अगुरु, मीमांसस्वेति । ततो राज्ञा
प्रसेनजिता तस्य विक्षेपः कृतः । उक्तश्च—साधो अस्ति मे गुरुर्जेतवने स्थितोऽनुत्तरो
गान्धर्विकराजः । एहि तत्समीपं यास्याम इति । अथ राजा प्रसेनजित्कौशलः पञ्चमात्रै-
र्गान्धर्विकशतैः परिवृतः सुप्रियेण गान्धर्विकराजेनानेकैश्च प्राणिशतसहस्रैर्जेतवनं गतः ॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम् । धर्मता
खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यना-
विहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां
चतुर्षु संग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां
षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां
नवानुपूर्वविहारसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्ति-
प्रतिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को B 95
हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकट-
संबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः । कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे
मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्य कामपङ्कनिमग्नस्य हस्तोद्धारमनुप्रदद्याम्, कमार्यधनविरहित-
मार्यधनैश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्याव-
रोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम् । आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः ।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत् ॥ १ ॥

ततो भगवान् वैनेयजनानुग्रहार्थं लौकिकं चित्तमुत्पादितवान् । अहो बत पञ्चशिखो
गन्धर्वपुत्रः सप्तगन्धर्वसहस्रपरिवृतो वैदूर्यदण्डां वीणामादाय मत्सकाशमुपसंक्रामेदिति ।
सहचित्तोत्पादात्पञ्चशिखो गन्धर्वपुत्रः सप्तगन्धर्वसहस्रपरिवृतो भगवन्तं यथावदभ्यर्च्य भग-
वतो वैदूर्यदण्डां वीणामुपनयति स्म । ततः सुप्रियो गन्धर्वराजो भगवतः पुरस्ताद्वीणामनु-
श्रावयितुमारब्धः । यत एकस्यां तन्त्र्यां सप्त स्वराणि एकविंशतिं मूर्च्छनाश्च दर्शयितुमारब्धः,
यच्छ्रवणाद्राजा प्रसेनजिदन्यतमश्च महाजनकायः परं विस्मयमापन्नः । ततो भगवानपि D 96
वैदूर्यदण्डां वीणामाश्रावितवान्—यत एकैकस्यां तन्त्र्यामनेके स्वरविशेषा मूर्च्छनाश्च बहु-
प्रकारा दर्शिताः, ते च शून्याकारेणैव । इदं च शरीरं वीणावदादर्शितवान्, स्वरानिन्द्रिय-
वत्, मूर्च्छनाश्चित्तधातुवत् । यच्छ्रवणादावर्जितः सुप्रियो गन्धर्वराजो वीणां गन्धकुट्यां
निर्यात्य भगवत्सकाशे प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्च-
गण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया

पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चनः आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः॥

तत्र आवर्जिता देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगा भगवच्छासने रक्षावरणगुप्तिं कर्तुमारब्धाः। पञ्चानामपि गान्धर्विकशतानां प्रीतिसौमनस्यजातानामेतदभवत्—वयं नीचे कर्मणि वर्तामहे कृच्छ्रवृत्तयश्च। यन्नु वयं राजानं विज्ञाप्य भगवन्तं सश्रावकसंघं नगरप्रवेशेनोपनिमन्त्रयेमहीति। यावत्तैर्गान्धर्विकैर्लब्धानुज्ञैर्भगवान् सश्रावकसंघो नगरप्रवेशेनोपनिमन्त्रितः। अधिवासितं च भगवता तेषां गान्धर्विकाणां तूष्णीभावेन। ततस्तैर्गान्धर्विकै राजामात्यपौरजानपदसहायैः सर्वा श्रावस्ती नगरी अपगतपाषाणशर्करकठल्ला गन्धोदकपरिषिक्ता नानापुष्पावकीर्णा विचित्रधूपधूपिता पुष्पवितानमण्डिता। ते च गान्धर्विकाः स्वयमेव वीणामादाय मृदङ्गवेणुपणवादिभिर्विविधैरुपस्थानं चक्रुः, प्रणीतेन चाहारेण भगवन्तं सश्रावकसंघं संतर्पयामासुः॥

B 97

ततो भगवान् स्मितमकार्षीत्। धर्मता खलु यस्मिन्समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन्समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति। या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति। तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते। तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति। तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान् निर्मितं विसर्जयति। तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः। अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति। ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं

R 98 गृह्णन्ति, यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति। या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्शुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः॥ २॥
यो ह्यस्मिन्धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति॥ ३॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते। प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते। मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकां बोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषे अन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य भगवत ऊर्णायामन्तर्हिताः । अथा-
युष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ— B 99

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ४ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ५ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ६ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ७ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द एभिर्गान्धर्विकैर्ममैवंविधं सत्कारं कृतम्। एवं भदन्त । एते आनन्द गान्धर्विकाः अनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च यथाकालानुगतां प्रत्येकां बोधिं समुदानीय अनागतेऽध्वनि वर्णस्वरा
नाम प्रत्येकबुद्धा भविष्यन्ति ह्रीनदीनानुकम्पकाः प्रान्तशयनासनभक्ता एकदक्षिणीया B 10
लोकस्य । अयमेषां देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयानां छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त भगवता कुशलमूलानि कृतानि येषामयमनुभाव इति । भगवानाह—तथागतेनैवैतानि भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । मयैतानि कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ ८ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि प्रबोधनो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स जनपदचारिकां चरन्नन्यतमां राजधानीमनुप्राप्तः । अथ राज्ञ उद्यानं सर्वकुशलसंपन्नं बभूव । अथ स भगवांस्तदुद्यानं प्रविश्य राजानुग्रहार्थमन्यतमं वृक्षमुपनिश्रित्य निषण्णः । ततः संस्तरं प्रज्ञप्य तेजोधातुं समापन्नः । अथ राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तः स्त्रीमयेन तूर्येण वाद्यमानेनोद्यानं प्रविष्टः । अथ स राजा तदुद्यानमनुविचरन् ददर्श भगवन्तं प्रबोधनं सम्यक्संबुद्धं प्रासादिकं प्रसादनीयं शान्तमानसं परमेण चित्तदमव्युपशमेन समन्वागतं सुवर्णयूपमिव श्रिया ज्वलन्तम् । दृष्ट्वा च पुनः प्रसादजातः स राजा सान्तःपुरो विविधेन वाद्येन वाद्यमानेन भगवन्तं ततः समाधेः प्रबोधयामास, प्रणीतेन चाहारेण प्रतिपादितवान्, अनुत्तरायां च सम्यक्संबोधौ प्रणिधानं कृतवान् ॥

B 101

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन राजा बभूव, अहं सः । यन्मया प्रबोधनस्य सम्यक्संबुद्धस्य पूजा कृता, तेनैव हेतुना इदानीं मम गान्धर्विकैरेवंविधः सत्कारः कृतः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः । शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

१८ वरदः ।

B 102 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । अथ श्रावस्त्यामन्यतमः पारदारिको मन्त्रिने कर्मणि वर्तते । स राजपुरुषैर्गृहीत्वा राज्ञ उपनामितः ।

ततो राज्ञा अपराधिक इति कृत्वा वध्य उत्सृष्टः । स राजपुरुषैर्नीलाम्बरवसनैरुद्यतशस्त्रैः करवीरमालाबद्धकण्ठेगुणो रथ्यावीथीचत्वरशृङ्गाटकेष्वनुश्राव्यमाणो दक्षिणेन नगरद्वारेण अपनीयते ॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम् । धर्मता खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां चतुर्षु संग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः । कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे वा प्रतिष्ठापयेयम्, कस्य कामपङ्कनिमग्नस्य हस्तोद्धारमनुप्रदद्याम्, कमार्यधनविरहितमार्यधनैश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम् । आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः ।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत् ॥ १ ॥

अथ भगवान् पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं पिण्डाय प्राविक्षत् । ददर्श स पुरुषो बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । दृष्ट्वा च पुनर्भगवतः पादयोर्निपत्य भगवन्तमिदमवोचत्—वराहोऽस्मि भगवन्, इदं मे जीवितं प्रयच्छेति । ततो भगवानायुष्मन्तमानन्दमामन्त्रयते—गच्छ आनन्द राजानं प्रसेनजितम् । वद—अनुप्रयच्छ मे एतं पुरुषम्, प्रव्राजयामीति । अथायुष्मानानन्दो येन राजा B 103 प्रसेनजित्कौशलस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य राजानं प्रसेनजितं कौशलं भगवद्वचनेनोवाच—अनुजानीहि, भगवानेतं पुरुषं प्रव्राजयतीति । भव्यरूप इति विदित्वा राज्ञा प्रसेनजित्कौशलेनानुज्ञातः । स भगवता प्रव्राजित उपसंपादितश्च । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोषो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयानां छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—आश्चर्यं भदन्त यद्भगवता सर्वं चिन्तितमात्रं समृध्यतीति । भगवानाह—तथागतेनैवैतानि भिक्षवः पूर्वमन्यासु

जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। मयैतानि कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

B 105 न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ २॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि इन्द्रध्वजो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स जनपदचारिकां चरन्नन्यतमां राजधानीमनुप्राप्तः। तस्यां राजधान्यां ब्राह्मणो वेदवेदाङ्गपारगो राज्ञोऽग्रासनिकः। अथेन्द्रध्वजः सम्यक्संबुद्धः पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय तां राजधानीं पिण्डाय प्राविक्षत्। अद्राक्षीत्स ब्राह्मण इन्द्रध्वजं सम्यक्संबुद्धं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। दृष्ट्वा च पुनर्मूलनिकृत्त इव द्रुमो भगवतः पादयोर्निपत्योवाच—वरार्होऽसि सुगत, निषीदतु भगवानग्रासन इति। अथ भगवानिन्द्रध्वजः सम्यक्संबुद्धस्तस्यानुग्रहार्थमग्रासने निषण्णः। अग्रासने निषण्णश्चेन्द्रध्वजः सम्यक्संबुद्धः तेन ब्राह्मणेन पदशतेन स्तुतः, प्रणीतेन चाहारेण प्रतिपादितः, अनुत्तरायां च सम्यक्संबोधौ प्रणिधानं कृतम्। तद्धेतुकं यावदावर्जिता राजामात्यपौराः॥

B 106 तत्किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन ब्राह्मणो बभूव, अहं सः। यन्मे इन्द्रध्वजस्य तथागतस्य पूजा कृता, तद्धेतुकं च मे संसारे अनन्तं सुखमनुभूतम्। अपि यच्चिन्तयामि, यत्प्रार्थये, तत्सर्वं समृध्यति। तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः। शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

१९ काशिकवस्त्रम्।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः
B 107 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। यदा राज्ञा बिम्बिसारेणानेकप्राणिशतसहस्रपरिवारेण सत्यानि दृष्टानि, तदा तेन कृतप्रत्युपकारसंदर्शनार्थं बुद्धपूजाप्रवर्तनार्थं गृहविस्तरसंदर्शनार्थं बुद्धोत्पादबहुमानसंजननार्थं च भगवान्

सश्रावकसंघो राजकुले भक्तेनोपनिमन्त्रितः, मागधकानां च पौराणामाज्ञा दत्ता—भगवतो नगरप्रवेशे पुष्पगन्धमाल्यविलेपनैः पूजा कर्तव्या, सर्वं च राजगृहं नगरमपगतपाषाणशर्करकठल्लं व्यवस्थापयितव्यम्, नानापुष्पावकीर्णमुच्छ्रितध्वजपताकं यावच्च वेणुवनं यावच्च राजगृहम्, अत्रान्तरा सर्वो मार्गो विचित्रैर्वस्त्रैराच्छादयितव्य इति। अमात्यैश्च सर्वमनुष्ठितम्। ततो राजा बिम्बिसारः स्वयमेव भगवतो मूर्ध्नि शतशलाकं छत्रं धारयति, परिशेषाः पौरा भिक्षुसहस्रस्य॥

अथ भगवान् दान्तो दान्तपरिवारः शान्तः शान्तपरिवारो मुक्तो मुक्तपरिवार आश्वस्त आश्वस्तपरिवारो विनीतो विनीतपरिवारोऽर्हन्नर्हत्परिवारो वीतरागो वीतरागपरिवारः प्रासादिकः प्रासादिकपरिवारो वृषभ इव गोगणपरिवृतो गज इव कलभगणपरिवृतः सिंह इव दंष्ट्रिगणपरिवृतो हंस इव हंसगणपरिवृतो सुपर्णीव पक्षिगणपरिवृतो विप्र इव शिष्यगणपरिवृतः स्वश्व इव तुरगगणपरिवृतः शूर इव योधगणपरिवृतो देशिक इवाध्वगगणपरिवृतः सार्थवाह इव वणिग्गणपरिवृतः श्रेष्ठीव पौरगणपरिवृतः कोट्टराज इव मन्त्रिगणपरिवृतश्चक्रवर्तीव पुत्रसहस्रपरिवृतश्चन्द्र इव नक्षत्रगणपरिवृतः सूर्य इव रश्मिसहस्रपरिवृतो धृतराष्ट्र इव गन्धर्वगणपरिवृतो विरूढ इव कुम्भाण्डगणपरिवृतो विरूपाक्ष इव नागगणपरिवृतो धनद इव यक्षगणपरिवृतो वेमचित्रीवासुरगणपरिवृतः शक्र इव त्रिदशगणपरिवृतो ब्रह्मा इव ब्रह्मकायिकपरिवृतः स्तिमित इव जलनिधिः सजल इव जलधरो विमद इव गजपतिः सुदान्तैरिन्द्रियैरसंक्षोभितेर्यापथप्रचारोऽनेकैरावेणिकैर्बुद्धधर्मैः परिवृतो भगवांस्तत्पुरं प्रविशति॥ B 1

यदा च भगवता इन्द्रकीले पादो न्यस्तः, तदेयं महापृथिवी षड्विकारं प्रकम्पिता। B
भगवतः पुरप्रवेशे एवंरूपाण्यद्भुतानि भवन्त्यन्यानि च। तद्यथा—संक्षिप्तानि विशालीभवन्ति, हस्तिनः क्रोशन्ति, अश्वाश्च हेषन्ते, ऋषभा नर्दन्ति, गृहगतानि विविधवाद्यभाण्डानि स्वयं नदन्ति, अन्धाश्चक्षूंषि प्रतिलभन्ते, बधिराः श्रोत्रम्, मूकाः प्रव्याहरणसमर्था भवन्ति, परिशिष्टेन्द्रियविकला इन्द्रियाणि परिपूर्णानि प्रतिलभन्ते, मद्यमदाक्षिप्ता विमदीभवन्ति, विषपीता निर्विषीभवन्ति, अन्योन्यवैरिणो मैत्री प्रतिलभन्ते, गुर्विण्यः स्वस्तिनः प्रजायन्ते, बन्धनबद्धा विमुच्यन्ते, अधना धनानि प्रतिलभन्ते, आन्तरिक्षाश्च देवासुरगरुडकिंनरमहोरगा दिव्यं पुष्पमुत्सृजन्ति॥

अथ भगवानेवंविधया विभूत्या राजकुलं प्रवेष्टुमारब्धः। राजा च बिम्बिसारः स्वयमेव यष्टिद्वारशालस्थो गोशीर्षचन्दनोदकेन पाणौ गृहीत्वा भगवतः पादौ भिक्षुसंघस्य च प्रक्षालयति। सुखोपनिषण्णं बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं विदित्वा शतरसेनाहारेण प्रतिपादयामास। भुक्तवन्तं काशिकवस्त्रेणाच्छादितवान्। तद्धेतुकं च आवर्जिता मागधकाः पौराः॥

ततो भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कुत्रेमानि B 110
भगवता कुशलमूलानि कृतानि, यतो भगवत एवंविधा पूजा भिक्षुसंघस्य चेति।

भगवानाह— तथागतेनैवैतानि भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । मयैतानि कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि क्षेमंकरो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि, तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स जनपदचारिकां चरन्नन्यतमां राजधानीमनुप्राप्तः । अश्रौषीद्राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तः—क्षेमंकरः सम्यक्संबुद्धो जनपदचारिकां चरन्नस्माकं राजधानीमनुप्राप्त इति । श्रुत्वा च महत्या राजर्द्ध्या महता राजानुभावेन समन्वागतः । येन भगवान् क्षेमंकरः सम्यक्संबुद्धस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य क्षेमंकरस्य सम्यक्संबुद्धस्य
B 111 पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णः । एकान्ते निषण्णं राजानं क्षत्रियं मूर्धाभिषिक्तं क्षेमंकरः सम्यक्संबुद्धो बोधिकरैर्धर्मैः समादापयति । अथ स राजा लब्धप्रसादः क्षेमंकरं सम्यक्संबुद्धं राजकुले निमन्त्र्य शतरसेनाहारेण प्रतिपादयामास । शतसाहस्रेण च वस्त्रेणाच्छादयामास । परिनिर्वृतस्य च समन्तयोजनं स्तूपं कारितवान् क्रोशमुच्चत्वेन ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन राजा बभूव, अहं सः । यन्मया क्षेमंकरस्य सम्यक्संबुद्धस्यैवंविधा पूजा कृता, तेन मया संसारेऽनन्तं सुखमनुभूतम् । इदानीं तेनैव हेतुना राज्ञा बिम्बिसारेणापि तथागतस्य मे एवंविधा पूजा कृता । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः । शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

२० दिव्यभोजनम् ।

B 112 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे । तत्र अन्यतरः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो

कान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति । गाथाद्वयं च भाषन्ते—

B 115 आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥

यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकां बोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
B 116 नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगत्य[1] वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृषवाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

---

1 Mss. are equally divided in reading अधिगत्य as against usual अधिगम्य.

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह–एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द अनेन गृहपतिना ममैवंविधं सत्कारं कृतम् । एवं भदन्त । एष आनन्द गृहपतिरनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिकल्पासंख्येयसमुदानीतां बोधिं समुदानीय महाकरुणापरिभाविताः षट् पारमिताः परिपूर्य दिव्यान्नदो नाम सम्यक्संबुद्धो भविष्यति दशभिर्बलैश्चतुर्भिर्वैशारद्यैस्त्रिभिरावेणिकैः स्मृत्युपस्थानैर्महाकरुणया च । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसादः ॥

एतच्च प्रकरणं राजा बिम्बिसारो मागधकाश्च परिचारकाः श्रुत्वा परं विस्मयमापन्नाः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः– पश्य भगवन् B 117
यावदनेन गृहपतिना भगवान् सश्रावकसंघो दिव्यमानुषीभिर्ऋद्धिभिरभ्यर्चित इति ॥

भगवानाह– तथागतेनैवैतानि भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । मयैतानि कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ ७ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि पूर्णो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । अथ पूर्णः सम्यक्संबुद्धो जनपदचारिकां चरन्नन्यतमां राजधानीमनुप्राप्तः । B 118
अश्रौषीद्राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तः–पूर्णः सम्यक्संबुद्धो जनपदचारिकां चरन्नस्माकं राजधानीमनुप्राप्त इति । श्रुत्वा च पुनर्महत्या राजर्द्ध्या महता राजानुभावेन समन्वागतो येन पूर्णः सम्यक्संबुद्धस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य पूर्णस्य सम्यक्संबुद्धस्य पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णः । एकान्ते निषण्णं राजानं क्षत्रियं मूर्धाभिषिक्तं पूर्णः सम्यक्संबुद्धो बोधिकरकैर्धर्मैः समादापयति । अथ राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तः पूर्णं सम्यक्संबुद्धं सश्रावकसंघं त्रैमास्यं चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैरुपनिमन्त्रितवान् । अधिवासितं च पूर्णेन सम्यक्संबुद्धेन राज्ञस्तूष्णीभावेन । अथ राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तः पूर्णस्य सम्यक्संबुद्धस्य तूष्णीभावेनाधिवासनां विदित्वा त्रैमास्यं चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैरुपस्थाय भगवतो रत्नमयप्रतिमां कारयित्वा बुद्धस्तूपं कारितवान्, यत्रानेकैः प्राणिशतसहस्रैर्महाप्रसादो लब्धः । तदेतत्प्रत्ययं च ते परिनिर्वृताः ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन राजा बभूव, अहं सः। यन्मया पूर्णस्य सम्यक्संबुद्धस्य तादृशी पूजा कृता, तेन मे संसारेऽनन्तं सुखमनुभूतम्, तेनैव च हेतुना तथागतस्य च मे श्रेष्ठिना शक्रेण च ईदृशी पूजा कृता। तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः। शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो च भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥



तृतीयो वर्गः ।

तस्योद्दानम्—

> चन्दनो ह्यथ पद्मश्च चक्रं दशशिरास्तथा ।
> सूक्ष्मत्वक् शीतदीप्तिश्च नाविका गन्धमादनः ।
> निर्मलो वल्गुस्वरश्च वर्गो भवति सत्तमः ॥

२१ चन्दनः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः B 119 पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो मगधेषु जनपदेषु चारिकां चरन् गङ्गातीरमनुप्राप्तः। तेन खलु पुनः समयेन गङ्गातीरस्य नातिदूरे स्तूपमवरुग्णं वातातपाभ्यां परिशीर्णम्। भिक्षुभिर्दृष्ट्वा भगवान् पृष्टः कस्य भगवन्नयं स्तूप इति। भगवानाह—चन्दनो नाम प्रत्येकबुद्धो बभूव, तस्येति। भिक्षव ऊचुः—कुतो भगवंश्चन्दनस्य प्रत्येकबुद्धस्योत्पत्तिर्नामाभिनिर्वृत्तिश्चेति। भगवानाह—इच्छथ यूयं भिक्षवः श्रोतुं यथा चन्दनस्य प्रत्येकबुद्धस्यो- B 120 त्पत्तिर्नामाभिनिर्वृत्तिश्च? एवं भदन्त। तेन हि भिक्षवः शृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यां ब्रह्मदत्तो नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं चाकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नम्। धार्मिको धर्मराजो धर्मेण राज्यं कारयति। सोऽपुत्रः पुत्राभिनन्दी शिववरुणकुबेरशक्रब्रह्मादीनन्यांश्च देवताविशेषानायाचते। तद्यथा—आरामदेवता वनदेवताश्चत्वरदेवताः शृङ्गाटकदेवता बलिप्रतिग्राहिका देवताः। सहजाः सहधार्मिका नित्यानुबद्धा अपि देवता आयाचते। अस्ति चैष लोके प्रवादो यदायाचनहेतोः पुत्रा जायन्ते दुहितरश्चेति। तच्च नैवम्। यद्येवमभविष्यदेकैकस्य पुत्रसहस्रमभविष्यद् तद्यथा राज्ञश्चक्रवर्तिनः। अपि तु त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च। कतमेषां त्रयाणाम्? मातापितरौ रक्तौ भवतः संनिपतितौ, माता कल्या भवति ऋतुमती, गन्धर्वश्च प्रत्युपस्थितो भवति। एषां त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च। स चैवमायाचनपरस्तिष्ठति। तस्य चोद्याने महापद्मिनी। तत्र पद्मं [illegible]प्रमाणं जातम्। तद्दिवसे दिवसे वर्धते न तु फुल्लति। तत आरामिकेण राज्ञे निवेदितम्। राज्ञा उक्तः रक्ष्यतामेतत्पद्ममिति। यावदपरेण समयेन सूर्योदये तत्पद्मं विकसितम्। तस्य च पद्मस्य कर्णिकायां दारकः पर्यङ्कं बद्ध्वावस्थितः अभिरूपो दर्शनीयः B 121

प्रासादिको गौरः कनकवर्णश्छत्राकारशिराः प्रलम्बबाहुर्विस्तीर्णललाट उच्चैर्घोषः संगतभ्रूस्तुङ्गनासः द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतोऽशीत्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रः । तस्य मुखात्पद्मगन्धो वाति शरीराच्च चन्दनगन्धः । तत आरामिकेण राज्ञे निवेदितम् । ततो राजा सामात्यः सान्तःपुरश्च तदुद्यानं गतः । सहदर्शनाच्चेन दारकेण राजा संभाषितः—एहि तात, अहं तेऽपुत्रस्य पुत्र इति । ततो राजा हृष्टतुष्टप्रमुदित उवाच—एवमेव पुत्र यथा वदसीति । ततो राजा पद्मिनीमवगाह्य तं दारकं पद्मकर्णिकायां गृहीत्वा पाणितले स्थापितवान् । यत्र यत्र स दारकः पादौ स्थापयति, तत्र तत्र पद्मानि प्रादुर्भवन्ति । ततस्तस्य चन्दन इति नाम कृतम् ॥

यदा चन्दनो दारकोऽनुपूर्वेण महान् संवृत्तः, तदा नागरै राजा विज्ञप्तः—इहास्माकं देव नगरपर्व प्रत्युपस्थितम् । तदर्हति देवश्चन्दनं कुमारमुत्स्रष्टुम् । अस्माभिः सह पर्वानु-

B 122 भविष्यति, पद्मैश्च सर्वमधिष्ठानमलंकरिष्यतीति । राजाह—एवमस्त्विति । ततश्चन्दनः सर्वालंकारविभूषितोऽमात्यपुत्रपरिवृतो विविधैर्वाद्यैर्वाद्यमानै राजकुलाद्बहिरुपयाति नगरपर्व प्रत्यनुभवितुम् । तत्र तस्य गच्छतः पदविन्यासे पदविन्यासे पद्मानि प्रादुर्भवन्ति दर्शनीयानि मनोरमाणि च । तान्यर्करश्मिभिः स्पृष्टमात्राणि म्लायन्ति शुष्यन्ति ॥

अथ तस्य शुद्धसत्त्वस्य कल्याणाशयस्य पूर्वबुद्धावरोपितकुशलमूलस्य तद्दर्शनाद्योनिशो मनसिकार उत्पन्नः—यथेमानि पद्मानि उत्पन्नमात्राणि शोभन्ते, अर्करश्मिपरितापितानि म्लायन्ति शुष्यन्ति, एवमेतदपि शरीरमिति । तस्यैवं चिन्तयतस्तुल्यत उपपरीक्षमाणस्य सप्तत्रिंशद्बोधिपक्ष्यधर्मा अभिमुखीभूताः । तेन तस्यैव जनकायस्य मध्ये स्थितेन प्रत्येकबोधिः साक्षात्कृता । यावच्छुद्धावासकायिकैर्देवैस्तस्मै काषायाण्युपनामितानि । तानि च प्राबृत्य गगनतलमुत्पतितः, विचित्राणि च प्रातिहार्याणि कर्तुं प्रवृत्तः, यद्दर्शनाद्राज्ञामात्यनैगमसहायेन महान् प्रसादः प्रतिलब्धो विचित्राणि च कुशलमूलान्यवरोपितानि । भगवानाह—अतश्चन्दनस्य प्रत्येकबुद्धस्योत्पत्तिर्नामाभिनिर्वृत्तिश्चेति ॥

भिक्षवो भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त चन्दनेन प्रत्येकबुद्धेन कर्माणि कृतानि

B 123 येनास्य शरीरं सुगन्धि तीक्ष्णेन्द्रियश्चेति । भगवानाह—काश्यपे भगवति प्रव्रजितो बभूव, तत्रानेन केशनखस्तूपे गन्धावसेकः कृतः, पुष्पाणि चावरोपितानि, प्रत्येकबोधौ चानेन मार्गो भावितः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः । शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

1 Speyer suggests उच्चघोषः which in unnecessary in view of तुङ्गनासः

2 पद्मकर्णिकया, as suggested by Speyer, is better.

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति। तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते। अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते। नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते। तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्या-
B 127 मन्तर्धीयन्ते। प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते। मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते। बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते। चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते। देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते। श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते। प्रत्येकां बोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते। अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत ऊर्णायामन्तर्हिताः। अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव॥ ३॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः॥ ४॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम्।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः॥ ५॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः।
B 128 यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः॥ ६॥ इति॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत्। नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति। पश्यस्यानन्द अनेन दारकेण प्रसादजातेन तथागतस्य पद्मं क्षिप्तम्। एवं भदन्त। एष आनन्द दारकोऽनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च पञ्चदश कल्पान् विनिपातं न गमिष्यति। दिव्यमानुष्यसुखमनुभूय पद्मोत्तरो नाम प्रत्येकबुद्धो भविष्यति। अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसादः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्बुद्धप्रत्येकबुद्धश्रावकेषु कारान् करिष्यामः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

२३ चक्रम् ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे । राजगृहेऽन्यतमः सार्थवाहो महासमुद्रमवतीर्णः । तस्य भार्या यौवनवती । सा स्वामिनोऽर्थे उत्कण्ठति परितप्यति, न चास्या भर्ता आगच्छति । तया नारायणस्य प्रणिपत्य प्रतिज्ञातम्—यदि मे भर्ता शीघ्रमागच्छति, अहं ते सौवर्णचक्रं प्रदास्यामीति । ततस्तस्याः स्वामी स्वस्तिक्षेमाभ्यां महासमुद्रादाशु प्रत्यागतः । तया सौवर्णचक्रं कारितम् । सा दासीगणपरिवृता चक्रमादाय गन्धधूपपुष्पं च, देवकुलं संप्रस्थिता ॥ B 129

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम् । धर्मता खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां चतुर्षु संग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः कोऽपायप्राग्भारः । कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्य कामपङ्कनिमग्नस्य हस्तोद्धारमनुप्रदद्याम्, कमार्यधनविरहितमार्यधनैश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम् । आह च— B 130

B 131 ततो भगवता स्मितं विदर्शितम् । धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति । तेषां तं निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानबृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ २ ॥
यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ ३ ॥

B 132 अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ।

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत ऊर्णायामन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ४ ॥

गाथाश्च भाषते—

दिगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ५ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ६ ॥ ‖ 133

नाकस्माल्लवणजलादिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ७ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द अनया दारिकया तथागतस्य सौवर्णचक्रं क्षिप्तम् । एवं भदन्त । एषा आनन्द दारिका अनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च पञ्चदश कल्पान् विनिपातं न गमिष्यति, दिव्यं मानुषं सुखमनुभूय च चक्रान्तरो नाम प्रत्येकबुद्धो भविष्यति । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्बुद्धप्रत्येकबुद्धश्रावकेषु कारान् करिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते च भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

२४ दशशिराः ।

D 134

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो मगधेषु जनपदचारिकां चरन् गङ्गातीरमनुप्राप्तः सार्धं भिक्षुसंघेन । अद्राक्षुर्भिक्षवो दूरत एव पुराणस्तूपं वातातपवर्षैरवरुग्णं प्रलुग्नम् । दृष्ट्वा च पुनर्भगवन्तं पप्रच्छुः—कस्यैष भदन्त स्तूप इति । भगवानाह—दशशिरसः प्रत्येकबुद्धस्येति । भिक्षवः ऊचुः—कुतो भदन्त दशशिरसः प्रत्येकबुद्धस्योत्पत्तिर्नामाभिनिर्वृत्तिश्चेति । भगवानाह—इच्छथ यूयं भिक्षवः श्रोतुमिति! त ऊचुः—एवं भदन्तेति । तेन हि भिक्षवः शृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यां ब्रह्मदत्तो नाम राजा राज्यं कारयति, ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं चाकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वमतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोके उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । अथ विपश्यी सम्यक्संबुद्धः पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो बन्धुमतीं राजधानीं पिण्डाय प्राविक्षत् । अन्यतरश्च सार्थवाहः पद्ममादाय वीथीं प्रतिपन्नः । अथासौ पश्यति विपश्यिनं सम्यक्संबुद्धं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाद्भगवत उपरि तत्पद्मं चिक्षेप । तत् क्षिप्तमात्रं भगवत उपरि शकटचक्रमात्रं भूत्वा भगवन्तं गच्छन्तमनुगच्छति, तिष्ठन्तमनुतिष्ठति । यावद्विपश्यिना B 138
सम्यक्संबुद्धेन स सार्थवाहः प्रत्येकबोधौ व्याकृतः । ततो हृष्टतुष्टप्रमुदितमनाः स्वगृहमागतः । प्रजापती चास्य तेन कालेन प्रजायमाना सस्वरं क्रन्दितवती । तेन परिचारिका पृष्टा—किमिदमिति । तया समाख्यातम् । ततः सार्थवाहः संविग्नः प्रणिधानं कर्तुमारब्धः—मा कदाचित्संसारे मातुः कुक्षावुपपद्येयमिति ॥

भगवानाह— किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन सार्थवाहो बभूव, अयं स दशशिराः प्रत्येकबुद्धः । तेन कुशलमूलेनैकविंशतिं कल्पान् न कदाचिन्मातुः कुक्षावुपपन्नः । पश्चिमे चास्य भवे इयं विभूतिः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्बुद्धप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकेषु कारान् करिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

२५ सूक्ष्मत्वक् ।

B 139
बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन श्रावस्त्यामन्यतमः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगः प्रभूतवित्तोपकरणः प्रभूतसत्त्वस्वापतेयः प्रभूतमित्रामात्यज्ञातिसालोहितः । स च गृहपतिः श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः । तस्यैतदभवत्—इमे भोगाः जलचन्द्रसमावाः मरीचिसदृशा अनित्या अध्रुवा अनाश्वासिका विपरिमाणधर्माणः पञ्चभिरुमदण्डैः साधारणाः । यन्न्वहमसारेभ्यो भोगेभ्यः सारमादद्यामिति । तेन भगवान् सश्रावकसंघो भक्तेनोपनिमन्त्रितः । गृहं चापगतपाषाणशर्करकठल्लं व्यवस्थापितं

तस्करोगापगतं शालीक्षुगोमहिषसंपन्नम्। धार्मिको धर्मराजो धर्मेस्थितो धर्मेण राज्यं कारयति। स च राजा अपुत्रः पुत्राभिनन्दी शिववरुणकुबेरशक्रब्रह्मादीनन्यांश्च देवताविशेषानायाचते। तद्यथा—आरामदेवता वनदेवताश्चत्वरदेवताः शृङ्गाटकदेवताः बलिप्रतिग्राहिका देवताः। सहजाः सहधार्मिकाः नित्यानुबद्धा अपि देवता आयाचते। स चैवमायाचनपरस्तिष्ठति। तस्य चोद्याने महती पद्मिनी उत्पलकुमुदपद्मपुण्डरीकसंछन्ना हंसचक्रवाककारण्ड-
B 135 वादिशकुनोपशोभिता नलिनी। तत्र पद्ममतिप्रमाणमकण्टकं सहसोत्पन्नम्। तद्दिवसे दिवसे वर्धते, न तु फुल्लति। तत आरामिकेण राज्ञे निवेदितम्। राज्ञा उक्तः—परिरक्ष्यतामेतत्पद्ममिति। यावदपरेण समयेन सूर्योदये तत्पद्मं विकसितम्। तस्य पद्मस्य कर्णिकायां दारकः पर्यङ्कं बद्ध्वावस्थितः अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको गौरः कनकवर्णश्छत्राकारशिराः प्रलम्बबाहुर्विस्तीर्णललाट उच्चघोषः संगतभ्रूस्तुङ्गनासः द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतोऽशीत्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रः। तं दृष्ट्वा आरामिकेण राज्ञे निवेदितम्। श्रुत्वा राजा सामात्यः सान्तःपुरश्च तदुद्यानं गतः। ददर्श राजा पद्मकर्णिकायां तथा विभ्राजमानम्। दृष्ट्वा च पुनर्हृष्टतुष्टप्रमुदित उदग्रप्रीतिसौमनस्यजातः पद्मिनीमवगाह्य तं गृहीत्वा महता सत्कारेण स्वगृहमानीय श्रमणब्राह्मणनैमित्तिकानां निवेद्य त्रीणि सप्तकान्येकविंशतिं दिवसान् जातस्य जातिमहं कृत्वा दशशिरा इति नामधेयं कृतवान्॥

दशशिरा दारकः अष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां
B 136 द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्। स च कुमारः श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः। स पश्यति पितरं राजधर्मे स्थितं सावद्यमवद्यानि कर्माणि कुर्वाणम्। दृष्ट्वा च कुमारः संविग्नः पितरं विज्ञापयामास—अनुजानीहि मां तात, प्रव्रजिष्यामि स्वाख्याते धर्मविनये इति। यावत्पित्रानुज्ञातः केशश्मश्रु अवतार्य काषायाणि वस्त्राण्याच्छाद्य सम्यगेव श्रद्धया अगारादनगारिकां प्रव्रजितः। तेन विनोपदेशेन सप्तत्रिंशद्बोधिपक्षान् धर्मानामुखीकृत्य प्रत्येका बोधिः साक्षात्कृता। स गगनतलमुत्पत्य पितुः सकाशे विचित्राणि प्रातिहार्याणि चकार। ततो राज्ञा त्रैमास्यं पिण्डकेनोपनिमन्त्रितः। स शरीरभारोद्वहनपरिखिन्नो विचित्राणि प्रातिहार्याणि दर्शयित्वा इन्धनक्षयादिवाग्निर्निर्वृतिमुपजगाम। तस्यैव स्तूप इति॥

अथ भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त दशशिरसा कर्माणि कृतानि, येन मातुः कुक्षौ नोपपन्नः, पद्म उपपन्न इति। भगवानाह—दशशिर-
B 137 सैव भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। दशशिरसा कर्माणि कृतान्युपचितानि कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

---

1 Speyer reads निर्मिम् for निर्मिम्,

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वमतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति। अथ विपश्यी सम्यक्संबुद्धः पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो बन्धुमतीं राजधानीं पिण्डाय प्राविक्षत्। अन्यतरश्च सार्थवाहः पद्ममादाय वीथीं प्रतिपन्नः। अथासौ पश्यति विपश्यिनं सम्यक्संबुद्धं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाद्भगवत उपरि तत्पद्मं चिक्षेप। तत् क्षिप्तमात्रं भगवत उपरि शकटचक्रमात्रं भूत्वा भगवन्तं गच्छन्तमनुगच्छति, तिष्ठन्तमनुतिष्ठति। यावद्विपश्यिना II 138 सम्यक्संबुद्धेन स सार्थवाहः प्रत्येकबोधौ व्याकृतः। ततो हृष्टतुष्टप्रमुदितमनाः स्वगृहमागतः। प्रजापती चास्य तेन कालेन प्रजायमाना सस्वरं क्रन्दितवती। तेन परिचारिका पृष्टा—किमिदमिति। तया समाख्यातम्। ततः सार्थवाहः संविग्नः प्रणिधानं कर्तुमारब्धः—मा कदाचित्संसारे मातुः कुक्षावुपपद्येयमिति॥

भगवानाह— किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन सार्थवाहो बभूव, अयं स दशशिराः प्रत्येकबुद्धः। तेन कुशलमूलेनैकविंशतिं कल्पान् न कदाचिन्मातुः कुक्षावुपपन्नः। पश्चिमे चास्य भवे इयं विभूतिः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्बुद्धप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकेषु कारान् करिष्यामः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

२५ सूक्ष्मत्वक्।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 130 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किंनरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिंनरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। तेन खलु समयेन श्रावस्त्यामन्यतमः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगः प्रभूतवित्तोपकरणः प्रभूतसत्त्वस्वापतेयः प्रभूतमित्रामात्यज्ञातिसालोहितः। स च गृहपतिः श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः। तस्यैतदभवत्—इमे भोगाः जलचन्द्रस्वभावाः मरीचिसदृशा अनित्या अध्रुवा अनाश्वासिका विपरिणामधर्माणः पञ्चभिरग्रदण्डैः साधारणाः। यन्न्वहमसारेभ्यो भोगेभ्यः सारमादद्यामिति। तेन भगवान् सश्रावकसंघो भक्तेनोपनिमन्त्रितः। गृहं चापगतपाषाणशर्करकठल्लं व्यवस्थापितं

चन्दनवारिपरिषिक्तं विचित्रगन्धघटिकासुरभिधूपधूपितं नानापुष्पाभिकीर्णम् । पुष्पासनानि प्रज्ञप्तानि । ततः सुस्वादशीतरसपानानि भक्ष्यभोज्यानि च सज्जीकृत्य भगवतो दूतेन
140 कालमारोचयति—समयो भदन्त, सज्जं भक्तं यस्येदानीं भगवान् कालं मन्यत इति । ततो भगवान् पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो येन तस्य गृहपतेर्निवेशनं तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य पुरस्ताद्भिक्षुसंघस्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः । अथ स गृहपतिः सुखोपविष्टं बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं विदित्वा शुचिना प्रणीतेनाहारेण स्वहस्तं संतर्पयति संप्रवारयति । स्वहस्तं संतर्प्य संप्रवार्य भगवन्तं भुक्तवन्तं विदित्वा धौतहस्तमपनीतपात्रं नीचतरासनं गृहीत्वा भगवतः पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । अथ भगवांस्तं गृहपतिं धर्म्यया कथया संदर्शयति समादापयति समुत्तेजयति । अनेकपर्यायेण धर्म्यया कथया संदर्श्य समादाप्य समुत्तेज्य तूष्णींभूतः । अथ स गृहपतिर्लब्धप्रसादः पादयोर्निपत्य चेतनां पुष्णाति ॥

ततो भगवान् स्मितं विदर्शितवान् । धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं
II 141 नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां सत्त्वानां प्रसादसंजननार्थं भगवान् निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः । अपि त्वयमपूर्वदर्शनाः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्त्वानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥
यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठेऽन्त-

धीयन्ते। अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते। नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति,
पादतलेऽन्तर्धीयन्ते। तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते। प्रेतोपपत्तिं
व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते। मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनो-
रन्तर्धीयन्ते। बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते। चक्रवर्ति-
राज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते। देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति,
नाभ्यामन्तर्धीयन्ते। श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते। प्रत्येकां बोधिं B 142
व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते। अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति,
उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत ऊर्णायामन्तर्हिताः। अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव॥ ३॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः॥ ४॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम्।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः॥ ५॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः॥ ६॥ इति॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत्। नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः
सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति। पश्यस्यानन्द अनेन श्रेष्ठिना ममैवंविधं सत्कारं
कृतम्। एवं भदन्त। एष आनन्द श्रेष्ठी अनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरि- B 143
त्यागेन च सूक्ष्मत्वगिति नाम प्रत्येकबुद्धो भविष्यति। अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके
चित्तप्रसाद इति। तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्बुद्धप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकेषु कारान्
करिष्यामः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

२६ शीतप्रभः ।

B 144 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नर-
महोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लान-
प्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । श्रावस्त्या-
मन्यतमो गृहपतिराढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो
वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । स च श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः
कारुणिको महात्मा धर्मकामः । तस्यैतदभवत्—इमे भोगा जलचन्द्रस्वभावा गजकर्णसदृशा
अनित्या अध्रुवा अनाश्वासिका विपरिणामधर्माणः पञ्चभिरुदण्डैः साधारणाः। यन्न्वहमसारेभ्यो
भोगेभ्यः सारमाददामिति । तेन ग्रीष्मकाले वर्तमाने भगवान् सश्रावकसंघो भक्तेनोप-
निमन्त्रितः । गृहं चापगतपाषाणशर्करकठल्लं व्यवस्थापितं चन्दनवारिपरिषिक्तं विचित्र-
गन्धघटिकासुरभिधूपधूपितं नानापुष्पाभिकीर्णम् । पुष्पासनानि प्रज्ञप्तानि । ततः शीतरसानि
पानकानि भक्ष्यभोज्यानि च सज्जीकृत्य भगवतो दूतेन कालमारोचयति—समयो भदन्त
सज्जं भक्तं यस्येदानीं भगवान् कालं मन्यत इति । ततो भगवान् पूर्वाह्णे निवास्य पात्र-
चीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो येन तस्य गृहपतेर्निवेशनं तेनोपसंक्रान्तः।
उपसंक्रम्य पुरस्ताद्भिक्षुसंघस्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः । अथ स गृहपतिः सुखोपनिषण्णं
B 145 बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं विदित्वा शुचिना प्रणीतेन खादनीयभोजनीयेन स्वहस्तं संतर्पयति
संप्रवारयति । अनेकपर्यायेण शुचिना प्रणीतेन खादनीयभोजनीयेन स्वहस्तं संतर्प्य
संप्रवार्य भगवन्तं भुक्तवन्तं विदित्वा धौतहस्तमपनीतपात्रं नीचतरासनं गृहीत्वा भगवतः
पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । अथ भगवांस्तं गृहपतिं धर्म्यया कथया संदर्शयति समा-
दापयति समुत्तेजयति संप्रहर्षयति । अनेकपर्यायेण धर्म्यया कथया संदर्श्य समादाप्य
समुत्तेज्य संप्रहर्ष्य तूष्णींभूतः। अथ स गृहपतिर्लब्धप्रसादः पादयोर्निपत्य चेतनां पुष्णाति॥

ततो भगवता स्मितं विदर्शितम् । धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं
प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ता-
द्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं
रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं
नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूता निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूता
निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रश्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं नु
वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं
विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः।
अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रश्रब्धा इति । ते
निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति यत्र
सत्यानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान्

यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्य- B 146
प्रसवान् बृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥

यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकां बोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत ऊर्णायामन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः । B 147
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य धीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द अनेन गृहपतिना ममैवंविधं सत्कारं कृतम् । एवं भदन्त । एष आनन्द गृहपतिरनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च शीतप्रभो नाम प्रत्येकबुद्धो भविष्यति । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्बुद्धप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकेषु कारान् करिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

२७ नाविकाः ।

B 148 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो मगधेषु जनपदचारिकां चरन् गङ्गातीरमनुप्राप्तः । अथ भगवान् भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो येन नाविकास्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य नाविकानिदमवोचत्—उत्तारयन्तु भवन्तो मामिमां नदीमिति । नाविका ऊचुः—तरपण्यं प्रयच्छेति । ततो भगवांस्तान्नाविकानिदमवोचत्—अहमपि भवन्तो नाविकः पूर्वमासम् । मया हि रागनदीपतितो नन्दस्तारितः, द्वेषार्णवपतितो अङ्गुलिमालः, मानार्णवपतितो मानस्तब्धो माणवः, मोहार्णवपतित उरुविल्वकाश्यपस्तारितः । न च मे तरपण्यं याचिता इति । तथाप्युच्यमाना न प्रतिपद्यन्ते तारयितुम् ॥

अन्यतमेन नाविकेन भगवतो अष्टाङ्गोपेतं स्वरं श्रुत्वा तां च रूपसंपदं दृष्ट्वा प्रसादजातेनोक्तम्—अहं भगवन्तं सश्रावकसंघमुत्तारयिष्यामीति । ततो भिक्षवो नावमभिरूढाः । भगवानृद्ध्या अत्र एव तस्य नाविकस्यापारिमाच्चीराच्पारिमे तीरे स्थितः । ततः स नाविकस्तदृद्धिप्रातिहार्यं दृष्ट्वा आवर्जितमनाः पादयोर्निपतितः । तस्मै भगवता तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रति-
B 143 वेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा तेन नाविकेन विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं[1] प्राप्तम् । स दृष्टसत्यस्त्रिरुदानमुदानयति—इदमस्माकं

---

1 Mss. rarely give स्रोतआपत्ति; they usually read स्रोतापत्ति under the influence of Pali word.

मदन्त न मात्रा कृतं न पित्रा न राज्ञा न देवताभिर्नेष्टेन स्वजनबन्धुवर्गेण न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यद्भगवतास्माकं कृतम् । उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि, प्रतिष्ठापिताः स्मो देवमनुष्येषु । आह च–

तवानुभावात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः ।
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः ॥ १ ॥

त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः ।
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णश्च दुःखार्णवपारमस्मि ॥ २ ॥

नरवरेन्द्र नरामरपूजित विगतजन्मजरामरणामय ।
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम् ॥ ३ ॥ इति ॥

द्वितीयस्य नाविकस्य महान् विप्रतिसार उत्पन्नः । तेन भगवतः पादयोर्निपत्य अत्ययो देशितः, भगवांश्च सश्रावकसंघः पिण्डकेन प्रतिपादितः ॥

भगवता स्मितं विदर्शितम् । धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं II 150
प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूत्वा निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेपूष्णीभूत्वा निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति– किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति– न ह्येव भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः । अपि त्वयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् वृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते–

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ ४ ॥ B 151

यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ ५ ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकां बोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत ऊर्णायामन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ६ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्धवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ७ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतृणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
B 152
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ८ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ९ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द अनेन नाविकेन ममान्तिके चित्तं प्रसादितम् । एवं भदन्त । एष आनन्द नाविकोऽनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अनागतेऽध्वनि संसारोत्तरणो नाम प्रत्येकबुद्धो भविष्यति । अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्बुद्धप्रत्येकबुद्धश्रावकेषु कारान् करिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

———

२८ गन्धमादनः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 153
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे । आचरितमेतन्मध्यदेशे—भूयसा मध्यदेशनिवासिनो जानपदा विचित्रैरनुलेपनैर्गात्रमनुलिम्पन्ति । यावदन्यतमो गृहपतिपुत्रः । तस्य दारिका श्राद्धा भद्रा कल्याणाशया लोहितचन्दनं पिनष्टि । भगवांश्च पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो राजगृहं पिण्डाय प्राविक्षत् । अद्राक्षीत् सा दारिका बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । दृष्ट्वा च दारिकाया महान् प्रसाद उत्पन्नः । ततो लब्धप्रसादाया एतदभवत्—किं ममानेनैवंविधेन जीवितेन याहमीदृशं B 154
क्षेत्रमासाद्य न शक्नोमि दारिद्र्यदोषाद्भगवतः कारान् कर्तुमिति ॥

ततस्तया स्वजीवितमगणयित्वा उभौ पाणी लोहितचन्दनेन प्रलिप्य भगवतः पादयोर्भद्रे[1] कृते, भगवता च ऋद्ध्या सकलं राजगृहनगरं चन्दनगन्धेनापूरितम् । ततो दारिका तत्प्रातिहार्यं दृष्ट्वा प्रसन्नचित्ता भगवतः पादयोर्निपत्य चेतनां पुष्णाति— अनेन कुशलमूलेन प्रत्येकां बोधिं साक्षात्कुर्यामिति ॥

ततो भगवता स्मितं विदर्शितम् । धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूत्वा निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूत्वा निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः, अपि तु अयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते B 155
चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फला-

[1] भद्र is an ornament, here figure of that ornament. Compare पदाङ्ग १. Speyer suggests that भद्राकृति would be better than भद्रे कृते.

नबृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥
यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः
समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते ।
अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति,
पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं
व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनो-
B 156 रन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्ति-
राज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति,
नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकां बोधिं
व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति,
उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ।

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत ऊर्णायामन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य धीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
B 157 धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः
सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द अनया दारिकया ममैवंविधं सत्कारं
कृतम् । एवं भदन्त । एषा आनन्द दारिका कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च
गन्धमादनो नाम प्रत्येकबुद्धो भविष्यति । अयमस्या देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसादः ।
तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्बुद्धप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकेषु कारान् करिष्यामः । इत्येवं
वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

———:o:———

२९ निर्मलः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः B 158
पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवमनुष्यासुरगरुडकिन्नर-[1]
महोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लान-
प्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे ।
श्रावस्त्यामन्यतम आरामिकः । स दन्तकाष्ठमादाय श्रावस्तीं प्रविशति । नैमित्तिकश्च
द्वारेऽवस्थितः । स कथयति—य एतद्दन्तधावनं भक्षयिष्यति, शतरसं भोजनं भक्षयिष्यति ।
तद्वचनमारामिकेण श्रुतम् । श्रुत्वा चैवं चिन्तयामास—कस्मायेतद्दन्तधावनं दद्याम् । येन मे
महान् संभानः स्यादिति । तस्यैतदभवत्—अयं बुद्धो भगवान् सचराचरे लोके जङ्गमं
पुण्यक्षेत्रमनन्यमहाफलं च । यन्न्वहमिदं बुद्धाय भगवते दद्यामिति ॥

अथ स आरामिको दन्तकाष्ठमादाय येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसङ्क्रम्य भगवतः
पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्तेऽस्थात् । एकान्तस्थितः स आरामिको भगवन्तमिदमवोचत्—इदं
भगवन् दन्तकाष्ठं प्रतिगृह्यतां ममान्तिकादनुकम्पामुपादायेति । अथ भगवानारामिकस्या-
नुग्रहार्थं गजभुजसदृशं सुवर्णवर्णं बाहुमभिप्रसार्य गृहीतवान्, गृहीत्वा भक्षितवान्, भक्षयित्वा B 159
चैनमारामिकस्याग्रतो विसर्जितवान्, विसर्ज्य तद्दन्तकाष्ठं पृथिव्यां निखातवान् । निखात-
मात्रमेव च तच्छाखापत्रपुष्पफलसमृद्धो महान्यग्रोधः परिमण्डलस्तत्रैव क्षणे निर्वृत्तः ।
तस्य च्छायायां निषद्य भगवता अनेकेषां देवमनुष्याणां धर्मो देशितः । ततोऽनाथपिण्डदेन
गृहपतिना भगवान् शतरसेनाहारेण प्रतिपादितः ॥

अथ आरामिको भगवदुपस्थानाप्रातिहार्योद्यावर्जितमना मूलनिकृत्त इव द्रुमः
पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कर्तुमारब्धः—अनेनाहं कुशलमूलेन प्रत्येकां बोधिं साक्षात्कुर्यामिति ॥

ततो भगवता स्मितं निदर्शितम् । धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं
प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ता-

---

1 Mss. read मनुष्य here in place of usual "नागयक्ष".

द्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूत्वा निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूत्वा निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति–किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति–न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः,
B 160 अपि तु अयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः । अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद्गच्छन्ति ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते–

आरभध्वं निष्कामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥
यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति,
B 161 जानुनोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकां बोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत ऊर्णायामन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ–

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः॥ ४॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम्।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः॥ ५॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः॥ ६॥ इति॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द एवमेतत्। नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति। पश्यस्यानन्द अनेनारामिकेण ममैवंविधं सत्कारं कृतम्। एवं भदन्त। एष आनन्द आरामिकोऽनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रयोदशकल्पान् विनिपातं न गमिष्यति, पश्चिमे भवे पश्चिमे निकेते पश्चिमे समुच्छ्रये पश्चिमे आत्मभावप्रतिलम्भे निर्मलो नाम प्रत्येकबुद्धो भविष्यति। अयमस्य देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति। तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः। शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥ B 162

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

———×———

३० वल्गुस्वराः।

B 163

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। अथ भगवान् पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं पिण्डाय प्राविक्षत्। संबहुलाश्च गोष्ठिका मद्यमदाक्षिप्ता वीणामृदङ्गपणवैर्विविधैर्वाद्यैर्वाद्यमानैर्नृत्यन्तो गायन्त उत्पलपद्मपुण्डरीकवार्षिकादिभिरुदारपुष्पैरासक्तकण्ठेगुणा त्रिशिरम्बरवसना बहिः श्रावस्त्या निर्गच्छन्ति। भगवांश्च श्रावस्त्यां पिण्डाय प्राविक्षत्। ददृशुस्ते गोष्ठिका बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं

जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाच्च तेषां योऽसौ मद्यमदः स प्रतिविगतः।
B 164 ततो विगतमद्यमदाः प्रसादावर्जितमनसो नृत्यगीतवादित्रैर्भगवत उपस्थानं चक्रुः, नीलपद्मानि चोपरि भगवतो निचिक्षिपुः। निक्षिप्तानि चोपरि भगवतो नीलकूटागारो नीलच्छत्रं नीलमण्डप इवावस्थितानि। तानि च भगवन्तं गच्छन्तमनुगच्छन्ति, तिष्ठन्तमनुतिष्ठन्ति। भगवता च नीलप्रभा उत्सृष्टा, यया श्रावस्ती इन्द्रनीलमणिसदृशप्रभा अवस्थिता॥

अथ ते गोष्ठिका लब्धप्रसादाः चेतनां पुष्णन्ति—अनेन वयं कुशलमूलेन प्रत्येकां बोधिं साक्षात्कुर्यामिति॥

ततो भगवता स्मितं विदर्शितम्। धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति। या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूत्वा निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूत्वा निपतन्ति। तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते। तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति। तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं
B 165 विसर्जयति। तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः, अपि तु अयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति। ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति। या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानवृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः॥ १॥
यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति॥ २॥

B 166 अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति। तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते। अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते। नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते। तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते। प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते। मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते। बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते।

चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकां बोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत ऊर्णायामन्तर्हिताः । अथा- B 167
युष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ--

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कासितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते--

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य धीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थं स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह--एवमेतदानन्द एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द एभिर्गोष्ठिकैर्ममैवंविधं सत्कारं कृतम् । एवं भदन्त । एते आनन्द गोष्ठिका अनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च विंशत्यन्तरकल्पान् विनिपातं न गमिष्यन्ति, पश्चिमे भवे पश्चिमे निकेते पश्चिमे समुच्छ्रये B 168
पश्चिमे आत्मभावप्रतिलम्भे वल्गुस्वरा नाम प्रत्येकबुद्धा भविष्यन्ति । अयमेषां देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्बुद्धप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकेषु कारान् करिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ।



जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाच्च तेषां योऽसौ मद्यमदः स प्रतिविगतः।
B 164 ततो विगतमद्यमदाः प्रसादावर्जितमनसो नृत्तगीतवादित्रैर्भगवत उपस्थानं चक्रुः, नीलपद्मानि चोपरि भगवतो निचिक्षिपुः। निक्षिप्तानि चोपरि भगवतो नीलकूटागारो नीलच्छत्रं नीलमण्डप इवावस्थितानि। तानि च भगवन्तं गच्छन्तमनुगच्छन्ति, तिष्ठन्तमनुतिष्ठन्ति। भगवता च नीलप्रभा उत्सृष्टा, यया श्रावस्ती इन्द्रनीलमणिसदृशप्रभा अवस्थिता॥

अथ ते गोष्ठिका लब्धप्रसादाः चेतनां पुष्णन्ति—अनेन वयं कुशलमूलेन प्रत्येकां बोधिं साक्षात्कुर्यामेति॥

ततो भगवता स्मितं विदर्शितम्। धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाता अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चिदधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति। या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं संघातं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूत्वा निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषूष्णीभूत्वा निपतन्ति। तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते। तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति। तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान्निर्मितं
B 165 विसर्जयति। तेषां निर्मितं दृष्ट्वैवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्यन्यत्रोपपन्नाः, अपि तु अयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेनास्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति। ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपयित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति। या उपरिष्टाद्गच्छन्ति, ताश्चातुर्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान्निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभाञ्छुभकृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानबृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः॥ १॥
यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति॥ २॥

B 166 अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति। तद्यदि भगवानतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते। अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते। नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते। तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते। प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते। मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जानुनोरन्तर्धीयन्ते। बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते।

चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकां बोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत ऊर्णायामन्तर्हिताः । अथा- II 167
युष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥

तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥

नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति । पश्यस्यानन्द एभिर्गोष्ठिकैर्ममैवंविधं सत्कारं कृतम् । एवं भदन्त । एते आनन्द गोष्ठिका अनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च त्रिंशत्कल्पान् विनिपातं न गमिष्यन्ति, पश्चिमे भवे पश्चिमे निकेते पश्चिमे समुच्छ्रये B 168
पश्चिमे आत्मभावप्रतिलम्भे वल्गुस्वरा नाम प्रत्येकबुद्धा भविष्यन्ति । अयमेषां देयधर्मो यो ममान्तिके चित्तप्रसाद इति । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्बुद्धप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकेषु कारान् करिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ।

चतुर्थो वर्गः ।[1]

तस्योद्दानम्—

पद्मकः कवडश्चैव धर्मपालः शिविस्तथा ।
सुरूपो मैत्रकन्यश्च शशो धर्मगवेषिणा ।
अनाथपिण्डदः सुभद्रश्च वर्गो भवति समुद्दितः ॥

३१ पद्मकः ।

B 169 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । शरत्कालसमये भिक्षवो रोगेण बाध्यन्ते पीतपाण्डुकाः कृशशरीरा दुर्बलाङ्गाः । भगवांस्त्वल्पाबाधोऽल्पातङ्कोऽरोगो बलवान् । तद्दर्शनाद्भिक्षवो भगवन्तं पप्रच्छुः—पश्य भदन्त एते भिक्षवः शारदिकेन रोगेण बाध्यन्ते, पीतपाण्डुकाः कृशशरीरा दुर्बलाङ्गाः । भगवांस्त्वल्पाबाधोऽल्पातङ्को बलवानरोगजातीयः, समपाकया च ग्रहण्या समन्वागत इति ॥

भगवानाह— तथागतेनैवैतानि भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । मयैतानि कर्माणि
B 170 कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि अपि कल्पशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यां पद्मको नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्करोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नमखिलमकण्टकमेकपुत्रमिव राज्यं कारयति । स च राजा श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः सर्वप्रदः सर्वपरित्यागी निःसङ्गपरित्यागी च महति त्यागे वर्तते । तस्मिंश्च समये वाराणस्यां कालवैषम्याद्धातुवैषम्याद्वा व्याधिरुत्पन्नः । प्रायः सत्त्वानां पाण्डुरोगः संवृत्तः । ततो राज्ञा तान् दृष्ट्वा कारुण्यमुत्पादितम्—मया ह्येषां परित्राणं करणीयं चिकित्सा चेति । ततः स राजा सर्वविषयनिवासिनो वैद्यान् संनिपात्य तेषां सत्त्वानां निदानमाशयानुशयं चोपलक्ष्य

---

1 Speyer has used some fragments of a Ms. containing this वर्ग, and has designated the references to them by F.

स्वयमारब्धश्चिकित्सां सर्वौपधसमुदानयं च कर्तुम्। ततश्चिकित्स्यमानानां तेषां सत्त्वानां B 171 बहवः काला अतिक्रान्ताः। न च शक्यन्ते वैद्यद्रव्यौपधपरिचारकसंपन्ना अपि चिकित्सितुम्। ततो राज्ञा सर्ववैद्यानाहूय आदरजातेन पुनः पृष्टाः—कोऽत्र हेतुर्येन मे दुश्चिकित्स्य इति। वैद्या विचार्य गुणदोषानेकमतेनाहुः—देव कालवैषम्याद्धातुवैषम्याच्च लक्ष्यामहे। अपि तु देव अस्त्यैकभैषज्यं रोहितो नाम मत्स्यः। यदि तस्य प्राप्तिः स्यात्, शक्यन्ते चिकित्सितुमिति। ततो राजा रोहितं मत्स्यं समन्वेपितुमारब्धः। स बहुभिरपि चारपुरुषैर्मृग्यमाणो न लभ्यते। ततस्ते राज्ञे निवेदितवन्तः॥

अथ राजा अपरेण समयेन बहिर्याणाय निर्गच्छति। ते च व्याधिन एकसमूहेन स्थित्वा राजानमूचुः—परित्रायस्व महाराज अस्मानस्माद्व्याधेः। प्रयच्छ जीवितमिति। ततो राजा करुणदीनविलम्बितैरक्षरैरुच्यमानस्तदातुरवचनं श्रुत्वा कारुण्यादाकम्पितहृदयः साश्रुदुर्दिनवदनं चिन्तयामास—किं ममानेनैवंविधेन जीवितेन राज्यैश्वर्याधिपत्येन वा ईदृशेन, योऽहं परेषां दुःखार्तानां न शक्तोऽस्मि शान्तिं कर्तुमिति। एवं विचिन्त्य राजा महान्तमर्थोत्सर्गं कृत्वा ज्येष्ठं कुमारं राज्यैश्वर्याधिपत्येषु प्रतिष्ठाप्य बन्धुजनं क्षमयित्वा पौरामात्यांश्च क्षमयित्वा दीनान् समाश्वास्य अष्टाङ्गसमन्वागतं व्रतं समादाय उपरिप्रासादतलमभिरुह्य धूपपुष्प- B 172 गन्धमाल्यविलेपनं च क्षिप्त्वा प्राङ्मुखं प्रणिधिं कर्तुं प्रारब्धः—येन सत्येन सत्यवचनेन महाव्यसनगतान् सत्त्वान् व्याधिपरिपीडितान् दृष्ट्वा स्वजीवितमिष्टं परित्यजामि। अनेन सत्येन सत्यवाक्येन अस्यां वालुकायां नद्यां महान् रोहितमत्स्यः प्रादुर्भवेयम्। इत्युक्त्वा प्रासादतलादात्मानं मुमोच॥

स पतितमात्रः कालगतो नद्यां वालुकायां महान् रोहितमत्स्यः प्रादुर्भूतः। इति देवताभिः सर्वविजिते शब्द उत्सृष्टः—एप दीर्घकालमहाव्याध्युत्पीडितानाममृतकल्पो नद्यां वालुकायां महान् रोहितमत्स्य प्रादुर्भूतः इति। यतः सहश्रवणान्महाजनकायः शस्त्रप्रकरः पिटकानादाय निर्गत्य विविधैस्तीक्ष्णैः शस्त्रैर्जीवित एव मांसान्युत्कर्तितुमारब्धः। स च बोधिसत्त्वो विकर्त्यमानशरीरस्तान् सर्वान् मैत्र्या स्फुरन्[1] सबाष्पाश्रुवदनश्चिन्तयामास—लाभा मे सुलब्धाः यन्नाम इमे सत्त्वा मदीयेन मांसरुधिरेण सुखिनो भविष्यन्तीति। तदनेनोपक्रमेण सत्त्वान् द्वादशवर्षाणि स्वकेन मांसरुधिरेण संतर्पयामास, न चानुत्तरायाः सम्यक्संबोधेश्चित्तं निवर्तितवान्॥

यदा तेषां सत्त्वानां स व्याधिरुपशान्तस्तदा तेन रोहितमत्स्येन शब्द उदीरितः—शृण्वन्तु भवन्तः सत्त्वाः। अहं स राजा पद्मकः। मया युष्माकमर्थे स्वजीवितपरित्यागेनायमेवंविध आत्मभाव उपात्तः। ममान्तिके चित्तं प्रसादयध्वम्। यदाहमनुत्तरां सम्यक्संबोधि- B 173

[1] Speyer reads स्फुरन् and justifies his reading. स्फरन् from स्फर्, Pali फर, is more accurate.

चतुर्थो वर्गः ।

तस्योद्दानम्—

पद्मकः कवडश्चैव धर्मपालः शिविस्तथा ।
सुरूपो मैत्रकन्यश्च शशो धर्मगवेषिणा ।
अनाथपिण्डदः सुभद्रश्च वर्गो भवति समुद्दितः ॥

३१ पद्मकः ।

B 169 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । शरत्कालसमये भिक्षवो रोगेण बाध्यन्ते पीतपाण्डुकाः कृशशरीरा दुर्बलाङ्गाः । भगवांस्त्वल्पाबाधोऽल्पातङ्कोऽरोगो बलवान् । तद्दर्शनाद्भिक्षवो भगवन्तं पप्रच्छुः—पश्य भदन्त एते भिक्षवः शारदिकेन रोगेण बाध्यन्ते, पीतपाण्डुकाः कृशशरीरा दुर्बलाङ्गाः । भगवांस्त्वल्पाबाधोऽल्पातङ्को बलवानरोगजातीयः, समपाकया च ग्रहण्या समन्वागत इति ॥

भगवानाह— तथागतेनैवैतानि भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । मयैतानि कर्माणि
B 170 कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु, कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि अपि कल्पशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यां पद्मको नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शाल्यीक्षुगोमहिषीसंपन्नमखिलमकण्टकमेकपुत्रमिव राज्यं कारयति । स च राजा श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः सर्वप्रदः सर्वपरित्यागी निःसङ्गपरित्यागी च महति त्यागे वर्तते । तस्मिंश्च समये वाराणस्यां कालवैषम्याद्धातुवैषम्याद्वा व्याधिरुत्पन्नः । प्रायः सत्त्वानां पाण्डुरोगः संवृत्तः । ततो राज्ञा तान् दृष्ट्वा कारुण्यमुत्पादितम्—मया ह्येषां परित्राणं करणीयं चिकित्सा चेति । ततः स राजा सर्वविषयनिवासिनो वैद्यान् संनिपात्य तेषां सत्त्वानां निदानमाशयानुशयं चोपलक्ष्य

---

१ Speyer has used some fragments of a Ms. containing this वर्ग, and has designated the references to them by F.

यस्मात्तु न प्रजानन्ति बाला मोहतमोवृताः।
तस्मात्तु भुञ्जते सत्त्वा आगृहीतेन चेतसा।
उत्पन्नं चैषां मात्सर्यं चित्तं पर्यादाय तिष्ठति ॥ ३ ॥

यदा भगवता एतत्सूत्रं भाषितं तदा भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—आश्चर्यं भदन्त यद्भगवान् दानस्य वर्णं भाषते दानसंविभागस्य च फलविपाकमिति। भगवानाह—किमत्र भिक्षव आश्चर्यं यत्तथागतो दानस्य वर्णं भाषते, दानसंविभागस्य फलविपाकमिति? यन्मयातीतेऽध्वनि याचनकहेतोर्मुखद्वारगतः स्वकवडः परित्यक्तः। तच्छृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्येऽहम् ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि ब्रह्मदत्तो नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नमखिलमकण्टकम्। एकपुत्रमिव राज्यं कारयति। स राजा श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः B 175 सर्वप्रदः सर्वपरित्यागी निःसङ्गपरित्यागी च। महति त्यागे वर्तते। यावदपरेण समयेन महद्दुर्भिक्षं प्रादुर्भूतं दुर्भिक्षान्तरकल्पसदृशम्। ततस्ते जनकाया दुर्भिक्षाकालभयभीताः क्षुत्क्षामकण्ठकपोलाः प्रेताश्रयसदृशाः संगम्य समागम्यैकसमूहेन राजानमुपसृत्य जयेनायुषा च वर्धयित्वोचुः—देव परित्रायस्व अस्मानस्माद्दुर्भिक्षभयात्। प्रयच्छ जीवितमिति। ततो राजा कोष्ठागारिकं पुरुषमामन्त्रितवान्—अस्ति भो पुरुष कोष्ठागारे अन्नपानं यदस्माकं स्यादेषां च जनकायानाम्? इति श्रुत्वा कोष्ठागारिक आह—परिगण्य देव सस्यानि आख्यास्यामीति। ततो गणितकुशलैर्गणनां कृत्वा सर्वेषां विषयनिवासिनां दिवसे दिवसे एककवडो राज्ञो द्वौ कवडावियन्तं कालं भविष्यतीति समाख्यातम्। ततो राजा जनकायानाहूयोक्तवान्—तेन हि भवन्तो दिवसानुदिवसमागत्य राजकुले कवडमभ्यवहृत्य गच्छतेति। ततस्ते प्रतिदिवसमागत्य प्रत्येकमेकैकं कवडमभ्यवहृत्य यथेष्टं गच्छन्ति ॥

अथान्यतमो ब्राह्मणस्तस्यां गणनायां नासीत्। परेभ्यश्च श्रुत्वा राजानमुवाच—देव जनपदगतेन मे श्रुता गणना। दीयतां ममापि कवड इति। ततो राजा स्वकात्कवडद्वयादेकं ब्राह्मणाय दत्तवान्। एकं कवडं जनसामान्यमभ्यवहर्तुं प्रवृत्तः ॥

शक्रस्य देवेन्द्रस्याधस्താज्ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते। तस्यैतदभवत्—अतिदुष्करं बत वाराणसेयो राजा करोति, यन्न्वहमेनं मीमांसेयेति। अथ शक्रो देवेन्द्रो ब्राह्मणवेषमात्मानमभिनिर्माय, भोजनकाले राजानमुपसृतः। जयेनायुषा च वर्धयित्वोवाच—बुभुक्षितोऽहं कुरुष्व स्वकवडेनानुग्रहमिति। ततो राजा स्वजीवितपरित्यागं व्यवसायकारुण्यात् स्वकवडं ब्राह्मणाय दत्त्वानाहारतां प्रतिपन्नः। यावत्षड्भक्तच्छेदा अनेनोपक्रमेण कृताः। तं च महाजनकायं B 176 भुञ्जानं दृष्ट्वा परां प्रीतिमापेदे। अथ शक्रो देवेन्द्रस्तं राज्ञोऽतिदुष्करं व्यवसायं दृष्ट्वा ब्राह्मणवेषमन्तर्धाप्य स्वेन रूपेण स्थित्वा राजानं संवर्धयामास—साधु साधु महाराज, आवर्जिता

मभिसंभोत्स्ये, अहं तदा युष्मानत्यन्तव्योघः परिमोच्य अत्यन्तनिष्ठे निर्वाणे प्रतिष्ठापयिष्यामीति। तच्छ्रवणात् स जनकायो लब्धप्रसादो राजामात्यपौराश्च पुष्पधूपमाल्यविलेपनैरभ्यर्च्य प्रणिधानं कर्तुमारब्धाः—अतिदुष्करकारक, यदा त्वमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्येथाः, तदा ते वयं श्रावकाः स्यामेति ॥

भगवानाह— किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन पद्मको नाम राजा बभूव, अहं सः। यदेवंविधाः परित्यागाः कृताः, तेन मे संसारेऽनन्तसुखमनुभूतम्। इदानीमप्यनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः, समपाकया च ग्रहण्या समन्वागतः। येन मे अशितपीतखादितास्वादितं सम्यक् सुखेन परिणमति। अल्पाबाधो रोगतातीतश्चास्मि। तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यत्सर्वसत्त्वेषु दयां भावयिष्यामः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

३२ कवडः[१]।

B 174 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म— सचेद्भिक्षवः सत्त्वा जानीयुर्दानस्य दानसंविभागस्य च फलविपाकं यथाहं जानामि दानस्य फलं दानसंविभागस्य च फलविपाकम्, अपीदानीं योऽसावपश्चिमकः कवडश्चरम आलोपः, ततोऽपि नादत्त्वाऽसंविभज्य परिभुञ्जीत सचेल्लभेत दक्षिणीयं प्रतिग्राहकम्। न चैषामुत्पन्नं मात्सर्यं चित्तं पर्यादाय तिष्ठेत्। यस्मात्तर्हि सत्त्वा न जानन्ति दानस्य फलं दानसंविभागस्य च फलविपाकम्, यथाहं जानामि दानस्य फलं दानसंविभागस्य च फलविपाकम्, तस्मात्ते अदत्त्वाऽसंविभज्य परिभुञ्जते आगृहीतेन चेतसा, उत्पन्नं चैषां मात्सर्यं चित्तं पर्यादाय तिष्ठति ॥

B 175 इदमवोचद्भगवान्। इदमुक्त्वा सुगतो ह्यथापरमेतदुवाच शास्ता—

एवं हि सत्त्वा जानीयुर्यथा प्रोक्तं महर्षिणा।
विपाकः संविभागस्य यथा भवति महार्थिकः ॥ १ ॥
नादत्त्वा परिभुञ्जीरन् स्युर्मत्सरिणस्तथा।
न चैषामाग्रहे चित्तमुपधेत कदाचन ॥ २ ॥

---

१ I have retained the reading of Mss. and Speyer. The usual word is कवल, a morsel or lump of food.

यस्मात्तु न प्रजानन्ति वाला मोहतमोवृताः ।
तस्मात्तु भुञ्जते सत्त्वा आगृहीतेन चेतसा ।
उत्पन्नं चैषां मात्सर्यं चित्तं पर्यादाय तिष्ठति ॥ ३ ॥

यदा भगवता एतत्सूत्रं भाषितं तदा भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—आश्चर्यं भदन्त यद्भगवान् दानस्य वर्णं भाषते दानसंविभागस्य च फलविपाकमिति । भगवानाह—किमत्र भिक्षव आश्चर्यं यत्तथागतो दानस्य वर्णं भाषते, दानसंविभागस्य फलविपाकमिति ? यन्मयातीतेऽध्वनि याचनकहेतोर्मुखद्वारगतः स्वकवडः परित्यक्तः । तच्छृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्येऽहम् ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि ब्रह्मदत्तो नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नमखिलमकण्टकम् । एकपुत्रमिव राज्यं कारयति । स राजा श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः B 175
सर्वप्रदः सर्वपरित्यागी निःसङ्गपरित्यागी च । महति त्यागे वर्तते । यावदपरेण समयेन महद्दुर्भिक्षं प्रादुर्भूतं दुर्भिक्षान्तरकल्पसदृशम् । ततस्ते जनकाया दुर्भिक्षाकालभयभीताः क्षुत्क्षामकण्ठकपोलाः प्रेताश्रयसदृशाः संगम्य समागम्यैकसमूहेन राजानमुपसृत्य जयेनायुषा च वर्धयित्वोचुः—देव परित्रायस्व अस्मानस्माद्दुर्भिक्षभयात् । प्रयच्छ जीवितमिति । ततो राजा कोष्ठागारिकं पुरुषमामन्त्रितवान्—अस्ति भो पुरुष कोष्ठागारे अन्नपानं यदस्माकं स्यादेषां च जनकायानाम् ? इति श्रुत्वा कोष्ठागारिक आह—परिगण्य देव सस्यानि आख्यास्यामीति । ततो गणितकुशलैर्गणनां कृत्वा सर्वेषां विषयनिवासिनां दिवसे दिवसे एककवडो राज्ञो द्वौ कवडावियन्तं कालं भविष्यतीति समाख्यातम् । ततो राजा जनकायानाहूयोक्तवान्—तेन हि भवन्तो दिवसानुदिवसमागत्य राजकुले कवडमभ्यवहृत्य गच्छतेति । ततस्ते प्रतिदिवसमागत्य प्रत्येकमेकैकं कवडमभ्यवहृत्य यथेष्टं गच्छन्ति ॥

अथान्यतमो ब्राह्मणस्तस्यां गणनायां नासीत् । परेभ्यश्च श्रुत्वा राजानमुवाच—देव जनपदगतेन मे श्रुता गणना । दीयतां ममापि कवड इति । ततो राजा स्वधात्कवडद्वयादेकं ब्राह्मणाय दत्तवान् । एकं कवडं जनसामान्यमभ्यवहर्तुं प्रवृत्तः ॥

शक्रस्य देवेन्द्रस्याधस्ताज्ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते । तस्यैतदभवत्—अतिदुष्करं बत वाराणसेयो राजा करोति, यन्न्वहमेनं मीमांसेयेति । अथ शक्रो देवेन्द्रो ब्राह्मणवेषमात्मानमभिनिर्माय भोजनकाले राजानमुपसृतः । जयेनायुषा च वर्धयित्वोवाच—बुभुक्षितोऽहं कुरुष्व स्वकवडेनानुग्रहमिति । ततो राजा स्वजीवितपरित्यागं व्यवसायकारुण्यात् स्वकवडं ब्राह्मणाय दत्त्वानाहारतां प्रतिपन्नः । यावत्षड्भक्तच्छेदा अनेनोपक्रमेण कृताः । तं च महाजनकायं भुञ्जानं दृष्ट्वा परां प्रीतिमापेदे । अथ शक्रो देवेन्द्रस्तं राज्ञोऽतिदुष्करं व्यवसायं दृष्ट्वा ब्राह्मणवेषमन्तर्धाप्य स्वेन रूपेण स्थित्वा राजानं संवर्धयामास—साधु साधु महाराज, आवर्जिता B 176

वयं भवतानेन दुष्करेण व्यवसायेन, सनाथश्चायं जनकाय ईदृशेन प्रजापालकेन। न दुष्यतां तव विजिते सर्वबीजानि, वाप्यन्ताम्। अहं सप्तमे दिवसे तथाविधं माहेन्द्रं वर्षमुत्स्रक्ष्यामि, येन सर्वसस्यानि निष्पत्स्यन्त इति। राज्ञा तथा कारितम्। शक्रेणापि तथाविधं माहेन्द्रं वर्षमुत्सृष्टम्, येन दुर्भिक्षं विनिवर्तितं सुभिक्षं प्रादुर्भूतम्॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन ब्रह्मदत्तो नाम राजा बभूव, अहं सः। मया तान्येवंविधे दुर्भिक्षे वर्तमाने स्वजीवितपरित्यागादेवंविधानि दानानि दत्तानि। तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्दानानि दास्यामः पुण्यानि करिष्यामः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

३३ धर्मपालः।

B 177 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। यदा देवदत्तेन मोहपुरुषेण भगवतो वधार्थेन धनपालको हस्तिनाग उत्सृष्टः, उदपानो विषचूर्णेन चावकीर्णः, वधकपुरुषाश्चोत्सृष्टाः। स भगवतो दीर्घरात्रं वधकः प्रत्यर्थिकः प्रत्यमित्रः, भगवांश्चास्य मैत्रचित्तो हितचित्तोऽनुकम्पाचित्तेन च प्रत्युपस्थितः। तदा भिक्षवो भगवन्तं पप्रच्छुः—पश्य भगवन् यावदयं देवदत्तो भगवतो वधायोद्यतः, भगवांश्चास्य मैत्रचित्तो हितचित्तोऽनुकम्पचित्तेन प्रत्युपस्थित इति॥

भगवानाह—किमत्र भिक्षव आश्चर्यं यदिदानीं तथागतो विगतरागो विगतद्वेषो विगतमोहः परिमुक्तो जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासेभ्यः सर्वज्ञः
B 178 सर्वाकारज्ञः सर्वज्ञानज्ञेयवशिप्राप्तः। यत्तु मया अतीतेऽध्वनि सरागेण सद्वेषेण समोहेन दहरकवयस्यवस्थितेन वधाय पराक्रान्तस्यास्यान्तिके नैवं चित्तं दूषितम्। तच्छृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्येऽहम्॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यां ब्रह्मदत्तो नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्करोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नमखिलमकण्टकम्। एकपुत्रमिव राज्यं पालयति। स च राजा श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मरामः प्रजावत्सलः सर्वप्रदः सर्वपरित्यागी निःसङ्गपरित्यागी च महति त्यागे वर्तते। तस्य च राज्ञो दुर्मतिर्नाम देवी चण्डा रोषणी साहसिका। एकपुत्रश्च धर्मपालो नाम्ना तस्या एव दुर्मत्याः सकाशाज्जातः। स च धर्मपालो दयावान् श्राद्धो भद्रः कल्याणा-

शय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः । सर्वेषां च B 179
वाराणसेयानां ब्राह्मणगृहपतीनामिष्टः कान्तः प्रियो मनापो दर्शनेन । स चोपाध्यायसकाशं गत्वा दारकैः सह लिपिं पठति ॥

यावद्राजा अपरेण समयेन वसन्तकालसमये संपुष्पितेषु पादपेषु हंसक्रौञ्चमयूरशुकशारिकाकोकिलजीवंजीवकनिर्घोषिते वनषण्डे देव्या सहान्तःपुरपरिवृत उद्यानभूमिं निर्गतः । तत्र च राज्ञ उद्यानेऽन्तःपुरजनेन सह क्रीडत ईर्ष्यारोषपरीता दुर्मतिर्देवी कुपिता । राज्ञा चास्या अर्धं पीतकं वर्जितम् । तया कुपितया राज्ञः संदेशो विसर्जितः—पुत्रस्याहं रुधिरं पिबेयम्, यद्यहं तवार्धं पीतकं पिबेयमिति । कामान् खलु प्रतिसेवमानस्य नास्ति किंचित् पापकं कर्माकरणीयमिति । ततो राजा ब्रह्मदत्तो धार्मिकोऽपि सन् कामरागपर्यवसानविगमादन्तःपुरजनेन सान्त्व्यमानोऽपि क्रोधाग्निना प्रज्वलितः । ततस्तेन संप्रवृद्धक्रोधेनाज्ञा दत्ता—गच्छत, धर्मपालस्य गलं छित्त्वा रुधिरं पाययतैनामिति ॥ B 180

ततो दारकशालावस्थितो धर्मपालः कुमारः श्रुत्वा रोदितुं प्रवृत्तः । एवं चाह—धिक् सत्त्वसभागतां संसारे, यत्र नाम क्रोधवशादङ्गनिःसृतमपि सुतं परित्यजन्तीति । ततो धर्मपालः सर्वालंकारविभूषितः पितुः पादयोर्निपत्य कथयति—साधु तात प्रसीद । निरपराधं मा मां परित्याक्षीः । इष्टाश्च सर्वेषां पितॄणां पुत्रा इति । राजा कथयति—पुत्रक यदि ते माता क्षमते, अहमपि क्षमे इति । ततो धर्मपालः प्ररुदन् मातुः सकाशमुपसंक्रान्तः पादयोर्निपत्य कृतकरपुट उवाच—अम्ब क्षमस्व, मा मां जीविताद्व्यपरोपयेति । सा एवं करुणदीनविलम्बितैरक्षरैरुच्यमाना न क्षमते । ततो वध्यघातैस्तीक्ष्णेन शस्त्रेण धर्मपालस्य कुमारस्य गलं छित्त्वा दुर्मतिर्देवी रुधिरं पायिता । न च दुर्मत्या विप्रतिसारो जातः । धर्मपालोऽपि कुमारो मातापितृवध्यघातेषु चित्तं प्रसाद्य कालगतः ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन धर्मपालो नाम B 181
कुमारो बभूव, अहं सः । सा दुर्मतिर्देवी, एष देवदत्तः । तदापि मे वधकहस्तगतेनास्य मैत्रं चित्तमुत्पादितम् । इदानीमप्यहमस्य वधायोद्यतस्य मैत्रचित्तो हितचित्तः अनुकम्पाचित्तः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यत्सर्वसत्त्वेषु मैत्रं चित्तं भावयिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

३४ शिबिः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 182
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्यय-

भैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन श्रावस्त्यां भिक्षूणां द्वौ संनिपातौ भवतः । एक आषाढ्यां वर्षोपनायिकायां द्वितीयः कार्तिक्यां पूर्णमास्याम् । तत्र भिक्षवः पात्राणि पचन्ति, चीवराणि धावयन्ति, पांसुकूल्यानि च सीव्यन्ति । यावदन्यतमो भिक्षुश्चीवरं स्योतुकामः सूचीछिद्रं सूत्रकं न
B 183 शक्नोति प्रतिपादयितुम् । स करुणदीनविलम्बितैरक्षरैरुवाच—को लोके पुण्यकाम इति । भगवांश्चास्य नातिदूरे चंक्रमे चंक्रम्यते । ततो भगवान् गम्भीरमधुरविशदकलविङ्कमनोज्ञदुन्दुभिनिर्घोषो गजभुजसदृशबाहुमभिप्रसार्य कथयति—अहं भिक्षो लोके पुण्यकाम इति । ततोऽसौ भिक्षुर्भगवतः पञ्चाङ्गोपेतं स्वरमुपश्रुत्य संभ्रान्तस्त्वरितत्वरितं भगवतः पाणिं गृहीत्वा स्वशिरसि स्थापयित्वाह—भगवन्, अनेन ते पाणिना त्रीणि कल्पासंख्येयानि दानशीलक्षान्तिवीर्यध्यानप्रज्ञा उपचिताः । अथ च पुनर्भगवानाह—अतृप्तोऽहं भिक्षो पुण्यैः, लब्धरसोऽहं भिक्षो पुण्यैः, अतो मे तृप्तिर्नास्तीति ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—आश्चर्यं भदन्त यद्भगवान् पुण्यमयैः संस्कारैरतृप्त इति । भगवानाह—किमत्र भिक्षव आश्चर्यं यदिदानीं तथागतो विगतरागो विगतद्वेषो विगतमोहः परिमुक्तो जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासेभ्यः सर्वज्ञः सर्वाकारज्ञः सर्वज्ञानज्ञेयवशिप्राप्तः । यत्त्वहमतीतेऽध्वनि सरागः सद्वेषः समोहोऽपरिमुक्तो जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासेभ्योऽतृप्तः पुण्यमयैः संस्कारैः । तच्छृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि शिविघोषायां राजधान्यां शिबिर्नाम राजा राज्यं कारयति, ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलह-
B 184 डिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नमखिलमकण्टकम् । एकपुत्रमिव राज्यं पालयति । स च शिवी राजा श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः सर्वप्रदः सर्वपरित्यागी निःसङ्गपरित्यागी च । महति त्यागे वर्तते । स कल्यमेवोत्थाय यज्ञवाटं प्रविश्य अन्नमन्नार्थिभ्यः प्रयच्छति, वस्त्रं वस्त्रार्थिभ्यः । धनधान्यहिरण्यसुवर्णमणिमुक्तावैडूर्यशङ्खशिलाप्रवालादीनां परित्यागं करोति । न चासौ पुण्यमयैः संस्कारैस्तृप्तिं गच्छति । सोऽन्तःपुरं प्रविश्यान्तःपुरजनस्य भक्ताच्छादनं प्रयच्छति, कुमाराणाममात्यानां भटबलाग्रस्य नैगमजानपदानाम् ॥

अथ राज्ञः शिबेरेतदभवत्—संतर्पिता अनेन मनुष्यभूताः, क्षुद्रजन्तवोऽवशिष्टाः, येन संतर्पयितव्या इति । स परित्यक्तविभवसर्वस्व एकशाटकनिवसितः स्वशरीरावशेषश्चिन्तामापेदे । तस्यैतदभवत्—क्षुद्रजन्तुभ्यः स्वशरीरमनुप्रयच्छामीति । स शस्त्रेण स्वशरीरं तक्षयित्वा यत्र दंशमशकास्तत्रोत्सृष्टकायः प्रतिष्ठते । प्रियमिवैकपुत्रकं रुधिरेण संतर्पयति ॥

B 185 शक्रस्य देवेन्द्रस्याधस्ताज्ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते । तस्यैतदभवत्—किमयं शिवी राजा सत्त्वानामर्थेनेवं करोति, उत करुणया ? यन्न्वहमेनं जिज्ञासेयेति । ततो भिन्नाञ्जनमसिवर्णं

गृध्रवेशमात्मानमभिनिर्माय राज्ञः शिबेः सकाशमुपसंक्रम्य मुखतुण्डकेनाक्ष्युत्पाटयितुं प्रवृत्तः। न च राजा संत्रासमापद्यते। किं तु मैत्रीविशालाभ्यां नयनाभ्यां तं गृध्रमालोक्य कथयति—वत्स, यन्मदीयाच्छरीरात्प्रयुज्यसे, तेन प्रणयः क्रियतामिति । तत आवर्जितः शक्रो देवेन्द्रो ब्राह्मणवेषमात्मानमभिनिर्माय राज्ञः शिबेः पुरस्तात् स्थित्वा कथयति—साधु पार्थिव, दीयतामेतन्नयनद्वयमिति । राजोवाच—महाब्राह्मण गृह्यतां यदभिरुचितम्, न मेऽत्र विघ्नः कश्चिदस्तीति। ततः शक्रो देवेन्द्रो भूयस्या मात्रयाभिप्रसन्नो ब्राह्मणवेषमन्तर्धाप्य स्वरूपेण स्थित्वा राजानमभ्युत्साहयन्नुवाच—साधु साधु भोः पार्थिव, सुनिश्चिता ते बुद्धिः, अकम्प्यस्ते प्रणिधिः, B 186 अनुगता ते सत्त्वेषु महाकरुणा, यत्र नाम त्वं संत्रासकरेषु धर्मेषु विशारदोः। न चिरात्त्वमनेन व्यवसायेनानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यसे ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन शिबिर्नाम राजा बभूव, अहं सः। तदानीमपि मे पुण्यमयैः संस्कारैस्तृप्तिर्नास्ति, प्रागेवेदानीम् । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्दानानि दास्यामः, पुण्यानि करिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

३५ सुरूपः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 187 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । यदा भगवान् प्रतिसंलयनादुत्थाय चतसृणां पर्षदां मधुरमधुरं धर्मं देशयति, क्षौद्रं मध्विवानेडकम्, अनेकशता च पर्षद्भगवतः सकाशान्मधुरमधुरं धर्मं शृणोत्यानेञ्जमानैरिन्द्रियैः, तदा भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—पश्य भदन्त यावद्धर्मस्तस्यामी भाजनभूताः सत्त्वा आदरेण श्रोतव्यं मन्यन्त इति । भगवानाह—यथा तथागतेन भिक्षव आदरजातेन धर्मः श्रुतश्चोद्गृहीतश्च, तच्छृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यां सुरूपो नाम राजा राज्यं कारयति, B 188 ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नमखिलमकण्टकम् । एकपुत्रकमिव राज्यं पालयति । स च राजा श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः सर्वप्रदः सर्वपरित्यागी निःसङ्गपरित्यागी च । महति त्यागे वर्तते । तस्य च राज्ञः सुन्दरिका नाम देवी अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका

सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेता, सुन्दरकश्च नाम्ना एकपुत्र इष्टः कान्तः प्रियो मनापः क्षान्तोऽप्रतिकूलः ।
अथापरेण समयेन राज्ञः सुरूपस्य धर्मे अभिलाष उत्पन्नः । तेन सर्वे अमात्याः संनि-
पात्योक्ताः—पर्येषत मे श्रामण्यो धर्मान्, धर्मो मे रोचत इति । ततस्ते अमात्याः कृतकरपुटा
राजानं विज्ञापयन्ति—दुर्लभो महाराज धर्मः । श्रूयते महाराज बुद्धानां लोके उत्पादाद्धर्म-
स्योत्पादो भवतीति । ततो राज्ञा सुवर्णपिटकं ध्वजाग्रे बद्ध्वा सर्वविजिते घण्टावघोषणं
B 189 कारितम्—यो मे धर्मं वक्ष्यति, तस्येमं सुवर्णपिटकं दास्यामि, महता च सत्कारेण सत्करि-
ष्यामीति । ततो बहवः काला अतिक्रान्ताः । न च कश्चिद्धर्मदेशक उपलभ्यते । ततः स
राजा धर्महेतोरुत्कण्ठति परितप्यति ॥

शक्रस्य च देवानामिन्द्रस्याधस्ताज्ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते । स पश्यति राजानं धर्म-
हेतोर्विहन्यमानम् । तस्यैतदभवत्—यन्न्वहं सुरूपं राजानं मीमांसेयेति । ततो यक्षरूपमात्मान-
मभिनिर्माय विकृतकरचरणनयनोऽनेकपरिपन्मध्यगतं राजानमेतदवोचत्—ननु धर्माभिलाषी
भवान्, अहं ते धर्मं वक्ष्यामीति । ततो धर्मश्रवणात्प्रीतिप्रामोद्यजातो राजा यक्षमेतदुवाच—
ब्रूहि गुह्यक धर्मान् श्रोष्यामीति । गुह्यक उवाच—क्षुधितस्य बत महाराज धर्मा
अभिलषन्ति । बुभुक्षितोऽस्मि, भोजनं तावन्मे प्रयच्छेति । तच्छ्रुत्वा राजा पौरुषेयानामन्त्रया-
मास—आनीयन्तामस्य भक्ष्यभोज्यप्रकारा इति । यक्ष आह—सद्योहतरुधिरमांसभक्ष्योऽहम् ।
B 190 एतं मे सुन्दरमेकपुत्रकं प्रयच्छेति । श्रुत्वा राजा परं विषादमापन्नः—कदाचित्कर्हि-
चिन्मेऽद्य धर्मशब्द आसादितः । सोऽप्यनर्घेण मूल्येनेति । ततः सुन्दरः कुमारस्तदुपश्रुत्य
पितुः पादयोर्निपत्य राजानं विज्ञापयामास—मर्षय देव । पूर्यतां देवस्याभिप्रायम्, प्रयच्छ
मां गुह्यकायाहारार्थमिति । ततो राजा तमेकपुत्रकमिष्टं कान्तं प्रियं मनापं क्षान्तमप्रतिकूलं
धर्मस्यार्थे यक्षाय दत्तवान् ॥

ततो यक्षेण ऋद्धिबलाधानाद्राज्ञः पर्षदश्च तथा दर्शितो यथाङ्गप्रत्यङ्गानि पृथग्विकृत्य
भक्षितानि, रुधिरं च पीयमानम् । * * * दृष्ट्वा राजा धर्माभिलाषी न विषादमापन्नः ।
स गुह्यको राजानमुवाच—अतृप्तोऽस्मि भोः पार्थिव, भूयो मे प्रयच्छेति । ततो राजा तस्मै
दयितां भार्यां दत्तवान् । सापि तेनैवाकारेण दर्शिता । ततो भूयो राजानमुवाच—भो
पार्थिव, अद्यापि तृप्तिर्न लभ्यत इति । ततो राजा यक्षमुवाच—वत्स दत्तो मे एकपुत्रको
भार्या च दयिता, किं भूयः प्रार्थयसे इति । गुह्यक उवाच—स्वशरीरं मे प्रयच्छ । अनेन
B 191 तृप्तिमुपयास्यामीति । राजोवाच—यदि स्वशरीरं ते प्रदास्यामि, कथं पुनर्धर्मं श्रोष्यामि ? किं
तु पूर्वं मे धर्मं वद, पश्चाद्गृहीतधर्मा शरीरं परित्यक्ष्यामीति । ततो गुह्यकेन राजानं प्रति-
ज्ञायां प्रतिष्ठाप्यानेकशतायाः परिषदः पुरस्ताद्धर्मो देशितः ॥

१ Speyer suggests धर्मं for धर्मान् which is better than the plural form. २ Speyer suggests क्षुधित, बुधित for ब्रुमित. ३ Some Mss. read अभिलप्यन्ति. अभिलष्यन्ति means make their appearance. ४ तु for नु is better and easier to understand.

प्रियेभ्यो जायते शोकः प्रियेभ्यो जायते भयम् ।
प्रियेभ्यो विप्रमुक्तानां नास्ति शोकः कुतो भयमिति ॥ १ ॥

ततो राजा अस्या गाथायाः सहश्रवणात्प्रह्लादितमनाः प्रीतिसौमनस्येन्द्रियजातो यक्षमुवाच—इदं गुह्यक शरीरम्, यथेष्टं क्रियतामिति ॥

ततः शक्रो देवेन्द्रो राजानं मेरुवदकम्प्यमनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ विदित्वा यक्षरूपमन्तर्धाप्य स्वरूपेण स्थित्वा प्रसादविकसिताभ्यां नयनाभ्यामेकेन पाणिना पुत्रं गृहीत्वा द्वितीयेन च भार्यां राजानमभ्युत्साहयन्नुवाच—साधु साधु सत्पुरुष । दृढसंनाहस्त्वम् । नचिरादनेन व्यवसायेन अनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यसे । अयं च ते इष्टजनसमागम इति । ततो राजा शक्रं देवेन्द्रमिदमवोचत्—साधु साधु कौशिक, कुतोऽस्माकं धर्माभिप्रायः पूरितश्चेति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन सुरूपो नाम राजा बभूव, अहं सः । सुन्दरः कुमार आनन्दः । सुन्दरिका एषा एव यशोधरा । तदापि मे भिक्षवो धर्महेतोरिष्टबन्धुपरित्यागः स्वजीवितपरित्यागश्च कृतः, प्रागेवेदानीम् । तस्मात्तर्हि B 192 भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यद्धर्मं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः । धर्मं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

३६ मैत्रकन्यकः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 193 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म—सब्रह्मकाणि भिक्षवस्तानि कुलानि येषु कुलेषु मातापितरौ सम्यङ्मान्येते, सम्यक् पूज्येते, सम्यक्सुखेन परिह्रियेते । तत्कस्य हेतोः ? ब्रह्मभूतौ हि कुलपुत्रस्य मातापितरौ सहधर्मेण । साचार्यकाणि तानि कुलानि येषु कुलेषु मातापितरौ सम्यङ्मान्येते सम्यक्पूज्येते सम्यक्सुखेन परिह्रियेते । तत्कस्य हेतोः ? आचार्यभूतौ हि कुलपुत्रस्य मातापितरौ सहधर्मेण । आहवनीयानि तानि कुलानि येषु कुलेषु मातापितरौ सम्यङ्मान्येते सम्यक्पूज्येते सम्यक्सुखेन परिह्रियेते । तत्कस्य हेतोः ? आहवनीयौ हि कुलपुत्रस्य

---

१ The story of मैत्रकन्यक is represented on the sculptures of the temple of Bora Budur in Java.

मातापितरौ सहधर्मेण। साग्निकानि तानि कुलानि येषु कुलेषु मातापितरौ सम्यङ् मान्येते, सम्यक् पूज्येते, सम्यक्सुखेन परिह्रियेते। तत्कस्य हेतोः? अग्निभूतौ हि कुलपुत्रस्य माता-
B 194 पितरौ सहधर्मेण। सदेवकानि तानि कुलानि येषु कुलेषु मातापितरौ सम्यङ् मान्येते सम्यक् पूज्येते सम्यक् सुखेन परिह्रियेते। तत्कस्य हेतोः? देवभूतौ हि कुलपुत्रस्य मातापितरौ सहधर्मेण। इदमवोचद्भगवान्। इदमुक्त्वा सुगतो ह्यथापरमेतदुवाच शास्ता—

ब्रह्मा हि मातापितरौ पूर्वाचार्यौ तथैव च।
आह्वनीयौ पुत्रस्य अग्निः स्याद्देवतानि च॥ १॥

तस्मादेतौ नमस्येत सत्कुर्याच्चैव पण्डितः।
उद्वर्तनेन स्नानेन पादानां धावनेन च।
अथवा अन्नपानेन वस्त्रशय्यासनेन च॥ २॥

तया स परिचर्यया मातापितृषु पण्डितः।
इह चानिन्दितो भवति प्रेत्य स्वर्गे च मोदते॥ ३॥

यदा भगवता एतत्सूत्रं भाषितम्, तदा भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—आश्चर्यं भदन्त यद्भगवान् मातापितृगुरुशुश्रूषावर्णवादीति। भगवा-नाह—किमत्र भिक्षव आश्चर्यं यदिदानीं तथागतो विगतरागो विगतद्वेषो विगतमोहः परिमुक्तो जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैः सर्वज्ञः सर्वाकारज्ञः सर्वज्ञानज्ञेयवशि-
B 195 प्राप्तो मातापितृगुरुशुश्रूषाया वर्णवादी। यत्तु मयातीतेऽध्वनि सरागेण सद्वेषेण समोहेनापरिमुक्तेन जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायायासैर्मातुः स्वल्पमपकारं कृत्वा महद्दुःखमनुभूतम्। तच्छृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यां मित्रो नाम सार्थवाहो बभूव आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रा जायन्ते म्रियन्ते च। स करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः—अनेकधनसमुदितं मे गृहम्। न मे पुत्रो न दुहिता। ममात्ययात्सर्वस्वापतेयमपुत्रकमिति कृत्वा राज्ञो विधेयं भविष्यतीति। तस्य वयस्यकेनोपदिष्टम्—यदि ते पुत्रो जायते, तस्य दारिकानाम स्थापयितव्यम्। एवमसौ चिरजीवी भविष्यतीति। सोऽपुत्रः पुत्राभिनन्दी शिववरुणकुबेरशक्रब्रह्मादीनन्यांश्च देवताविशेषानायाचते। तद्यथा—आरामदेवता वनदेवता-
श्चत्वरदेवताः शृङ्गाटकदेवता बलिप्रतिग्राहिका देवताः। सहजाः सहधार्मिका नित्यानुबद्धा
B 196 अपि देवता आयाचते। अस्ति चैष लोके प्रवादो यदायाचनहेतोः पुत्रा जायन्ते दुहितरश्चेति। तच्च नैवम्। यद्येवमभविष्यत्, एकैकस्य पुत्रसहस्रमभविष्यत् तद्यथा राज्ञश्चक्रवर्तिनः। अपि तु त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्चेति। कतमेषां त्रयाणां स्थानानाम्? मातापितरौ रक्तौ भवतः संनिपतितौ। माता कल्या भवति ऋतुमती।

गन्धर्वश्च प्रत्युपस्थितो भवति । एषां त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहि-
तरश्च । स च आयाचनपरस्तिष्ठति । अन्यतमश्च सत्त्वोऽन्यतमस्मात्सत्त्वनिकायाच्च्युतः तस्य
प्रजापत्याः कुक्षिमवक्रान्तः । पञ्चावेणिका धर्मा एकत्ये पण्डितजातीये मातृग्रामे । कतमे पञ्च ?
रक्तं पुरुषं जानाति, विरक्तं जानाति । कालं जानाति, ऋतुं जानाति । गर्भमवक्रान्तं
जानाति । यस्य सकाशाद् गर्भोऽवक्रामति, तं जानाति । दारकं जानाति, दारिकां जानाति ।
सचेद्दारको भवति, दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति । सचेद्दारिका भवति, वामं कुक्षिं निश्रित्य
तिष्ठति । सा आत्तमनात्तमनाः स्वामिन आरोचयति—दिष्ट्यार्यपुत्र वर्धसे, आपन्नसत्त्वास्मि
संवृत्ता । यथा च मे दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति, नियतं दारको भविष्यतीति ।
सोऽप्यात्तमनात्तमनाः पूर्वकायमभ्युन्नमय्य दक्षिणं बाहुमभिप्रसार्य उदानमुदानयति—अप्येव
वाहं चिरकालाभिलषितं पुत्रमुखं पश्येयम् । जातो मे स्यान्नावजातः, कृत्यानि मे कुर्वीत, II 197
भृतः प्रतिबिभृयात्, दायाद्यं प्रतिपद्येत, कुलवंशो मे चिरस्थितिकः स्यात्, अस्माकं चाप्य-
तीतकालगतानामल्पं वा प्रभूतं वा दानानि दत्त्वा पुण्यानि कृत्वा अस्माकं नाम्ना दक्षिणा-
मादेक्ष्यते—इदं तयोर्यत्रतत्रोपपन्नयोर्गच्छतोरनुगच्छत्विति । आपन्नसत्त्वां चैनां विदित्वोपरि-
प्रासादतलगतामयन्त्रितां धारयति शीते शीतोपकरणैः, उष्णे उष्णोपकरणैः वैद्यप्रज्ञप्तैराहारै-
र्नातितिक्तैर्नात्यम्लैर्नातिलवणैर्नातिमधुरैर्नातिकटुकैर्नातिकषायैः, तिक्ताम्ललवणमधुरकटुक-
कषायविवर्जितैराहारैः । हारार्धहारविभूषितगात्रीमप्सरसमिव नन्दनवनविचारिणीं मञ्चान्मञ्चं
पीठात्पीठमनवतरन्तीमधरां भूमिम् । न चास्याः किंचिदमनोज्ञशब्दश्रवणं यावदेव गर्भस्य
परिपाकाय । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातोऽभिरूपो
दर्शनीयः प्रासादिको गौरः कनकवर्णश्छत्राकारशिराः प्रलम्बबाहुर्विस्तीर्णललाट उच्चघोषः
संगतभ्रूस्तुङ्गनासः सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेतः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—
किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः—अयं दारको मित्रस्य पुत्रः कन्या च । तस्मा-
द्भवतु दारकस्य मैत्रकन्यको नामेति ॥

मैत्रकन्यको दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां II 198
द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते
क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेन अन्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते
ह्रदस्थमिव पङ्कजम् । पिता चास्य महासमुद्रमवतीर्णः, तत्रैव च निधनमुपयातः । यदा
मैत्रकन्यको महान् संवृत्तस्तदा मातरमुवाच—अम्ब पितास्माकं किंकर्मफलोपजीवी आसीद् ?
ततः पश्चादहमपि तथा करिष्यामीति । माता कथयति—पुत्रक पिता ते औक्करिक आसीत् ।
आकाङ्क्षमाणः त्वमौक्करिकत्वं कुरु । सा चिन्तयति—यद्यहमस्मै वक्ष्यामि महासमुद्रवणि-
गासीदिति, एषोऽपि कदाचिन्महासमुद्रमवतीर्णस्तत्रैव निधनमुपगच्छेदिति ॥

तेनौक्करिकापणो व्यवस्थापितः । ततः प्रथमे दिवसे चत्वारः कार्षापणाः संपन्नाः ।
तेऽपि तेन मातुर्निर्यातिताः—एभिरम्ब श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकान् प्रतिपादयस्वेति ।

यावदपरेणोच्यते—पिता ते गान्धिकापणिक आसीदिति, तेनौदनिकत्वं त्यक्त्वा गान्धिकापणो
व्यवस्थापितः। अष्टौ कार्षापणाः संपन्नाः। तेऽपि तेन मातुर्निर्यातिताः। यावदपरेणोच्यते—
पिता ते हैरण्यिकः आसीदिति, तेन तमापणं त्यक्त्वा हैरण्यिकापणो व्यवस्थापितः।
ततः प्रथमे दिवसे षोडश कार्षापणाः संपन्नाः। तेऽपि तेन मातुर्निर्यातिताः। द्वितीये
B 199 दिवसे द्वात्रिंशत्कार्षापणाः संपन्नाः। तेऽपि तेन मातुर्निर्यातिताः। यावद्धैरण्यिकैरीर्ष्याप्रकृतैः
सर्वानधिष्ठानव्यवहारान् विदित्वोक्तः—मैत्रकन्यक, किं तवानया अधर्मजीविकया? पिता ते
महासमुद्रवणिगासीत्। केन त्वं कुसंव्यवहारे नियुक्त इति। स हैरण्यिकवचनसंचोदितो
मातुर्गत्वा कथयति—अम्ब एवमनुश्रूयते पितास्माकं महासमुद्रवणिगासीदिति। तदनुजानीहि,
अहमपि महासमुद्रमवतरिष्यामीति। माता कथयति—एवमेतत्पुत्रक। किं तु त्वं बाल एक-
पुत्रकश्च। मा मां परित्यज्य महासमुद्रमवतरिष्यसीति। स ईर्ष्याप्रकृतिभिरकल्याणमित्रैर्विप्र-
लब्धो न निवर्तते। ततस्तेन मातुर्वचनमवचनं कृत्वा वाराणस्यां नगर्यां घण्टावघोषणं
कारितम्—शृण्वन्तु भवन्तो वाराणसीनिवासिनो वणिजः—मैत्रकन्यकः सार्थवाहो महासमुद्र-
मवतरिष्यति। ये युष्माकमुत्सहन्ते मैत्रकन्यकेन सार्थवाहेन सार्धमशुल्केनागुल्मेनातरपण्येन
महासमुद्रमवतर्तुम्, ते महासमुद्रगमनीयं पण्यं समुदानयन्त्विति। स कृतकुतूहलमङ्गल-
स्वस्त्ययनः पञ्चवणिक्शतपरिवारः शकटैर्भारैर्मूटैः पिटकैरुष्ट्रैर्गोभिर्गर्दभैर्महासमुद्रगमनीयं
पण्यं समुदानीय संप्रस्थितः। माता चास्य स्नेहव्याकुलहृदया साश्रुदुर्दिनवदना पादयोर्लग्ना—
B 200 पुत्रक मा मां परित्यज्य महासमुद्रमवतरेति। अथ स एवं करुणदीनविलम्बितैरल्पाक्षरै-
रुच्यमानः कृतव्यवसायो मातरं पादेन शिरस्यभिहत्य सार्थसहायः संप्रस्थितः। मात्रा चोक्तः—
मा मे पुत्रक अस्य कर्मणो विपाकमनुभवेथा इति॥

यावदसौ ग्रामनिगमराष्ट्रराजधानीपट्टनान्यवलोकयन् समुद्रतीरमनुप्राप्तः। स पञ्चभिः
पुराणशतैर्वहनं मूल्या पञ्च पौरुषेयान् गृहीत्वाऽहारं नाविकं कैवर्तं कर्णधारं च, त्रिरपि
घोषणावघोषणं कृत्वा महासमुद्रमवतीर्णः। यावद्वहनं मकरेण मत्स्यजातेनानयाद्व्यसन-
मापादितम्। ततो मैत्रकन्यकः फलकमासाद्य स्थलमनुप्राप्तः। ततः स्थले चङ्क्रम्यमाणो नदूरा-
B 201 न्नगरं रमणकं नाम्ना दृष्टवान्। स तदुपजगाम। यावत्ततश्चतस्रोऽप्सरसो निर्गताः, अभिरूपा
दर्शनीयाः प्रासादिकाः। ताः कथयन्ति—एहि मैत्रकन्यक, स्वागतं ते, इदमस्माकमन्नगृहं
पानगृहं वस्त्रगृहं शय्यागृहं मणिमुक्तावैडूर्यशङ्खशिलाप्रवालविविधजातरूपरजतसंपूर्णम्।
आगच्छ रंस्यामह इति। स ताभिः सह अनेकानि वर्षाणि रतिमनुभूतवान्, यथापि
तत्कृतपुण्यः सत्त्वः कृतकुशलः। दक्षिणपद्धतिगमनाच्चैनं वारयन्ति। स यतो दक्षिणायाः
पद्धतेर्निवार्यते, ततः सुष्ठुतरमुत्कण्ठितो गन्तुम्। यावत्पुनरपि दक्षिणेन पथा गच्छन्
पश्यति सदामत्तं नाम नगरम्। स तत्र द्वारीभूतः। यावत्तस्मादष्टावप्सरसो निर्गताः
अभिरूपतरा दर्शनीयतराः प्रासादिकतराः। ताः कथयन्ति—एहि मैत्रकन्यक, स्वागतं ते,
इदमस्माकमन्नगृहं पानगृहं वस्त्रगृहं शय्यागृहं मणिमुक्तावैडूर्यशङ्खशिलाप्रवालविविधजात-
रूपरजतसंपूर्णम्। आगच्छ रंस्यामह इति। स ताभिः सहानेकानि अवर्षाणि रतिमनु-

भूतवान् यथापि तत्कृतपुण्यः सत्त्वः कृतकुशलः। ता अप्यस्य दक्षिणां पद्धतिं वारयन्ति । B 202
स यतो दक्षिणायाः पद्धतेर्निवार्यते, ततः सुष्ठुतरमुत्कण्ठितो गन्तुम्। यावत्पुनरपि दक्षिणेन पथा गच्छन् पश्यति नन्दनं नाम नगरम्। स तत्र द्वारीभूतः। यावत्तस्मादपि षोडशाप्सरसो निर्गताः अभिरूपतरा दर्शनीयतराः प्रासादिकतराः। ताः कथयन्ति—एहि मैत्रकन्यक, स्वागतं ते, इदमस्माकमन्नगृहं पानगृहं वस्त्रगृहं शय्यागृहं मणिमुक्तावैडूर्यशङ्खशिलाप्रवालविविधजातरूपरजतसंपूर्णम्। आगच्छ रंस्यामह इति। स ताभिः सह अनेकानि वर्षाणि रतिमनुभूतवान् यथापि तत्कृतपुण्यः सत्त्वः कृतकुशलः। ता अप्यस्य दक्षिणां पद्धतिं वारयन्ति। स यतो दक्षिणायाः पद्धतेर्निवार्यते, ततः सुष्ठुतरमुत्कण्ठितो गन्तुम्। यावत् पुनरपि दक्षिणेन पथा गच्छन् पश्यति ब्रह्मोत्तरं नाम प्रासादम्। स तत्र द्वारीभूतः। यावत्तस्मादपि द्वात्रिंशदप्सरसो निर्गताः अभिरूपतरा दर्शनीयतराः प्रासादिकतराः। ताः कथयन्ति—एहि मैत्रकन्यक, स्वागतं ते, इदमस्माकमन्नगृहं पानगृहं वस्त्रगृहं शय्यागृहं मणिमुक्तावैडूर्यशङ्खशिलाप्रवालविविधजातरूपरजतसंपूर्णम्। आगच्छ रंस्यामह इति। स ताभिः सह अनेकानि वर्षाणि रतिमनुभूतवान् यथापि तत्कृतपुण्यः सत्त्वः कृतकुशलः। ता अप्यस्य दक्षिणां पद्धतिं वारयन्ति। स यतो दक्षिणायाः पद्धतेर्निवार्यते, ततः सुष्ठुतरमुत्कण्ठितो गन्तुम्॥

यथा दक्षिणां पद्धतिं गच्छति, तथास्येच्छा वर्धते। यावत्पुनरपि दक्षिणेन पथा गच्छन् पश्यत्ययोमयं नगरम्। स तत्र प्रविष्टः। प्रविष्टमात्रस्य चास्य द्वारं पिहितम्। ततोऽभ्यन्तरं प्रविष्टः। तत्रास्य द्वारं पिहितम्। ततोऽभ्यन्तरं प्रविष्टः। यावत्पुरुषं पश्यति महाप्रमाणम्। मूर्ध्नि चास्य अयोमयं चक्रं भ्रमत्यादीप्तं प्रदीप्तं संप्रज्वलितमेकज्वालीभूतम्। तस्य शिरसो यत्पूयशोणितं प्रघरति, सोऽस्याहारः। ततो मैत्रकन्यकस्तं पुरुषं पृष्टवान्—भो पुरुष, कस्त्वमिति। स कथयति—अहं मातुरपकारीति। उदाहृतमात्रे च तेन पुरुषेण मैत्रकन्यकस्य तत्कर्माभिमुखीभूतम्—अहमपि मातुरपकारीति मन्ये तेनैवाहं कर्मणा इहाकृष्ट इति। अथ तस्मिन्नन्तरे आकाशाच्छब्दो निर्गतः—ये बद्धास्ते मुक्ताः, ये मुक्तास्ते बद्धाः। इत्युक्तमात्रे तस्य पुरुषस्य मूर्ध्नि चक्रमन्तर्हितम्, मैत्रकन्यकस्य मूर्ध्नि प्रादुर्भूतम्। ततो दुःखार्तं मैत्रकन्यकमवेक्ष्य स पुरुषो गाथया प्रत्यभाषत—

अतिक्रम्य रमणकं सदामत्तं च नन्दनम्। B 203
ब्रह्मोत्तरं च प्रासादं केन त्वमिहागतः॥ १॥

मैत्रकन्यकः प्राह—

अतिक्रम्य रमणकं सदामत्तं च नन्दनम्।
ब्रह्मोत्तरं च प्रासादमिच्छयाहमिहागतः॥ २॥
दूरं हि कर्षते कर्म दूरात्कर्म प्रवर्तते।
तत्र प्रकर्षते कर्म यत्र कर्म विपच्यते॥ ३॥

तेन कर्मविपाकेन चक्रं वहति मस्तके ।
आदीप्तं संप्रज्वलितं मम प्राणोपरोधकम् ॥ ४ ॥ इति ॥

पुरुषः प्राह—

त्वया प्रदुष्टचित्तेन माता दुष्करकारिका ।
पादेनाभ्याहता मूर्ध्नि तस्य ते कर्मणः फलम् ॥ ५ ॥ इति ॥

मैत्रकन्यकः प्राह—

कति वर्षसहस्राणि चक्रं वर्त्स्यति मस्तके ।
आदीप्तं संप्रज्वलितं मम प्राणोपरोधकम् ॥ ६ ॥

पुरुषः प्राह—

B 204 षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
आदीप्तमायसं चक्रं तव मूर्ध्नि भ्रमिष्यति ॥ ७ ॥ इति ॥

मैत्रकन्यक आह—भोः पुरुष, अस्ति कश्चिदन्योऽपीहागमिष्यतीति ? पुरुषः प्राह—य एवंविधकर्मकारी भविष्यतीति ॥

ततो मैत्रकन्यको दुःखवेदनाभिभूतः सत्त्वानामन्तिके कारुण्यं जनयित्वा तं पुरुषमाह—इच्छाम्यहं भोः पुरुष सर्वसत्त्वानामर्थे इदं चक्रं उपरि शिरसा धारयितुम् । मा कश्चिदन्योऽप्येवंविधकर्मकारी इहागच्छत्विति । इत्युक्तमात्रे मैत्रकन्यकस्य बोधिसत्त्वस्य तच्चक्रं सप्ततालमात्रं मूर्ध्नि उद्गम्याकाशे स्थितम् । स च कालं कृत्वा तुषिते देवनिकाये उपपन्नः ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन मैत्रकन्यक आसीत्, अहं सः । यन्मया संव्यवहरता माता कार्षापणैः प्रतिपादिता, तस्य मे कर्मणो विपाकेन चतुर्षु महानगरेषु महत्सुखमनुभूतम् । यतश्च मे मातुः परीत्तोऽपकारः कृतः, तस्य मे कर्मणः फलविपाकेनैवंविधं दुःखमनुभूतम् । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यन्मातापितृषु कारान् करिष्यामो नापकारान् । तदेते दोषा न भविष्यन्ति ये मैत्रकन्यकस्य । पृथग्जनस्य एष एव गुणगणो भविष्यति यस्तस्यैव देवपुत्रभूतस्य । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् । तत्कस्य हेतोः ? दुष्करकारकौ हि भिक्षवः पुत्रस्य मातापितरौ आप्यायकौ
B 205 पोषकौ संवर्धकौ स्तन्यस्य दातारौ, चित्रस्य जम्बूद्वीपस्य दर्शयितारौ । य एकेनांसेन पुत्रो मातरं द्वितीयेन पितरं पूर्णं वर्षशतं परिहरेत्, यद्वा अस्यां महापृथिव्यां मणयो मुक्ता वैडूर्यशङ्खशिलाप्रवालरजतजातरूपमश्मगर्भो मुसारगल्वो लोहितिका दक्षिणावर्तः, इत्येवंरूपे वा ऐश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेद्, न इयता पुत्रेण मातापित्रोः कृतं वा स्यादुपकृतं वा । यस्त्वसावश्राद्धं मातापितरं श्रद्धासंपदि समादापयति, विनयति, निवेशयति, प्रतिष्ठापयति, दुःशीलं शीलसंपदि, मत्सरिणं त्यागसंपदि, दुष्प्रज्ञं प्रज्ञासंपदि, समादापयति विनयति निवेशयति प्रतिष्ठापयति, इयता पुत्रेण मातापित्रोः कृतं वा स्यादुपकृतं वा ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

—•—

३७ शशः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 206 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। श्रावस्त्यां अन्यतमः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः कालान्तरेण पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारको जातः। स उन्नीतो वर्धितो महान् संवृत्तः। पिता चास्य धनक्षयमनुप्राप्तो भोगक्षयमनुप्राप्तः। स च विस्तीर्णसुहृत्संबन्धिबान्धवस्तं पुत्रं कालानुकालं ज्ञातिसकाशं प्रेषयति। स तैर्ज्ञातिभिस्तथा लालितो यथा तेषु प्रवृद्धस्नेहः संवृत्तः॥

यावदपरेण समयेन जेतवनं निर्गतः। अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। स प्रसादजातश्च भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। तस्मै भगवता संसारवैराग्यिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा संसारे दोषदर्शी निर्वाणे गुणदर्शी भूत्वा मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः। स एवं प्रव्रजितः सन् ज्ञातिभिः सह संसृष्टो विहरति। ततो भगवांस्तं गृहि- B 207 संसर्गान्निवार्य अरण्ये नियोजयते। स तत्र नाभिरमते। यावद्भगवांस्तं त्रिरपि गृहिसंसर्गान्निवारयति—वत्स अनेकदोषदुष्टोऽयं गृहिसंसर्गः। सन्ति चक्षुर्विज्ञेयानि रूपाणि इष्टानि कान्तानि प्रियाणि मनापानि कामोपसंहितानि रञ्जनीयानि। श्रोत्रविज्ञेयाः शब्दाः, घ्राणविज्ञेया गन्धाः, जिह्वाविज्ञेया रसाः, कायविज्ञेयानि स्प्रष्टव्यानि, मनोविज्ञेया धर्माः इष्टाः कान्ताः प्रिया मनापाः कामोपसंहिता रञ्जनीयाः कण्टकभूताः। अनेकपर्यायेण चास्य अरण्यगुणाः संवर्णिताः, यत्र स्थितस्य कुशलानां धर्माणां वृद्धिर्भवति। यावत्तेन कुलपुत्रेण भगवन्तं कल्याणमित्रमागम्य अरण्यवासेन[1] वसता युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेनेदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोषो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविप्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः। स पूर्वनिवासमनुस्मृत्य भगवतोऽस्यातिदुष्कराणि दृष्ट्वा भगवन्तमुपसंक्रम्य सगौरवः स्तौति मानयति च॥

---

1 Speyer suggests अरण्यवासे for °वासेन.

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—पश्य भदन्त, यावदयं कुलपुत्रो भगवता यावन्निरपि ग्रामान्तान्निवार्य अरण्ये नियोजितः, यावदर्हत्त्वे
B 208 प्रतिष्ठापित इति। भगवानाह—किमत्र भिक्षव आश्चर्यं यदिदानीं मया विगतरागेण विगतद्वेषेण विगतमोहेन परिमुक्तेन जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैः सर्वज्ञेन सर्वाकारज्ञेन सर्वज्ञानज्ञेयवशिप्राप्तेन अयं कुलपुत्रो यावन्निरपि ग्रामान्तान्निवार्य अरण्ये नियोजितः, यावदर्हत्त्वे प्रतिष्ठापितः। यत्तु मयातीतेऽध्वनि सरागेण सद्वेषेण समोहेनापरिमुक्तेन जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैरयं कुलपुत्रः स्वजीवितपरित्यागेन ग्रामान्तान्निवार्यारण्यवासे नियुक्तः। तच्छृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि अन्यतरस्मिन् गिरिकन्दरे प्रस्रवणपुष्पफलकन्दसंपन्ने ऋषिः प्रतिवसति कष्टतपाः फलमूलाम्बुभक्षोऽजिनवल्कलवासी अग्निहोत्रिकः। तस्य च ऋषेः शशो वयस्यो मानुषप्रलापी। स दिवसानुदिवसं त्रिर्ऋषिसमीपमुपसंक्रामति। उपसंक्रम्याभिवादनं कृत्वा विविधाभिः कथाभिः संमोदते। तावेवं प्रवृद्धस्नेहौ पितापुत्रवदवस्थितौ। यावत्कालान्तरेण महत्यनावृष्टिः प्रादुर्भूता, यया नद्युदपानान्यल्पसलिलानि संवृत्तानि, पुष्पफलवियुक्ताश्च पादपाः। ततः स ऋषिस्तत्राश्रमपदे उपभोगविरहान्नाभिरमते। सोऽजिनचीरवल्कलान्यभिसंक्षेप्तुमारब्धः ॥

B 209 अथ शशस्तं तथा प्रवृत्तं दृष्ट्वा पृष्टवान्—महर्षे क्व गमिष्यसीति। ऋषिराह—ग्रामान्तमेव गमिष्यामि, तत्र पक्वभैक्षेण यापयिष्यामीति। ततः स ऋषिवचनमुपश्रुत्य जातसंतापो मातापितृवियोगमिव मन्यमानः पादयोर्निपत्य तमृषिमुवाच—मा मां परित्यज। अपि च अनेकदोषसंकुलो गृहवासोऽनेकगुणसंपन्नश्चारण्यवास इति। स बहुप्युच्यमानो न निवर्तते। ततः स शशेनोच्यते—यद्यवश्यं गन्तव्यम्, किं नु अद्येह तावत्प्रतीक्षस्व, श्वो यथाभिप्रेतं यास्यसीति। ततस्तस्य ऋषेरेतदभवत्—नियतमयं मामाहारजातेनोपनिमन्त्रयितुकामः। यस्मादिमे तिर्यग्योनिगताः प्राणिनः संचयपरा इति। तेन तस्य प्रतिज्ञातम् ॥

अथ कृताह्निकमाहारकाले शश उपसंक्रम्य तमृषिं प्रदक्षिणीकृत्य क्षमयितुमारब्धः—क्षमस्व मम महर्षे यन्मया ऊहापोहविरहितेन तिर्यग्योनावुपपन्नेन तव किंचिदपकृतं स्यात्। इत्युक्त्वा सहसोज्ज्वल्याग्नौ प्रपतितः। ततः स ऋषिर्जातसंवेगो बाष्पदुर्दिनमुखः प्रियैकपुत्रकमिवोपगुह्योवाच—वत्स किमिदमारब्धमिति। शश उवाच—महर्षे अरण्यप्रियतया मदीयेन मांसेनाहोरात्रं यापयिष्यसि। किं च—

B 210 न सन्ति मुद्गा न तिला न तण्डुला वने विवृद्धस्य शशस्य केचन।
शरीरमेतत्त्वनलाभिसंस्कृतं ममोपयोज्याद्य तपोवने वस ॥ १ ॥ इति ॥

---

१ Mss. ग्रामान्तं निवार्य which is not bad as Speyer supposes. २ Speyer ग्रामान्तमवगमि. ३ Speyer रिषिः, for ऋषिः a kind of Prakritism. ४ Speyer उपपद. ५ Jātakamālā VI. 29.

ततः स ऋषिः शशवचनमुपश्रुत्य जातसंवेग उवाच—यद्येवं तव प्रियतया काममिहैव जीवितं परित्यक्ष्यामि, न त्वं ग्रामान्तमवतरिष्यामीति । श्रुत्वैतद्वचनं शशः प्रीतमनाः संवृत्तः । ऊर्ध्वमुखश्च गगनतलमभिवीक्ष्य याचितुं प्रवृत्तः । आह च—

अरण्ये मे समागम्य विवेके रमते मनः ।
अनेन सत्यवाक्येन माहेन्द्रं देव वर्ष नु ॥ २ ॥

इत्युक्तमात्रे बोधिसत्त्वानुभावेन माहेन्द्रभवनमाकम्पितम् । देवतानां चाधस्ताज्ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—किं कृतमिति । पश्यन्ति बोधिसत्त्वानुभावादिति । यावच्छक्रेण देवेन्द्रेण माहेन्द्रवर्षं सृष्टं येन तदाश्रमपदं पुनरपि तृणगुल्मौषधिपुष्पफलसमृद्धं संवृत्तम् ॥

ततस्तेन ऋषिणा शशं कल्याणमित्रमागम्य तत्र वसता पञ्चाभिज्ञाः साक्षात्कृताः । ततः स ऋषिः शशमुवाच—भोः शश, तेन दुष्करेण व्यवसायेन कारुण्यभावाच्च किं प्रार्थयसे इति । तेनोक्तम्—अन्धे लोके अनायके अपरिणायके बुद्धो भूयासमतीर्णानां सत्त्वानां तारयिता, अमुक्तानां मोचयिता, अनाश्वस्तानामाश्वासयिता, अपरिनिर्वृतानां परिनिर्वापयितेति । ततः स ऋषिरिदं वचनमुपश्रुत्य शशमब्रवीत्—यदा त्वं बुद्धो भवेथाः, अस्माक- B 211
मपि समन्वाहरेथा इति । शश उवाच—एवमस्त्विति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन शश आसीत्, अहं सः । ऋषिरेष एव कुलपुत्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यत्कल्याणमित्रा विहरिष्यामः कल्याणसहायाः कल्याणसंपर्काः, न पापमित्रा न पापसहाया न पापसंपर्काः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

अथायुष्मानानन्दो भगवन्तमिदमवोचत्—इह मम भदन्त एकाकिनो रहोगतस्य प्रतिसंलीनस्यैवं चेतसि चेतःपरिवितर्क उदपादि—उपार्धमिदं ब्रह्मचर्यस्य यदुत कल्याणमित्रता कल्याणसहायता कल्याणसंपर्कः, न पापमित्रता न पापसहायता न पापसंपर्कः इति । भगवानाह—मा त्वमानन्द एवं वोचः—उपार्धमिदं ब्रह्मचर्यस्य यदुत कल्याणमित्रता कल्याणसहायता कल्याणसंपर्कः, न पापमित्रता न पापसहायता न पापसंपर्क इति । सकलमिदमानन्द केवलं परिपूर्णं परिशुद्धं पर्यवदातं ब्रह्मचर्यं यदुत कल्याणमित्रता कल्याणसहायता कल्याणसंपर्कः, न पापमित्रता न पापसहायता न पापसंपर्कः तत्कस्य हेतोः ? मां ह्यानन्द कल्याणमित्रमागम्य जातिधर्माणः सत्त्वा जातिधर्मतया परिमुच्यन्ते, जराव्याधिशोकमरणपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासधर्माणः सत्त्वा उपायासधर्मतायाः परिमुच्यन्ते । B 212
तदनेनैव ते आनन्द पर्यायेण वेदितव्यं यत्सकलमिदं केवलं परिपूर्णं परिशुद्धं पर्यवदातं ब्रह्मचर्यं यदुत कल्याणमित्रता कल्याणसहायता कल्याणसंपर्कः, न पापमित्रता न पापसहायता न पापसंपर्कः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते आयुष्मानानन्दोऽन्ये च भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

१ Mss. परिपच्यन्ते for °मुच्यन्ते.

३८ धर्मगवेषी।

B 213 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। आचरितमेतदनाथपिण्डदस्य गृहपतेः—कल्यमेवोत्थाय भगवतो दर्शनायोपसंक्रम्य जेतवनं स्वयं संमार्ष्टुम्। अथान्यतमेन कालेन अनाथपिण्डदस्य गृहपतेः कश्चिद्व्याक्षेपः समुत्पन्नः। ततो भगवान् पुण्यकामानां सत्त्वानां पुण्यतीर्थोपदर्शनार्थं स्वयमेव संमार्जनीं गृहीत्वा जेतवनं संमार्ष्टुं प्रवृत्तः। भगवन्तं दृष्ट्वा महाश्रावका अपि शारद्वतीपुत्रमौद्गल्यायनकाश्यपनन्देरेवतप्रभृतयः संमार्ष्टुं प्रवृत्ताः। ततो जेतवनं सह श्रावकैः संमृज्य उपस्थानशालां प्रविश्य पुरस्ताद्भिक्षुसंघस्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः। निषद्य भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म—पञ्चेमे B 214 भिक्षव आनुशंसाः संमार्जने। कतमे पञ्च? आत्मनश्चित्तं प्रसीदति। परस्य चित्तं प्रसीदति। देवतानां मनसो भवति प्रासादिकम्। संवर्तनीयं कुशलमूलमुपचिनोति। कायस्य च भेदात्सुगतौ स्वर्गलोके देवेषूपपद्यते। इति पञ्चानुशंसाः संमार्जने॥

ततश्चतस्रः पर्षदो भगवतः सकाशात्संमार्जनस्येति पञ्चानुशंसानुपश्रुत्य प्रसादजाताः प्रीतिसौमनस्यप्रसन्नचित्ताः स्वस्वासनादुत्थाय येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तमेतदूचुः—वयं भगवन् भगवत उपस्थापकाः सर्वं जेतवनं सदा संमार्ष्टुमिच्छामः। अस्माकमनुग्रहं कुरु। ततो भगवांस्तासां तूष्णीभावेनाधिवासयति। ततस्ताश्चतस्रः पर्षदो भगवतोऽधिवासनां विदित्वा संमार्जनीर्गृहीत्वा सर्वं जेतवनं संमार्ष्टुं प्रवृत्ताः। सर्वं जेतवनं चाराममार्गपर्यन्तं संमार्ज्य भगवतो धर्मदेशनां श्रोतुमेकान्ते निषण्णा आदरयुक्ताः॥

B 215 अनाथपिण्डदो गृहपतिरपि तं प्रदेशमनुप्राप्तः। तेन श्रुतं यथा भगवता महाश्रावकसहायेन स्वयमेव जेतवनं संमृष्टमिति। भगवता देशितान् संमार्जने पञ्चानुशंसानुपश्रुत्य विप्रतिसारीभूतः इति चिन्तितवान्—किमर्थं मया भगवतो विहारे तस्मिन् पुण्यक्षेत्रे, यत्राद्यैवारोपितं बीजमद्यैव फलं संपद्यते, स्वल्पस्यानन्तं फलं निष्पद्यते, तथागतसंमुखीभूते सर्वश्रावकसंवासितेऽतीव मनोरमभूमौ सर्वदेवासुरमनुष्यगन्धर्वगरुडकिन्नरमहोरगाणां मनोहर्षास्पदीभूते सर्वभूतप्रेतपिशाचयक्षराक्षसनारकद्रोहिणामनवकाशे सर्वमारमारकायिकानां देवानां मनुष्याणां चानवकाशभुवने भग्नाभिमवजाते रागद्वेषमोहमात्सर्येर्ष्यामानदुष्टसत्त्वानामविदितप्रभावे पापाचाराणामलब्धागमने पापमित्रहस्तगतानाममनापजाते श्रद्धाविगतानां त्यागधर्मB 216 रहितानामदृष्टचिन्तितभवने दुःशीलानां कुवृत्तिनाममनोगमने दयाभयविरहितानां क्रोधिनां परमारिणामलब्धशरणे वीर्यहीनकुसीदवृत्तिनां सकारम्भारम्भिणां सुदूरीभूते ध्यानच्युतमुनिरस्मृतीनां कुदृष्टिचारिणां कुमार्गप्रस्थितानामन्धकारीभूते दुष्प्रज्ञानां कुबुद्धिलब्धज्ञानान्तरागामप्राप्तागमनभावे दानृणामतीव मनोरथश्रते सुदीन्द्रयुक्तानां मनोरमवासे क्षमाचारिणा-

पर्यटितः । न च तत्सुभाषितमुपलभ्यते । यावत्परिपूर्णैर्नवभिर्मासैः सा देवी प्रसूता । दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको गौरः कनकवर्णश्छत्राकारशिराः प्रलम्बबाहुर्विस्तीर्णललाट उच्चघोषः संगतभ्रूस्तुङ्गनासः सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेतः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवत्वस्य दारकस्य नामेति । अमात्या ऊचुः—यस्मादयं दारकोऽजात एव सुभाषितं गवेषते, तस्माद्भवतु दारकस्य सुभाषितगवेषी नामेति । तस्य सुभाषितगवेषीति नाम कृतम् । सुभाषितगवेषी दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् । यदा क्रमेण महान् संवृत्तस्तदापि सुभाषितं गवेषते, न च लभते ॥

B 220 स पितुरत्ययाद्राज्ये प्रतिष्ठितः अमात्यानाज्ञापयति—सुभाषितेन मे श्रामण्यः प्रयोजनम् । गवेषत मे सुभाषितमिति । ततस्तैरमात्यैः सकले जम्बूद्वीपे हिरण्यपिटकाः सुभाषितहेतोः संदर्शिताः । न च सुभाषितमासादितम् । ततस्ते राज्ञे निवेदितवन्तः । ततः स राजा सुभाषितश्रवणहेतोरुत्कण्ठति परितप्यति ॥

शक्रस्य देवानामिन्द्रस्याधस्ताज्ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते । स पश्यति राजानं सुभाषितश्रवणहेतोर्विहन्यमानम् । तस्यैतदभवत्—यन्न्वहं राजानं मीमांसेयेति । अथ शक्रो देवानामिन्द्रो गुह्यकरूपधारी भूत्वा विकृतकरचरणनयनो राज्ञः पुरस्ताद्गाथां भाषते—

धर्मं चरेत्सुचरितं नैनं दुश्चरितं चरेत् ।
धर्मचारी सुखं शेते अस्मिंल्लोके परत्र च ॥ १ ॥ इति ॥

ततो राजा विस्मितोत्फुल्लदृष्टिस्तं गुह्यकमुवाच—ब्रूहि ब्रूहि गुह्यक तावन्मे, एतां गाथां श्रोष्यामीति । ततो गुह्यको राजानमुवाच—यदि यद्ब्रवीमि तन्मे करिष्यसि, एवमहमपि यदाज्ञापयिष्यसि, तत्करिष्यामीति । राजोवाच—किमाज्ञापयिष्यसीति । गुह्यक उवाच—सप्ताहोरात्राणि खदिरकाष्ठैरग्निखदां तापयित्वा तत्र यथात्मानमुत्स्रक्ष्यसि, ततस्तेऽहं पुनर्गाथां वक्ष्यामीति । तच्छ्रवणाच्च राजा प्रीतमनास्तं गुह्यकमुवाच—एवमस्त्विति । ततो राज्ञा गुह्यकं प्रतिज्ञायां

B 221 प्रतिष्ठाप्य सर्वविजिते घण्टावघोषणं कारितम्—सप्तमे दिवसे राजा सुभाषितश्रवणहेतोरग्निखदायामात्मानमुत्स्रक्ष्यति । येऽद्भुतानि द्रष्टुकामाः, आगच्छन्त्विति ॥

ततोऽनेकेषु प्राणिशतसहस्रेषु संनिपतितेषु गगनतले चानेकेषु देवताशतसहस्रेषु संनिपतितेषु बोधिसत्त्वस्याध्याशयशुद्धितामवगम्याद्भुतभावं च द्रष्टुमिहावतस्थुः । अथ ‖ गुह्यक आकारमुपलभ्य बोधिसत्त्वमुवाच—क्रियतां महाराज यथाप्रतिज्ञातमिति । ततो राजा ज्येष्ठं पुत्रं राज्येऽभिषिच्य अमात्यान्नैगमजानपदांश्च क्षमयित्वा जनकायं चाश्वास्य अग्निखदासमीपमुपगम्य इमां गाथां भाषते—

यावन्मे पञ्च पुराणशतानि नानुप्रयच्छसीति । ततो भगवान् कर्मणामविप्रणाशसंदर्शनार्थमदत्तादानवैरमण्यार्थं च इन्द्रकील इव तस्मिन् प्रदेशे स्थितः ॥

एष च शब्दः श्रावस्त्यां समन्ततो विसृतः—यथा किल भगवान् राजमार्गेऽन्यतमेन ब्राह्मणेन पञ्चानां पुराणशतानामर्थे विधारित इति । ततो राजा प्रसेनजित्कौशलः सह-
B 224 श्रवणादेवामात्यगणपरिवृतो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवन्तमिदमवोचत्—गच्छतु भगवान्, अहं प्रदास्यामीति । भगवानाह—न महाराज त्वयैतानि दातव्यानि, अपि त्वन्येनैतानि दातव्यानीति । तथा विशाखा मृगारमाता ऋषिदत्तपुराणौ स्थपती शक्रब्रह्मादयो देवा वैश्रवणप्रभृतयश्चत्वारो लोकपाला हिरण्यसुवर्णमुपादाय भगवन्तमुपसृताः । तानपि भगवानुवाच—न भवद्भिरेतानि दातव्यानीति । यावदनाथपिण्डदेन गृहपतिना श्रुतम् । स हिरण्यसुवर्णस्य हेलां पूरयित्वा उपरि पञ्च पुराणशतानि दत्त्वा भगवन्तमुपगतः—भगवन्, इदं प्रतिगृह्यतामिति । भगवानाह—गृहपते त्वया एतानि दातव्यानि । दीयतां ब्राह्मणायेति । ततोऽनाथपिण्डदेन गृहपतिना सा सुवर्णहेला ब्राह्मणाय दत्ता ॥

भिक्षवः संशयजाताः सराजिका च पर्षत् सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—पश्य भगवन् यावदनेन ब्राह्मणेन भगवान् विधारितोऽनाथपिण्डदेन च कार्षापणा दत्ताः । कुतश्च प्रभृति भगवानस्मै धारयत इति । भगवानाह—इच्छथ यूयं भिक्षवः श्रोतुम्[1] एवं भदन्त । तेन हि भिक्षवः शृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये—तथा-
B 225 गतेनैतानि भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु अवश्यंभावीनि कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः बाह्ये पृथिवीधातौ, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यां ब्रह्मदत्तो नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं चाकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नमखिलमकण्टकम् । एकपुत्रकमिव राज्यं पालयति । तस्य ज्येष्ठः कुमारो युवराजः । सोऽपरेण समयेन वसन्तकालसमये संपुष्पितेषु पादपेषु हंसक्रौञ्चमयूरशुकसारिकाकोकिलजीवंजीवकनिर्घोषिते वनषण्डेऽमात्यपुत्रपरिवृतः क्रीडति रमते । यस्योऽमात्यपुत्रः वयस्यः । सोऽपरेण पुरुषेण सार्धमक्षैः क्रीडितवान् । ततोऽमात्यपुत्रस्तेन पुरुषेण पञ्च पुराणशतानि निर्जितः । राजपुत्रश्चास्य प्रतिभूरवस्थितः[2] ।
B 226 * * * * तेन मे संसारेऽनन्तं भोगव्यसनमनुभूतम् ।

---

1 The portion beginning with तथागतेन up to खलु देहिनाम्, is out of place here, and, as Speyer remarks, is missing in one of the Mss. used by him. 2 There seems to be a long gap as the tale ends abruptly.

परिनिर्वाणं भविष्यति । अस्ति च मे धर्मेषु काङ्क्षायितत्वम्, आशा च मे संतिष्ठते, प्रति-
बलश्च मे स भगवान् गौतमस्तत्काङ्क्षायितत्वं प्रतिविनोदयितुम् । सचेद्भगवत आनन्द अस्त्य-
गुरु, प्रविशेम, पृच्छेम कंचिदेव प्रदेशम्, सचेदवकाशं कुर्यात्प्रश्नव्याकरणाय । आनन्द
आह—अलं सुभद्र । मा भगवन्तं विहेठय । श्रान्तकायो भगवान्, क्लान्तकायः सुगतः ।
द्विरपि त्रिरपि सुभद्रः परिव्राजक आयुष्मन्तमानन्दमिदमवोचत्—श्रुतं भो आनन्द अद्य
श्रमणस्य गौतमस्य रात्र्या मध्यमे यामे अनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वाणं भविष्यति,
अस्ति च मे धर्मेषु काङ्क्षायितत्वम् । आशा च मे संतिष्ठते । प्रतिबलश्च मे स भगवान्
B 230 गौतमस्तत्काङ्क्षायितत्वं प्रतिविनोदयितुम् । सचेद्भगवत आनन्द, अस्त्यगुरु, प्रविशेम, पृच्छेम
कंचिदेव प्रदेशम्, सचेदवकाशं कुर्यात्प्रश्नस्य व्याकरणाय । द्विरपि त्रिरपि आयुष्मानानन्दः
सुभद्रं परिव्राजकमिदमवोचत्—अलं सुभद्र, मा तथागतं विहेठय, श्रान्तकायो भगवान्,
क्लान्तकायः सुगतः । पुनरपि सुभद्रः परिव्राजक आयुष्मन्तमानन्दमिदमवोचत्—श्रुतं भो
आनन्द पुराणानां परिव्राजकानामन्तिकाज्जीर्णानां वृद्धानां महतां चरणाचार्याणाम्—
कदाचित्कर्हिचित्तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा लोके उत्पद्यन्ते, तद्यथा उदुम्बरं पुष्पम् । तस्य
चाद्य भगवतो गौतमस्य रात्र्या मध्यमे यामे अनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वाणं भविष्यति ।
अस्ति च मे धर्मेषु काङ्क्षायितत्वम् । आशा च मे संतिष्ठते । प्रतिबलश्च मे स भगवान् गौतम-
स्तत्काङ्क्षायितत्वं प्रतिविनोदयितुम् । सचेद्भगवत आनन्द, अस्त्यगुरु, प्रविशेम, पृच्छेम कंचि-
देव प्रदेशम्, सचेदवकाशं कुर्यात्प्रश्नव्याकरणाय । पुनरप्यायुष्मानन्दः सुभद्रं परिव्राजक-
मिदमवोचत्—अलं सुभद्र, मा तथागतं विहेठय, श्रान्तकायो भगवान्, क्लान्तकायः सुगतः ॥

इमां च पुनरायुष्मत आनन्दस्य सुभद्रेण परिव्राजकेन सार्धमन्तराकथां विप्रकृता-
मश्रौषीद्भगवान् दिव्येन श्रोत्रेण विशुद्धेनातिक्रान्तमानुषेण । श्रुत्वा च पुनरायुष्मन्तमानन्द-
मिदमवोचत्—अलमानन्द । मा सुभद्रं परिव्राजकं वारय । प्रविशतु, पृच्छतु यद्यदेवा-
काङ्क्षति । अयं मे पश्चिमो भविष्यति अन्यतीर्थिकपरिव्राजकैः सार्धमन्तराकथासमुदाहारः ।
अयं च मे चरमो भविष्यति साक्षाच्छ्रावकाणामेहिभिक्षुकया प्रव्रजितानाम्, यदुत सुभद्रः
परिव्राजकः । अथ सुभद्रः परिव्राजको भगवता कृतावकाशो हृष्टतुष्टप्रमुदित उदग्रप्रीति-
B 231 सौमनस्यजातो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवता सार्धं संमुखं संमोदनीं
संरञ्जनीं विविधां कथां व्यतिसार्यैकान्ते निषण्णः । एकान्तनिषण्णः सुभद्रः परिव्राजको
भगवन्तमिदमवोचत्—यानीमानि भो गौतम पृथग्लोके तीर्थ्यायतनानि—तद्यथा पूरणः
काश्यपः, मस्करी गोशालीपुत्रः, सञ्जयी वैरट्टीपुत्रः, अजितः केशकम्बलः, ककुदः
कात्यायनः, निर्ग्रन्थो ज्ञातिपुत्रः, प्रत्यज्ञासिषुर्मे स्वां स्वां प्रतिज्ञां * * * * ॥

अथ भगवांस्तस्यां वेलायां गाथां भाषते—

एकान्नत्रिंशको वयसा सुभद्र
यत्प्राव्रजं किंकुशलं गवेषी ।
पञ्चाशद्वर्षाणि समाधिकानि
यस्मादहं प्रव्रजितः सुभद्र ॥ १ ॥

निष्ठे निर्वाणे प्रतिष्ठापितः । यत्तु मया अतीतेऽध्वनि सरागेण सद्वेषेण समोहेनापरिमुक्तेन जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैरूहापोहविरहितेन तिर्यग्योनावुपपन्नेन स्वजीवितपरित्यागेन सुभद्रः परित्रातः, कौशीनागराश्च मल्लाः । तच्छृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि अन्यतरस्यां पर्वतदर्यां मृगयूथपः प्रतिवसति अनेकमृगसहस्रपरिवारः पण्डितो व्यक्तो मेधावी । तच्च मृगयूथं लुब्धकेन विचार्य राज्ञे निवेदितम् । ततो राज्ञा चतुरङ्गेण बलकायेन निर्गत्य तन्मृगयूथं सर्वं संकटीकृतम् । ततो यूथपतेरेतदभवत्—यद्यहमिदानीमिमान्न रक्षिष्यामि, अद्यैव ते सर्वे न भविष्यन्तीति । ततो यूथपतिः B 236 समन्ततो व्यवलोकयितुमारब्धः—कतमेन प्रदेशेनास्य मृगकुलस्य निःसरणं स्यादिति । स पश्यति तस्यां पर्वतदर्यां नदीं वहमानाम् । सा च नदी अहार्यहारिणी शीघ्रस्रोताः, ते च मृगा दुर्बलाः । ततो यूथपतिः सहसा तां नदीमवतीर्य मध्ये स्थित्वा शब्दमुदीरयति—आगच्छन्तु भवन्तः, एतस्मात्कूलादुत्प्लुत्य मम पृष्ठे पादान् स्थापयित्वा परत्र कूले प्रतितिष्ठत । अनेनोपायेन जीवितं वः पश्यामि, अतोऽन्यथा मरणमिति । ततस्तैर्मृगैस्तथैव कृतम् । अथ तस्य पृष्ठे क्षुरनिपातात्त्वक् छिन्ना । मांसरुधिरास्थिसिराशिर्व्यवस्थितः । न चास्य व्यवसायो निवृत्तः तद्गतकारुण्यो मृगाणामन्तिके । ततः सर्वेषु लङ्घितेषु पृष्ठतोऽवलोकयितुं प्रवृत्तः—मा कश्चिदत्रालङ्घितं भविष्यतीति । स पश्यति मृगशावकमेकमलङ्घितम् । ततो यूथपतिश्छिद्यमानेषु मर्मसु मुच्यमानासु संधिषु इष्टजीवितमगणयित्वा कूलमुत्तीर्य मृगशावकं पृष्ठमधिरोह्य नदीमुत्तार्य कूले स्थापयित्वा तं मृगगणमुत्तीर्णं दृष्ट्वा मरणकाले प्रणिधिं कर्तुमारब्धः—यथा मे इमे मृगा अयं च मृगशावक इष्टेन जीवितेनाच्छादिताः, व्यसनात्परित्राताः, एवमप्यहमनागतेऽध्वनि अनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्य एतान् संसारवागुराया मोचयेयमिति ॥

B 237 भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन मृगपतिरासीद्, अहं सः । मृगा इमे कौशीनागरा मल्लाः । मृगशावकः अयमेव सुभद्रः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त सुभद्रेण कर्माणि कृतानि येन पश्चिमः साक्षाच्छ्रावकाणामिति । भगवानाह—सुभद्रेणैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि । न बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ ३ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि अस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । अथ भगवतः काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य

भागिनेयोऽशोको नाम्ना। स भगवत्सकाशे मोक्षार्थी प्रव्रजितः। स स्वाधीनं मोक्षं मन्यमानो B 238 न व्यायच्छते। यावद्दीर्घकालप्रकर्षेणाशोको जनपदे वर्षोषितः। भगवांश्च काश्यपः सम्यक्संबुद्धः सकलं बुद्धकार्यं कृत्वा इन्धनक्षयादिवाग्निः पश्चिमशयनोपगतः, अशोकश्च भिक्षुरशोकस्याधस्तात्प्रतिसंलीनो बभूव। अथ या देवता तस्मिन्नशोकवृक्षे व्युषिता, सा भगवतः काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य परिनिर्वाणं श्रुत्वा रोदितुं प्रवृत्ता। तस्या रुदन्त्या अश्रुबिन्दवोऽशोकस्य काये निपतितुं प्रवृत्ताः। अथाशोक ऊर्ध्वमुखस्तां देवतां रुदन्तीमाह—किमर्थं देवते रुद्यत इति। देवतोवाच—अद्य रात्र्या मध्यमे यामे भगवतः काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य परिनिर्वाणं भविष्यतीति। अथाशोको देवतावचनमुपश्रुत्य मर्मविद्ध इव प्रचलितवान्। सोऽपि करुणकरुणं रोदितुं प्रवृत्तः। ततो देवतया पृष्टः—किमर्थं रोदिषीति। अशोक उवाच—गुरुवियोगाज्ज्ञातिवियोगाच्च। काश्यपो मे सम्यक्संबुद्धो मातुलः। सोऽहं विस्रब्धविहारी न व्यायतवान्। दूरे चासौ। अहं च पृथग्जनः। अपकृष्टत्वादध्वनो न शक्ष्यामि विशेषमधिगन्तुमिति। देवतोवाच—यदि पुनरहं भवन्तं भगवत्सकाशमुपनयेयम्, किं शक्यमिति। अशोक उवाच—तथा हि मे बुद्धिः परिपक्वा, यथा सहदर्शनादेव भगवतः B 239 शक्ष्यामि विशेषमधिगन्तुमिति। ततो देवतया अशोको भगवत्सकाशमृद्ध्यनुभावान्नीतः। तस्य भगवद्दर्शनात्प्रसाद उत्पन्नः। प्रसादजातस्य च भगवता काश्यपेन तथाविधो धर्मो देशितः यच्छ्रुत्वाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। प्रथमतरं चायुष्मानशोकः परिनिर्वृतः, ततो भगवान् काश्यपः सम्यक्संबुद्धः॥

ततः सा देवता आयुष्मतोऽशोकस्य परिनिर्वाणं दृष्ट्वा प्रीतिमुत्पादयामास। चिन्तयति च—यः कश्चिदनेनायुष्मता विशेषोऽधिगतः, सर्वः स मामागम्य। एवमप्यहमनागतेऽध्वनि योऽसौ भगवता काश्यपेन उत्तरो नाम माणवो व्याकृतः—भविष्यसि त्वं माणव वर्षशतायुषि प्रजायां शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इति, तस्याहमेव पश्चिमशयनोपगतस्य चरमः साक्षाच्छ्रावकाणामेहिभिक्षुकया प्रव्रजितानां भवेयम्, पूर्वतरं च भगवतः परिनिर्वापयेयम्, ततो भगवान् शाक्यमुनिरिति॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो यासौ देवता, अयं स सुभद्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यत्कल्याणमित्रा विहरिष्यामः कल्याणसहायाः कल्याणसंपर्काः न पापमित्रा न पापसहाया न पापसंपर्काः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

अथायुष्मानानन्दो भगवन्तमिदमवोचत्—इह मम भदन्त एकाकिनो रहोगतस्य प्रति- B 240 संलीनस्य एवं चेतसि चेतःपरिवितर्क उदपादि—उपार्धमिदं ब्रह्मचर्यस्य यदुत कल्याणमित्रता कल्याणसहायता कल्याणसंपर्कः, न पापमित्रता न पापसहायता न पापसंपर्क इति। मा त्वमानन्द एवं वोचः—उपार्धमिदं ब्रह्मचर्यस्य यदुत कल्याणमित्रता कल्याणसहायता कल्याणसंपर्कः, न पापमित्रता न पापसहायता न पापसंपर्क इति। सकलमिदमानन्द

केवलं परिपूर्णं परिशुद्धं पर्यवदातं ब्रह्मचर्यं यदुत कल्याणमित्रता कल्याणसहायता कल्याणसंपर्कः, न पापमित्रता न पापसहायता न पापसंपर्कः । तत्कस्य हेतोः ? मां ह्यानन्द कल्याणमित्रमागम्य जातिधर्माणः सत्त्वा जातिधर्मतायाः परिमुच्यन्ते, जराव्याधिशोकमरणपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासधर्माणः सत्त्वा उपायासधर्मतायाः परिमुच्यन्ते । तदनेनैव ते आनन्द पर्यायेण वेदितव्यं यत्सकलमिदं केवलं परिपूर्णं परिशुद्धं पर्यवदातं ब्रह्मचर्यम्, यदुत कल्याणमित्रता कल्याणसहायता कल्याणसंपर्कः, न पापसहायता न पापमित्रता न पापसंपर्कः । इत्येवं ते आनन्द शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥



पञ्चमो वर्गः ।

तस्योदानम्—

गुडशाला च भक्तं च तोयं वर्चघटेन च ।
कोलिको ह्युत्तरश्चापि जात्यन्धः श्रेष्ठिरेव च ।
पुत्रो जाम्बालकश्चैव वर्गो भवति समुदितः ॥

४१ गुडशाला ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे । यदा भगवता अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धा, तदायुष्मद्भ्यां शारिपुत्रमौद्गल्यायनाभ्यामियं प्रतिज्ञा कृता—न तावत्पिण्डकं परिभोक्ष्यामहे, यावन्नरकतिर्यक्प्रेतेभ्य एकसत्त्वमपि न मोचयाव इति । ततस्तावायुष्मन्तौ कालेन कालं कदाचिन्नरकचारिकां चरतः, कदाचित्तिर्यक्प्रेतचारिकां चरतः । तौ तत्र सत्त्वानां विविधयातनाभ्याहतानामसत्प्रलापं दृष्ट्वा तानागत्य चतसृणां पर्षदामारोचयतः । तेऽपि श्रुत्वा संवेगमापद्यन्ते । ततस्तौ तदधिष्ठानं तथाविधां धर्मदेशनां कुरुतः, यया अनेके सत्त्वा विशेषमधिगच्छन्ति, धर्मश्रवणकथायाश्च भाजनीभवन्ति ॥ B 241 B 242

यावदपरेण समयेनायुष्मान् महामौद्गल्यायनः प्रेतचारिकां चरन्नद्राक्षीत्प्रेतं पर्वतकूटप्रख्यं समुद्रसदृशकुक्षिं सूचीछिद्रोपममुखं स्वकेशसंछन्नमादीप्तं सम्यक्प्रज्वलितमेकज्वालीभूतं ध्मायन्तमार्तस्वरं क्रन्दन्तम्, दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनामनुभवन्तम्, येन येनोच्चाप्रस्रावभूमिस्तेन तेनाभ्याहिण्डमानं तदपि कृच्छ्रेणासादयन्तम् । ततः स्थविरः प्रेतं पप्रच्छ—किं ते भोः कर्म कृतं येनैवंविधां दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां वेदयस इति । प्रेत आह—आदित्ये हि समुद्गते न दीपेन प्रयोजनम् । भगवन्तमेनमर्थं परिपृच्छ । स ते अस्माकीनां कर्मप्लोतिं व्याकरिष्यतीति । अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः ॥

तेन खलु समयेन भगवान् प्रतिसंलयनाद्व्युत्थाय चतसृणां पर्षदां मधुरमधुरं धर्मं देशयति, क्षौद्रं मधिग्मनेडकम् । अनेकशता च पर्षद् भगवतः सकाशान्मधुरमधुरं धर्मं श्रगोत्सनिश्चलनैरिन्द्रियैः । ततो बुद्धा भगवन्तः पूर्वालापिनः प्रियालापिनः एहीति स्वागत- B 243

1 The word रुग्ण should be भुग्न as Speyer suggests. तदागत is not necessary; it should better be चारिकायां चरन्.

वादिनः स्मितपूर्वंगमाश्च । तत्र भगवानायुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमिदमवोचत्—एहि मौद्गल्यायन स्वागतं ते, कुतस्त्वमेतर्ह्यागच्छसीति । मौद्गल्यायन आह—आगच्छाम्यहं भदन्त प्रेतचारिकायाः । तत्राहं प्रेतमद्राक्षं सूचीछिद्रोपममुखं पर्वतोपमकुक्षिं स्वकेशसंछन्नं दुर्गन्धं परमदुर्गन्धम् । आह च—

विशुष्ककण्ठोष्ठपुटः सुदुःखितः प्रवृद्धशैलोपमचर्चिताश्रयः ।
स्वकेशसंछन्नमुखो दिगम्बरः सुसूक्ष्मसूचीसदृशाननः कृशः ॥ १ ॥

नग्नः स्वकेशसंछन्नो अस्थियन्त्रवदुच्छ्रितः ।
कपालपाणिर्घोरश्च क्रन्दन् समभिधावति ॥ २ ॥

बुभुक्षया पिपासया क्लान्तो व्यसनपीडितः ।
आर्तस्वरं क्रन्दमानो दुःखां वेदति वेदनाम् ।
किं तेन प्रकृतं पापं मर्त्यलोके सुदारुणम् ॥ ३ ॥ इति ॥

B 244 भगवानाह—पापकारी मौद्गल्यायन स प्रेतः । इच्छसि तस्य कर्मप्लोतिं श्रोतुम्? एवं भदन्त । तेन हि मौद्गल्यायन शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं मौद्गल्यायन राजगृहे नगरेऽन्यतरः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तस्य पञ्चमात्राणीक्षुशालशतानि, यत्र चेक्षुः पीड्यते । असति च बुद्धानामुत्पादे प्रत्येकबुद्धा लोक उत्पद्यन्ते हीनदीनानुकम्पकाः प्रान्तशयनासनभक्ता एकदक्षिणीया लोकस्य । यावदन्यतमः प्रत्येकबुद्धो हीनदीनानुकम्पी प्रान्तशयनासनसेवी । स पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय राजगृहं पिण्डाय प्राविक्षत् । स च भदन्तः क्षयव्याधिना स्पृष्टः । तस्य वैद्येनेक्षुरस उपदिष्टः । स श्रेष्ठिसकाशं यन्त्रशालामुपसंक्रान्तः । श्रेष्ठिना च स प्रत्येकबुद्धो दृष्टः कायप्रासादिकश्चित्तप्रासादिकश्च । दृष्ट्वा श्रेष्ठिना उक्तः—केनार्यस्य प्रयोजनमिति । प्रत्येकबुद्धः कथयति—गृहपते इक्षुरसेनेति । ततस्तेन गृहपतिना भृतकपुरुषस्याज्ञा दत्ता आर्यस्येक्षुरसं प्रयच्छेति । स च गृहपतिः केनचिदेव करणीयेन बहिर्यानाय संप्रस्थितः । अथ तस्य पुरुषस्य परकीये द्रव्ये मात्सर्यमुत्पन्नम्—यद्यहमस्य रसं दास्ये, पुनरप्येष आगमिष्यतीति । तेन अनिष्टगतिप्रपातनम्रेण सर्वाभिमतगतिद्वयनिराकरिष्णुना अत्यन्तदूरापगतेनार्यधर्मेभ्यः पापं चित्तमुत्पाद्य स प्रत्येकबुद्ध उक्तः—आहर भिक्षो पात्रम्, देहि, रसं ते दास्यामीति । असमन्वाहृत्य अर्ह-
B 245 त्प्रत्येकबुद्धानां ज्ञानदर्शनं न प्रवर्तत इति । हीनदीनानुकम्पितया मत्पुरुषोऽप्यस्यानुग्रहः कर्तव्य इति तत्पात्रमुपनामितम् । ततोऽसौ दुराचारो निर्घृणहृदयस्तद्गृहीत्वा प्रतिगुप्तं प्रदेशं गत्वा प्रस्रावेण पूरयित्वा उपरि इक्षुरसेनाच्छाद्य तस्मै प्रत्येकबुद्धायानुप्रददौ । तेन संलक्षितम् । चिन्तयति—बहुनेन तपस्विना पापं कृतमिति । स तदेकान्ते छोरयित्वा प्रक्रान्तः ॥

भगवानाह—किं मन्यसे मौद्गल्यायन योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन भृतकपुरुष आसीत्, अयं स प्रेतः । तस्य कर्मणो विपाकेन संसारेऽनन्तं दुःखमनुभूतवान् । इदानीमपि प्रेतभूतः प्रकृष्टतरं दुःखमनुभवति । तस्मात्तर्हि ते मौद्गल्यायन मात्सर्यप्रहाणाय व्यायन्तव्यं यथा एवंविधा दोषा न स्युर्ये प्रेतस्य । इति हि मौद्गल्यायन एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि ते मौद्गल्यायन एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं ते मौद्गल्यायन शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमना आयुष्मान् महामौद्गल्यायनोऽन्ये च देवासुरगरुडादयो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

—×—

४२ भक्तम् ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 246
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेनायुष्मान् महामौद्गल्यायनः अन्यतरस्मिन् वृक्षमूले निषण्णो दिवाविहाराय । अश्रौषीदायुष्मान् महामौद्गल्यायनः प्रेत्याः शब्दमार्तस्वरं क्रन्दन्त्याः, दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां वेदयमानाया भक्तं मार्गन्त्याः—बुभुक्षितास्मि मार्षाः, पिपासितास्मि मार्षा इति । ततः स्थविरमहामौद्गल्यायनेन प्रेती दृष्टा पृष्टा च—किं ते पापं कृतं येनैवंविधानि दुःखान्यनुभविष्यसीति । प्रेती आह—आदित्ये हि समुद्गते न दीपेन प्रयोजनम् । भगवन्तमेतमर्थं पृच्छ, स ते अस्माकीनां धर्मस्थोर्ति व्याकरिष्यतीति । अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः ॥

तेन खलु पुनः समयेन भगवान् प्रतिसंलयनाद्व्युत्थाय चतसृणां पर्षदां मधुरमधुरं धर्मं देशयति क्षौद्रं मधिवानेडकम् । अनेकशता च पर्षद्भगवतः सकाशान्मधुरमधुरं धर्मं शृणोत्यनिञ्ज्यमानैरिन्द्रियैः । ततो बुद्धा भगवन्तः पूर्वालापिनः प्रियालापिनः एहीति स्वागतवादिनः स्मितपूर्वंगमाश्च । तत्र भगवानायुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमिदमवोचत्—एहि मौद्गल्या- B 247
यन, स्वागतं ते, कुतस्त्वमेतर्ह्यागच्छसीति । मौद्गल्यायन आह—आगच्छाम्यहं भदन्त प्रेतचारिकायाः । तत्राहं प्रेतीमद्राक्षं सूचीच्छिद्रोपममुखीं पर्वतोपमकुक्षिं सकेशसंछन्नां नग्नामार्तस्वरं क्रन्दन्तीं दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां वेदयमानाम् । आह च—

विशुष्ककण्ठोष्ठपुटा सुदुःखिता प्रवृद्धरोमोग्रमचर्मनाश्रया ।
सकेशसंछन्नमुखी दिगम्बरा सुसूक्ष्मसूचीसदृशानना कृशा ॥ १ ॥

नग्ना स्वकेशसंछन्ना अस्थियन्त्रवदुच्छ्रिता ।
कपालपाणिनी घोरा क्रन्दन्ती परिधावति ॥ २ ॥
बुभुक्षया पिपासयाक्रान्ता व्यसनपीडिता ।
आर्तस्वरं क्रन्दमाना दुःखां विन्दन्ति वेदनाम् ॥ ३ ॥
किं तया प्रकृतं पापं मर्त्यलोके सुदारुणम् ।
येन एवंविधं दुःखमनुभवति भयानकम् ॥ ४ ॥ इति ॥

भगवानाह—पापकारिणी मौद्गल्यायन सा प्रेती । इच्छसि तस्याः कर्मप्लोतिं श्रोतुम्? एवं भदन्त । तेन हि मौद्गल्यायन शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं मौद्गल्यायन अतीतेऽध्वनि विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम
सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः
B 243 शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने
मृगदावे । तस्यां च वाराणस्यामन्यतमा गृहपतिपत्नी मत्सरिणी कुटुकुञ्चिका आगृहीत-
परिष्कारा काकायापि बलिं न प्रदातुं व्यवस्यति, प्रागेवान्येषां याचकानाम् । सा श्रमण-
ब्राह्मणकृपणवनीपकान् दृष्ट्वा चित्तं प्रदूषयति । यावदन्यतरः पिण्डपातिकस्तस्या गृहं
प्रविष्टः । तस्यास्तं दृष्ट्वा मात्सर्यमुत्पन्नम् । चित्तं च प्रदूष्य इमां चिन्तामापेदे—यद्यहमस्य
सत्कारं करिष्यामि, पुनरप्येष आगमिष्यतीति । ततस्तया पापकारिण्या अनिष्टं परलोकभय-
मविगणय्य स भिक्षुरुपनिमन्त्र्य द्वारं बद्ध्वा भक्तच्छेदं कारितः । बहु च परिभाष्योक्तः—
इयं ते भिक्षो सत्क्रिया । मा पुनरिदं गृहं प्रवेक्ष्यसीति ॥

सा तेन मात्सर्येणासेवितेन भावितेन बहुलीकृतेन प्रेतेषूपपन्ना । एवंविधानि दुःखानि प्रत्यनुभवति । तस्मात्तर्हि मौद्गल्यायन मात्सर्यप्रहाणाय व्यायन्तव्यम् । एते दोषा न भविष्यन्ति, ये तस्याः प्रेत्या इति ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनस आयुष्मान् महामौद्गल्यायनोऽन्ये च देवासुरगरुड-किन्नरमहोरगा भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

४३ पानीयम् ।

B 249 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नर-
महोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लान-
प्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति वेणुवने कलन्दक-
निवापे । अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनः प्रेतचारिकां चरन् प्रेतीमद्राक्षीदग्धस्थूणासदृशीं स्वकेश-

संछन्नां सूचीछिद्रोपममुखीं पर्वतोपमकुक्षिमादीप्तां प्रदीप्तां प्रज्वलितामेकज्वालीभूतां ध्मायन्तीं तृषार्तां दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां वेदयमानाम्। दर्शनमात्रेण चास्या नद्युदपानानि शुष्यन्ति। यदा देवो वर्षति, तदा तस्या उपरि सविस्फुलिङ्गाङ्गारवर्षं पतति। दृष्ट्वा तामायुष्मान् महामौद्गल्यायन आह—किं त्वया कृतं पापं येनैवंविधं दुःखमनुभवसीति। प्रेती आह—पापकारिण्यहं भदन्त महामौद्गल्यायन। एतमर्थं भगवन्तं पृच्छ। स ते अस्माकीनां कर्मप्लोतिं कथयिष्यति, यां श्रुत्वा अन्येऽपीह सत्त्वाः पापात्कर्मणः प्रतिविरंस्यन्तीति। अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः॥

तेन खलु पुनः समयेन भगवान् प्रतिसंलयनाद्व्युत्थाय चतसृणां पर्षदां मधुरमधुरं धर्मं देशयति क्षौद्रं मध्विवानेडकम्। अनेकशता च पर्षद्भगवतः सकाशान्मधुरमधुरं धर्मं शृणोत्यनिज्यमानैरिन्द्रियैः। ततो बुद्धा भगवन्तः पूर्वालापिनः प्रियालापिन एहीति स्वागत- B 250
वादिनः स्मितपूर्वंगमाश्च। तत्र भगवानायुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमिदमवोचत्—एहि मौद्गल्यायन, स्वागतं ते, कुतस्त्वमेतर्ह्यागच्छसीति। महामौद्गल्यायन आह—आगच्छाम्यहं भदन्त प्रेतचारिकायाः। तत्राहं प्रेतीमद्राक्षं दग्धस्थूणासदृशीं स्वकेशसंछन्नां सूचीछिद्रोपममुखीं पर्वतोपमकुक्षिमादीप्तां प्रदीप्तां प्रज्वलितामेकज्वालीभूतां ध्मायन्तीमार्तस्वरं क्रन्दतीं तृषार्तां दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां वेदयमानाम्। दर्शनमात्रेण चास्य नद्युदपानानि शुष्यन्ति। यदा देवो वर्षति तदा अस्या उपरि सविस्फुलिङ्गमङ्गारवर्षं पतति। भगवानाह—पापकारिणी मौद्गल्यायन सा प्रेती। इच्छसि तस्याः कर्मप्लोतिं श्रोतुम्? एवं भदन्त। तेन हि मौद्गल्यायन शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु, भाषिष्ये॥

भूतपूर्वं मौद्गल्यायन अतीतेऽध्वनि अस्मिन्नेव भद्रकल्पे विंशतिसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान्। स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे। तत्रान्यतमो भिक्षुरध्वानं प्रतिपन्नः। स तृषार्तः कूपमुपसृप्तः। तत्रान्यतरा दारिका पानीयघटं पूरयित्वा स्थिताभूत्। सा भिक्षुणोक्ता—तृषार्तोऽहं भगिनि, पानीयमनुप्रयच्छेति। तस्या मात्सर्यमुत्पन्नम्। सा आगृहीतपरिष्कारा भिक्षुमुवाच—भिक्षो यदि म्रियसे, न ते ददामि पानीयम्, घटो मे ऊनो भविष्यतीति। B 251
ततोऽसौ भिक्षुस्तृषार्तो निराशः प्रक्रान्तः। ततोऽसौ दारिका तेन मात्सर्येणासेवितेन भावितेन बहुलीकृतेन कालं कृत्वा प्रेतेषूपपन्ना। एवंविधां दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां वेदयते। तस्मात्तर्हि मौद्गल्यायन एवं शिक्षितव्यं यन्मात्सर्यप्रहाणाय व्यायंस्यामहे। इत्येवं ते मौद्गल्यायन शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमना आयुष्मान् मौद्गल्यायनोऽन्ये च देवासुरगरुडकिन्नरमहोरगादयो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

४४ वर्चघटः।

B 252 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः
पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुड-
किन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासन-
ग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति वेणुवने कलन्दक-
निवापे। अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनः पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय राजगृहं पिण्डाय
प्राविक्षत्। राजगृहं पिण्डाय चरित्वा कृतभक्तकृत्यः पश्चाद्भक्तपिण्डपातप्रतिक्रान्तः पात्रचीवरं
प्रतिसंमर्प्य[1] येन गृध्रकूटः पर्वतस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य गृध्रकूटं पर्वतमवगाह्यान्यतर-
वृक्षमूलं निश्रित्य निषण्णो दिवाविहाराय। अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनः प्रेतीमद्राक्षीद्दग्ध-
स्थूणासदृशीं नग्नां स्वकेशसंछन्नां सूचीछिद्रोपममुखीं पर्वतोपमकुक्षिमादीप्तां प्रदीप्तां प्रज्वलिता-
B 253 मेकज्वालीभूतां ध्मायन्तीमार्तस्वरं क्रन्दन्तीं तृषार्तां दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां
वेदयमानाम्। दुर्गन्धां परमदुर्गन्धां वर्चःसदृशीं वर्चोहारां तदपि कृच्छ्रेणासादयन्तीम्।
दृष्ट्वा च पुनरायुष्मान् महामौद्गल्यायनः संविग्नः। प्रेतीं च पप्रच्छ—

किं त्वया प्रकृतं पापं यस्य ते ईदृशं फलमिति।

प्रेती आह—प्रागेपकारिण्यहं[2] भदन्त महामौद्गल्यायन। एतमर्थं बुद्धं भगवन्तं पृच्छ।
स तेऽस्माकीनां कर्मप्लोतिं व्याकरिष्यति। यां श्रुत्वान्येऽपि सत्त्वाः पापकर्मणः प्रतिविरं-
स्यन्तीति। अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः॥

तेन खलु समयेन भगवान् प्रतिसंलयनाद्व्युत्थाय चतसृणां पर्षदां मधुरमधुरं धर्मं
देशयति क्षौद्रं मध्विवानेडकम्। अनेकशता च पर्षद्भगवतः सकाशान्मधुरं धर्मं शृणो-
त्यनिज्यमानैरिन्द्रियैः। ततो बुद्धा भगवन्तः पूर्वालापिनः प्रियालापिन एहीति स्वागत-
वादिनः स्मितपूर्वंगमाश्च। तत्र भगवानायुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमिदमवोचत्—एहि
मौद्गल्यायन, स्वागतं ते, कुतस्त्वमेतर्ह्यागच्छसीति। महामौद्गल्यायन आह—आगच्छाम्यहं
भदन्त प्रेतचारिकायाः। तत्राहं प्रेतीमद्राक्षं दग्धस्थूणासदृशीं नग्नां स्वकेशसंछन्नां सूचीछिद्रो-
B 254 पममुखीं पर्वतोपमकुक्षिमादीप्तां प्रदीप्तां प्रज्वलितामेकज्वालीभूतामार्तस्वरं क्रन्दन्तीं दुःखां
तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां वेदयमानाम्। दर्शनमात्रेण चास्या नद्युदपानानि
शुष्यन्ति। यदा देवो वर्षति, तदा तस्या उपरि सविस्फुलिङ्गमङ्गारवर्षं पतति, दुर्गन्धां
परमदुर्गन्धां वर्चःसदृशां च वर्चोहारां तदपि कृच्छ्रेणासादयन्तीम्। आह च—

[[3]नग्ना स्वकेशसंछन्ना अस्थियन्त्रवदुच्छ्रिता।]
आर्तस्वरं क्रन्दमाना दुःखां विन्दति वेदनाम्॥ १॥

---

१ Speyer suggests that प्रतिसमर्प्य stands for पटिसामेत्वा in Pali, of which it may be a sanscritisation. २ Speyer suggests that प्रागपकारिणी might be a corruption of पापकारिणी. ३ Speyer suggests that नग्ना स्वकेशसंछन्ना might be the beginning of the missing line. See page 110.

येन हि वर्चधानानि तेन धावति दुःखिता।
वर्चः पास्यामि मोक्ष्ये च तच्च दुःखेन लभ्यते ॥ २ ॥
किं तया प्रकृतं पापं मर्त्यलोके सुदारुणम्।
येन एवंविधं दुःखमनुभवति भयानकम् ॥ ३ ॥

भगवानाह—पापकारिणी मौद्गल्यायन सा प्रेती। इच्छसि तस्याः कर्मप्लोतिं श्रोतुम्? एवं भदन्त। तेन हि मौद्गल्यायन शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु, भाषिष्ये॥

भूतपूर्वं मौद्गल्यायन वाराणस्यां नगर्यामन्यतमः प्रत्येकबुद्धो हीनदीनानुकम्पी प्रान्तशयनासनसेवी च। स व्याधितो वाराणसीं पिण्डाय प्रविशति। यावदस्य वैद्येन सांप्रेयं[1] भोजनमुपदिष्टम्। स येनान्यतमस्य श्रेष्ठिनो निवेशनं तेनोपसंक्रान्तः। तेन च श्रेष्ठिना B 255 दृष्टः पृष्टश्च—केन ते आर्य प्रयोजनमिति। तेनोक्तं कुलसांप्रेयेण भोजनेनेति। ततः श्रेष्ठिना वध्वा आज्ञा दत्ता—आर्याय सांप्रेयं भोजनं दातव्यमिति। अथ तस्या वध्वा मात्सर्यमुत्पन्नम्—यद्यहमस्मै अद्य भोजनं प्रदास्यामि, श्वो भूय आगमिष्यतीति। तया एकान्तमपसृत्य वर्चसः पात्रं पूरयित्वा उपरि भक्तेन प्रच्छाद्य तस्मै प्रत्येकबुद्धाय दत्तम्। असमन्वाहृत्य श्रावकप्रत्येकबुद्धानां ज्ञानदर्शनं न प्रवर्तते। तेन प्रतिगृहीतम्। प्रतिगृह्य संलक्षितं यथैतद्दुर्गन्धम्। नूनमनया अमेध्यस्य पूरितमिति। ततोऽसौ महात्मा तदेकान्ते छोरयित्वा प्रक्रान्तः॥

भगवानाह—किं मन्यसे मौद्गल्यायन यासौ तेन कालेन तेन समयेन श्रेष्ठिवधुका, इयं सा प्रेती। यदुपादायानया तादृक्पापं कृतम्। ततः प्रभृति नित्यं नरकतिर्यक्प्रेतेषूपपचते, नित्यं च वर्चोहारा। तस्मात्तर्हि ते मौद्गल्यायन मात्सर्यप्रहाणाय व्यायन्तव्यं यथा एते दोषा न स्युर्ये तस्याः प्रेत्याः। एवं मौद्गल्यायन शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमना आयुष्मान् मौद्गल्यायनोऽन्ये च देवासुरगरुडकिन्नरमहोरगादयो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

४५ मौद्गल्यायनः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 256 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति स्म वेणुवने कलन्दकनिवापे। तेन खलु पुनः समयेन अन्तरा च राजगृहमन्तरा च वेणुवनमत्रान्तरे पञ्च प्रेतशतानि दग्धस्थूणाकृतीनि नग्नानि स्वकेशसंच्छन्नानि पर्वतोपमकुक्षीणि सूचीछिद्रोपममुखानि आदीप्तानि प्रदीप्तानि संप्रज्वलितान्येकज्वालीभूतान्यार्तस्वरं प्रलपमानानि दुःखां तीव्रां खरां कटुका-

[1] सांप्रेय means usual, normal.

ममनापां वेदनां वेदयमानानि वायुमण्डल[1]वदाकाशे परिभ्रमन्ति, न क्वचित्प्रतिष्ठां लभन्ते। अथा-
B 257 युष्मान् मौद्गल्यायनः पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय राजगृहं पिण्डाय प्राविक्षत्। तेन ते प्रेता
दृष्टाः, तैरपि प्रेतैरायुष्मान् महामौद्गल्यायनः। ततस्ते एकसमूहेनायुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमुप-
संक्रान्ताः। उपसंक्रम्य करुणदीनविलम्बितैरक्षरैरेकस्वरेणोचुः—वयं स्मो भदन्त महामौद्गल्यायन
राजगृहे पञ्च-श्रेष्ठिशतान्यभूवन्। ते वयं मत्सरिणः कुटुकुञ्चका आगृहीतपरिष्काराः। स्वयं
तावदस्माभिर्दानप्रदानानि न दत्तानि, परेषामपि दानप्रदानेषु दीयमानेषु विघ्नाः कृताः,
दक्षिणीयाश्च बहवः प्रेतवादेन परिभाषिताः—प्रेतोपपन्ना इव यूयं नित्यं परगृहेभ्यो भैक्ष्य-
मटथ। एते वयं कालं कृत्वा एवंविधेषु प्रेतेषूपपन्नाः। इति भदन्त महामौद्गल्यायन
येऽस्माकं ज्ञातयो राजगृहे प्रतिवसन्ति, तेषामस्माकीनां कर्मप्लोतिं निवेद्य छन्दकभिक्षणं
कृत्वा बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं भोजयित्वा अस्माकं नाम्ना दक्षिणादेशनां कारयित्वा चास्माकं
प्रेतयोनेर्मोक्षः स्यादिति। अधिवासयत्यायुष्मान् महामौद्गल्यायनः प्रेतानां तूष्णीभावेन।
तत आयुष्मता महामौद्गल्यायनेन तेषां ज्ञातिगृहेभ्यश्छन्दकभिक्षणं कृत्वा बुद्धप्रमुखो भिक्षु-
संघः श्वोभक्तेनोपनिमन्त्रितः। प्रेतानां च निवेदितम्—श्वो भगवान् सभिक्षुसंघो भक्तेनोप-
निमन्त्रितः, तत्र युष्माभिरागन्तव्यमिति। ज्ञातीनामप्यारोचितम्—भवद्भिरागन्तव्यं तत्र ज्ञाति-
भोजने। तान् प्रेतान् द्रक्ष्यामः। अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनः स्वयमेवोद्युक्तो भोजनं
प्रतिजागरितुम्॥

B 258 अथ प्रभातायां रजन्यामाहारे सज्जीकृते गण्डीदेशकाले संप्राप्ते तान् प्रेतान्न पश्यति।
तत आयुष्मान् महामौद्गल्यायनो दिव्येन चक्षुषा तान् प्रेतान् समन्वाहर्तुं प्रवृत्तः। सर्वस्मिन्नेव
मगधमण्डले नाद्राक्षीत्। यावत्क्रमेण चातुर्द्वीपिकं व्यवलोकयितुं प्रवृत्तः। तत्रापि नाद्रा-
क्षीत्। ततो यावदस्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते, ततो व्यवलोकयितुं प्रवृत्तः। तत्रापि नाद्राक्षीत्।
तत आयुष्मान् महामौद्गल्यायनः संविग्नो भगवते निवेदयामास—भगवन्, न मे दानपतयो
दृश्यन्त इति। भगवानाह—अयं मौद्गल्यायन मा खेदमापद्यस्व। सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धविषय-
मतिक्रम्य अपरिमाणा लोकधातवः सन्ति। तत्र कर्मवायुना क्षिप्ताः। अपि मौद्गल्यायन अद्य
तथागतबलं पश्य। सर्वज्ञज्ञानदर्शनं व्यक्तीकरिष्यामि। तथागतविकुर्वितं दर्शयिष्यामि।
आकोट्यतां गण्डीति। ततो गण्ड्यामाकोटितायां सर्वो भिक्षुसंघः संनिपतितः, प्रेतज्ञातयोऽन्ये
च कौतूहल्याभ्यागताः सत्त्वाः प्रेतदर्शनोत्सुकाः संनिपतिताः। ततो भगवता ऋद्ध्या तथा
दर्शितं यथा प्रेता बुद्धं भगवन्तं सश्रावकसंघं भुञ्जानं पश्यन्ति, स्मृतिं च प्रतिलभन्ते—
ज्ञातयो अस्मदर्थे बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं भोजयन्तीति। ततो भगवान् पञ्चाङ्गोपेतेन स्वरेण
दक्षिणामादिशति—

B 259 इतो दानाद्धि यत्पुण्यं तत्प्रेताननुगच्छतु।
उत्तिष्ठन्तां क्षिप्रमेते प्रेतलोकात्सुदारुणात्॥ १॥ इति॥

---

१ Speyer suggests, on the authority of Tibetan translation, that वायुमण्डल might be वायमण्डल.

यावद्भगवता तदधिष्ठाना तथाविधा धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा अनेकैः प्राणिशतसहस्रैर्मात्सर्यमलं प्रहाय सत्यदर्शनं कृतम्। ते च प्रेता भगवति चित्तमभिप्रसाद्य कालगताः, प्रणीतेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नाः ॥

धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्यकाया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते—कुतश्च्युतः, कुत्रोपपन्नः, केन कर्मणेति। पश्यन्ति—प्रेतेभ्यश्च्युताः, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नाः, भगवतोऽन्तिके चित्तमभिप्रसाद्येति। अथ प्रेतपूर्विणां देवपुत्राणामेतदभवत्—नास्माकं प्रतिरूपं स्यात्, यद्वयं पर्युषितपरिवासा भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेम। यन्नु वयमपर्युषितपरिवासा एव भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेमेति। अथ प्रेतपूर्विणो देवपुत्राश्चलविमलकुण्डलधरा हारार्धहारविराजितगात्रा मणिरत्नविचित्रमौलयः कुङ्कुमतमालपत्रस्पृक्कादिसंसृष्टगात्रास्तस्यामेव रात्रौ दिव्यानामुत्पलपद्मपुण्डरीकमन्दारवादीनां पुष्पाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा समन्ततो वेणुवनं कलन्दकनिवापमुदारेणावभासेनावभास्य भगवन्तं B 260 पुष्पैराकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णा धर्मश्रवणाय। अथ भगवान् प्रेतपूर्विणां देवपुत्राणामाशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा प्रेतपूर्वकैर्देवपुत्रैर्महान् विशेषोऽधिगतः। ते लब्धलाभा इव वणिजो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य तत्रैवान्तर्हिताः ॥

तत्र भगवानायुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमामन्त्रयते। साधु साधु महामौद्गल्यायन। सफलं ते वैयावृत्यं संवृत्तम्। यत्ते * * प्रेता देवेषु प्रतिष्ठापिताः। तेऽस्यां रात्रौ मत्सकाशमुपसंक्रान्ताः। तेषां मया धर्मो देशितः। ते लब्धोदया लब्धलाभाः प्रक्रान्ता इति॥

तत आयुष्मता महामौद्गल्यायनेन तेषां ज्ञातीनामारोचितम्। ते श्रुत्वा परं विस्मयमुपगता भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादयामासुर्भूयश्च सत्कारं प्रचक्रुरिति। तस्मात्तर्हि ते मौद्गल्यायन मात्सर्यप्रहाणाय व्यायन्तव्यम्। एते दोषा न भवन्ति ये तेषां प्रेतानामिति॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमना आयुष्मान् मौद्गल्यायनोऽन्ये च देवासुरगरुडकिन्नरमहोरगादयो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

४६ उत्तरः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः श्रेष्ठिभिः B 261 पौरैः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। राजगृहेऽन्यतरः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति

1 This sentence is wholly out of place here.

रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः कालान्तरेण पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा अष्टानां वा नवानां मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः—यस्मादुत्तरे नक्षत्रे जातस्तस्माद्भवतूत्तर इति नाम । उत्तरो दारको उन्नीतो वर्धितो महान् संवृत्तः । पिता चास्य कालगतः । उत्तरश्च गृहे स्वामी संवृत्तः । तेनापणः स्थापितः । क्रीणाति, विक्रीणीते, क्रयविक्रयेण जीविकां कल्पयति । स दिवसानुदिवसं भगवत्सकाशमुपसंक्रामति । तस्य भगवत्संदर्शनात्सद्धर्मश्रवणाच्च भगवच्छासने प्रसादो जातः । तस्य प्रव्रज्याचित्तमुत्पन्नम् । स मातरं विज्ञापयामास—अम्ब अनुजानीहि माम्, भगवच्छासनेषु प्रव्रजि-
B 262 ष्यामीति । ततो माता कथयति—पुत्र त्वमेकपुत्रकः । यावदहं जीवामि, तावन्न प्रव्रजितव्यम् । मृतायां मयि यथाकरणीयं करिष्यसीति । स चोत्तरो यत्किंचिदुपार्जयति तत्सर्वं मात्रेऽनुप्रयच्छति—अनेन अम्ब श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकान् प्रतिपादयस्वेति । सा चास्य माता लुब्धा कुटुकुञ्चिका मत्सरिणी आगृहीतपरिष्कारा तान् कार्षापणान् गोपयित्वा ये श्रमणब्राह्मणाः पिण्डार्थिनस्तद्गृहं प्रविशन्ति, तान् परिभाषते—प्रेतोपपन्ना इव यूयं नित्यं परगृहेभ्यो भैक्ष्यमटयेति । सा च पुत्रं विसंवादयति—अहमद्य इयतां भिक्षूणां भोजनं प्रयच्छामीति ॥

यावदसौ कालं कृत्वा प्रेतेषूपपन्ना । उत्तरश्च मातृवियोगाद्दानानि दत्त्वा पुण्यानि कृत्वा भगवच्छासने प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविप्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

स गङ्गातीरे पर्णकुटिं कृत्वा ध्यायति । सा चास्य माता प्रेतलोकोपपन्ना नग्ना दग्धस्थूणासदृशी स्वकेशरोमसंछन्ना सूचीछिद्रोपममुखी पर्वतोपमकुक्षिरादीप्ता संप्रज्वलिता एकज्वालीभूता आर्तस्वरं क्रन्दन्ती आयुष्मन्तमुत्तरमुपसंक्रान्ता । यावदायुष्मता उत्तरेण सा प्रेती दृष्टा पृष्टा च—का त्वमेवंविधेति । प्रेती आह—

अहं ते जननी स्निग्धा यया जातोऽसि पुत्रक ।
अन्नपानवियुक्तेषु प्रेतेषु समुपागता ॥ १ ॥
B 263 पञ्चविंशतिवर्षाणि यतः कालगता ह्यहम् ।
नाभिजानामि पानीयं कुतो भक्तस्य दर्शनम् ॥ २ ॥
सफलान् वृक्षान् गच्छामि, निष्फला [मे] भवन्ति ते ।
पूर्णानि सरांसि गच्छामि, तानि शुष्काणि सन्ति [मे] ॥ ३ ॥

1 This part of Preti's speech, as Speyer suggests, is in prose, but must have been originally in verse, as restored by me in a metrical form on the strength of Mss.

सुखं भदन्तस्य हि वृक्षमूलं [उदकं] भजते शीतल भाजनेस्मिं ।
कृपां जनयित्वा [जनेत्वा] कृपणायै मह्यं ददस्व तोयं तृषार्दितायै ॥ ४ ॥ B 264

तत उत्तरो मातरमुवाच—अम्ब ननु पुरा त्वं मया मनुष्यभूता दानानि दापिता, पुण्यानि कारितेति । प्रेती आह—न मया पुत्रक मात्सर्याभिभूतया दानानि दत्तानि, पुण्यानि वा कृतानि । सर्वं तदर्थजातं पापचित्तया अग्निखदायां निखातम् । तदिदानीं पुत्रक ज्ञातिगृहं गत्वा छन्दनभिक्षं कृत्वा मम नाम्ना बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं भोजय, दक्षिणामादेशय, देशनां च कारय । एवं प्रेतयोनेर्मम मोक्षः स्यादिति । उत्तर आह—एवमस्तु अम्ब । किं तु त्वया बुद्धान्ते स्थातव्यमिति । प्रेती आह—पुत्रका, अपत्रपे नग्ना ह्रियान्वितेति । उत्तर आह—अम्ब यदा पापं करोषि, तदा नापत्रपिता । इदानीं किमर्थं फलकाले व्यपत्रपस इति । प्रेती आह—एवं भवतु, आगमिष्यामीति ॥

तत उत्तरेण ज्ञातिगृहेभ्यश्छन्दनभिक्षणं कृत्वा बुद्धप्रमुखो भिक्षुसंघः श्वोभक्तेनोपनिमन्त्रितः । गण्डीकाले च बुद्धप्रमुखो भिक्षुसंघः संनिपतितः । सा च प्रेती बुद्धान्ते स्थिता । प्रेतीदिदृक्षुकाण्यनेकानि प्राणिशतसहस्राणि संनिपतितानि । ते तां प्रेतीं विकृताश्रयां दृष्ट्वा परं संवेगमुपगताः भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादयामासुः । तत आयुष्मानुत्तरो बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं प्रणीतेनाहारेण संतर्प्य प्रेत्या नाम्ना दक्षिणादेशनां कारयामास । भगवांश्च पञ्चाङ्गोपेतेन स्वरेण स्वयमेव दक्षिणादेशनामादिशति—

इतो दानाद्धि यत्पुण्यं तत्प्रेतीमनुगच्छतु ।
उत्तिष्ठतां क्षिप्रमियं प्रेतलोकात्सुदारुणात् ॥ ५ ॥ इति ॥

यावद्भगवता तदधिष्ठानं तस्याः प्रेत्या महतश्च जनकायस्य तथाविधा धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा अनेकप्राणिशतसहस्रैः सत्यदर्शनं कृतम् । सा च प्रसन्नचित्ता कालगता B 265 प्रेतमहर्द्धिकेषूपपन्ना ॥ आयुष्मतोत्तरेण समन्वाहृता प्रेतमहर्द्धिकेषूपपन्ना । तत आयुष्मता उत्तरेणोक्तम्—अम्ब अस्ति ते शक्तिः । क्रियतां दानोत्सर्ग इति । प्रेतमहर्द्धिकोवाच—पुत्र न शक्ष्यामि । नास्ति मे दानेऽभिलाष इति । तत आयुष्मानुत्तरः प्रेतमहर्द्धिकामुवाच—

अद्यापि ते तिष्ठति तच्छरीरं विवृद्धनिर्मांसत्वगस्थिचर्मम् ।
लोमान्धकारावृतलोचनाया निवर्तितं यत्त्वया प्रेतलोके ॥ ६ ॥ इति ॥

यावदायुष्मता उत्तरेण सुबहु परिभाष्य एका यमली लब्धा । ततः सा संघाय दत्ता । येन च भिक्षुणा संघमध्यात् सा यमली क्रीता, तेन मानवके स्थापिता । ततस्तया प्रेत्या B 266 रात्रावुपागत्यापहृता । ततस्तेन भिक्षुणा आयुष्मत उत्तराय निवेदितम् । उत्तरेण गत्वा प्रेती परिभाष्य पुनरप्यानीय दत्ता । एवं यावत्त्रिरपि तस्य भिक्षोः सकाशादपहृता, आयुष्मता चोत्तरेणानीय दत्ता । भिक्षुणा च सा पाटयित्वा चातुर्दिशाय भिक्षुसंघाय विलेपनिकायां

१ मानवक is an unusual word, meaning a peg for clothes. The Tibetan translation suggests आरम्भक or आलम्बक.

सीविता। ततस्तया न पुनरपहृता। अत एव मात्सर्यं सत्त्वानां विडम्बनकरं दृष्ट्वा मात्सर्यप्रहाणाय व्यायितव्यम्। तथा एवंविधा दोषा न स्युर्यथा तस्याः प्रेतत्वा इति॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवोऽन्ये च देवासुरगरुडकिन्नरमहोरगादयो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

४७ जात्यन्धा[1]।

B 267 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। अथायुष्मान्नन्दकः पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं पिण्डाय चरित्वा कृतभक्तकृत्यः पश्चाद्भक्तपिण्डपातप्रतिक्रान्तः पात्रचीवरं प्रतिसमर्प्य प्रेतचारिकां चरति स्म। अद्राक्षीदायुष्मान्नन्दकः प्रेतीं दग्धस्थूणासदृशीं जात्यन्धां स्वकेशरोमसंछन्नां सूचीछिद्रोपममुखीं पर्वतोपमकुक्षिं दुर्गन्धां श्मशानसदृशीं काकैर्गृध्रैः श्वभिः शृगालैश्चाभिद्रुताम्। येऽस्याः समन्तत उत्पाट्योत्पाट्य मांसं भक्षयन्ति। सा मर्मवेदनाभ्याहता आर्तस्वरं क्रन्दति दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां वेदयन्ती। आयुष्मान्नन्दकः संविग्नः पृच्छति—किं त्वया भगिनि प्रकृतं पापं येनैवंविधं दुःखमनुभवसीति। प्रेती आह—आदित्ये हि समुद्गते न दीपेन प्रयोजनम्। भगवन्तमेतमर्थं पृच्छ। स ते अस्माकीनां कर्मप्लोतिं व्याकरिष्यतीति। यां श्रुत्वा अन्येऽपीह सत्त्वाः पापात्प्रतिविरंस्यन्तीति। अथायुष्मान्नन्दको येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः॥

B 268 तेन खलु पुनः समयेन भगवान् प्रतिसंलयनाद् व्युत्थाय चतसृणां पर्षदां मधुरमधुरं धर्मं देशयति क्षौद्रं मध्विवानेडकम्। अनेकशता च पर्षद्भगवतः सकाशान्मधुरमधुरं धर्मं शृणोत्यनिञ्ज्यमानैरिन्द्रियैः। ततो बुद्धा भगवन्तः पूर्वालापिन एहीति स्वागतवादिनः स्मितपूर्वंगमाश्च। तत्र भगवानायुष्मन्तं नन्दकमिदमवोचत्—एहि नन्दक, स्वागतं ते, कुतस्त्वं नन्दक एतर्ह्यागच्छसीति। नन्दक आह—आगच्छाम्यहं भदन्त प्रेतचारिकायाः। तत्राहं प्रेतीमद्राक्षं दग्धस्थूणासदृशीं स्वकेशरोमसंछन्नां सूचीछिद्रोपममुखीं पर्वतोपमकुक्षिं दुर्गन्धां श्मशानसदृशीं काकैर्गृध्रैः श्वभिः सृगालैश्चाभिद्रुताम्, येऽस्याः समन्तत उत्पाट्योत्पाट्य मांसं भक्षयन्ति। सा मर्मवेदनाभ्याहता आर्तस्वरं क्रन्दति। दुःखां तीव्रां खरां कटुकाममनापां वेदनां वेदयते। आह च—

विशुष्ककण्ठोष्ठपुटा सुदुःखिता प्रवृद्धशैलोपमचर्चिताश्रया।
स्वकेशसंछन्नतनुर्दिगम्बरा सुसूक्ष्मसूचीसदृशानना कृशा॥ १॥

---

1 Mss. जात्यन्धः for जात्यन्धा.

नग्ना स्वकेशसंछन्ना अस्थियन्त्रवदुच्छ्रिता ।
कपालपाणिनी घोरा क्रन्दन्ती परिधावते ॥ २ ॥
बुभुक्षया पिपासया क्रान्ता व्यसनपीडिता ।
आर्तस्वरं क्रन्दमाना दुःखां विन्दति वेदनाम् ॥ ३ ॥
किं तया प्रकृतं पापं मर्त्यलोके सुदारुणम् ।
येन एवंविधं दुःखमनुभवति भयानकम् ॥ ४ ॥ इति ॥

भगवानाह—पापकारिणी नन्दक सा प्रेती । इच्छसि तस्याः कर्मप्लोतिं श्रोतुम्? एवं भदन्त । तेन हि नन्दक शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं नन्दक अस्मिन्नेव भद्रकल्पे विंशतिसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम B 269
सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । वाराणस्यामन्यतमा श्रेष्ठिदुहिता । सा धर्माभिलाषिणी । यावदसौ धर्मं श्रुत्वा संसारदोषदर्शिनी निर्वाणे गुणदर्शिनी संवृत्ता । सा मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजिता । तस्या अर्थे ज्ञातिभिर्भिक्षुणीवर्षकः कारितः । सा तत्र शैक्षाशैक्षीभिर्भिक्षुणीभिः सार्धं प्रतिवसति । यावत्तया प्रमादाच्छिक्षाशैथिल्यं कृतम् । ततो भिक्षुणीभिर्दुःशीलेति निष्कासिता । ततस्तया दानपतिगृहेभ्यः प्रवृत्तकानि छन्दकानि[1] * * * * शैक्षाशैक्षीणां च अवर्णो भाषितः । भिक्षवश्च ये शीलवन्तः, तान् दृष्ट्वा नयने निमीलितवती ॥

किं मन्यसे नन्दक या सा श्रेष्ठिदुहिता, इयं सा प्रेती । यत्तया वर्षके मात्सर्यं कृतम्, तेन प्रेतेषूपपन्ना । यत्तया नैत्यकसमुच्छेदः कृतस्तेन काकैर्गृध्रैः कुर्कुरैश्चाभिद्रुता ।[2] यत्तया शैक्षाशैक्षीणा भिक्षुणीनामवर्णो भाषितः, तेन दौर्गन्ध्यमासादितम् । यत्तया शीलवतो भिक्षून् दृष्ट्वा नयने निमीलिते, तेन जात्यन्धा संवृत्ता । इति हि नन्दक एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि ते नन्दक एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं ते नन्दक शिक्षितव्यम् ॥

अस्मिन् खलु धर्मपर्याये भाष्यमाणे दशभिः प्राणिशतसहस्रैः सत्यदर्शनं कृतम् । B 270
तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म—इमे चान्ये च आदीनवा मात्सर्ये वाग्दुश्चरिते चेति ज्ञात्वा मात्सर्यस्य वाग्दुश्चरितस्य च प्रहाणाय व्यायन्तव्यम् । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवोऽन्ये च देवासुरगरुडकिंनरमहोरगादयो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

१ The gap may be filled by अतिक्रम्य. २ Speyer suggests, on the strength of Tibetan translation, that we should read [illegible].

४८ श्रेष्ठी ।

B 271 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । श्रावस्त्यामन्यतमः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । सोऽपरेण समयेन जेतवनं निर्गतः । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । दृष्ट्वा च पुनर्भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । तस्मै भगवता संसारवैराग्यिकी धर्मदेशना कृता यां श्रुत्वा संसारदोषदर्शी निर्वाणे गुणदर्शी भूत्वा भगवच्छासने प्रव्रजितः । प्रव्रजितश्च ज्ञातो महापुण्यः संवृत्तो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणाम् । स गृहीतपरिष्कारो लब्धं लब्धं संचयं करोति, न तु सब्रह्मचारिभिः सह संविभागं करोति । स तेन मात्सर्येण सेवितेन भावितेन बहुलीकृतेन परिष्काराध्यवसितः कालगतः स्वके लयने प्रेतेषूपपन्नः ॥

B 272 ततोऽस्य सब्रह्मचारिभिर्मुण्डिकां गण्डीं पराहत्य शरीराभिनिर्हारः कृतः । ततोऽस्य शरीरे शरीरपूजां कृत्वा विहारमागताः । ततो लयनद्वारं विमुच्य पात्रचीवरं प्रत्यवेक्षितुमारब्धाः । यावत्पश्यन्ति तं प्रेतं विकृतकरचरणनयनं परमबीभत्साश्रयं पात्रचीवरमवष्टभ्यावस्थितम् । तथा विकृतं दृष्ट्वा भिक्षवः संविग्ना भगवते निवेदितवन्तः । ततो भगवांस्तस्य कुलपुत्रस्यानुग्रहार्थं शिष्यगणस्योद्वेजनार्थं मात्सर्यस्य चानिष्टविपाकसंदर्शनार्थं भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतस्तं प्रदेशमनुप्राप्तः । ततोऽसौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्चास्य भगवतोऽन्तिके प्रसादो जातः । स व्यपत्रपितवान् । ततो भगवान् सजलजलदगम्भीरदुन्दुभिस्वरः प्रेतं परिभाषितवान्—भद्रमुख त्वयैवैतदात्मवधाय पात्रचीवरं समुदानीतम्, येनास्यपायेषूपपन्नः । साधु ममान्तिके चित्तं प्रसादय, अस्माच्च परिष्काराच्चित्तं विरागय । मा हैव इतः कालं कृत्वा नरकेषूपपत्स्यस इति । ततः प्रेतः संघे पात्रचीवरं निर्यात्य भगवतः पादयोर्निपत्य अत्ययं देशितवान् । ततो भगवता प्रेतस्य नाम्ना दक्षिणा आदिष्टा—

इतो दानाद्धि यत्पुण्यं तत्प्रेतमनुगच्छतु ।
उत्तिष्ठतु क्षिप्रमयं प्रेतलोकात्सुदारुणात् ॥ १ ॥ इति ॥

B 273 ततः स प्रेतो भगवति चित्तं प्रसाद्य कालगतः प्रेतमहर्द्धिकेषूपपन्नः । ततः प्रेतमहर्द्धिकश्चलविमलकुण्डलधरो हारार्धहारविराजितगात्रो मणिरत्नविचित्रमौलिः कुङ्कुमतमाल-

पत्रस्पृक्कादिसमृष्टगात्रस्तस्यामेव रात्रौ दिव्यानामुत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकमन्दारवाणामुत्सङ्ग[1] पूरयित्वा सर्वं जेतवनमुदारेणावभासेनावभास्य भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। भगवता चास्य तथाविधा धर्मदेशना कृता, या श्रुत्वा प्रसादजातः प्रक्रान्तः ॥

भिक्षवः पूर्वरात्रापररात्रं जागरिकायोगमनुयुक्ता विहरन्ति। तैर्दृष्टो भगवतोऽन्तिके उदारोऽवभासः, यं दृष्ट्वा संदिग्धा भगवन्तं पप्रच्छुः—किं भगवन् अस्यां रात्रौ ब्रह्मा सहांपतिः शक्रो देवेन्द्रश्चत्वारो लोकपाला भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रान्ताः? भगवानाह—न भिक्षवो ब्रह्मा सहांपतिर्न शक्रो देवेन्द्रो नापि चत्वारो लोकपाला मां दर्शनायोपसंक्रान्ताः। अपि स प्रेतः कालं कृत्वा प्रेतमहर्द्धिकेषूपपन्नः। स इमां रात्रीं मत्सकाशमुपसंक्रान्तः। तस्य मया धर्मो देशितः। स प्रसादजातः प्रक्रान्तः। तस्मात्तर्हि भिक्षवो मात्सर्यप्रहाणाय व्यायन्तव्यम्। एते दोषा न भविष्यन्ति, ये तस्य श्रेष्ठिनः प्रेतभूतस्य। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवोऽन्ये च देवासुरगरुडकिन्नरमहोरगादयो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

४९ पुत्राः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 274
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति स्म वेणुवने कलन्दकनिवापे। अथायुष्मानानन्दः पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय राजगृहं पिण्डाय प्राविक्षत्। राजगृहं पिण्डाय चरित्वा कृतभक्तकृत्यः पश्चाद्भक्तपिण्डपातप्रतिक्रान्तः पात्रचीवरं प्रतिसमर्प्य प्रेतचारिकां प्रक्रान्तः ॥

गृध्रकूटपर्वतसामन्तके प्रेतीं ददर्श यमराक्षससदृशीं रुधिरबिन्दुचितामस्थिशकलापरिवृतां श्मशानमध्य इवावस्थिताम्। रात्रिंदिवेन पञ्च पुत्रान् प्रसूय तादृशं दुःखमनुभूय पुत्रस्नेहे सत्यपि क्षुत्क्षामतया पुत्रांस्तान् भक्षयन्तीम्। ततः स्थविरो नान्दस्तां पृष्टवान्—किं त्वया प्रकृतं पापं येनैवंविधं दुःखमनुभवसीति। प्रेती आह—आदित्ये हि समुद्गते न दीपेन प्रयोजनम्। भगवन्तमेतमर्थं परिपृच्छ। स तेऽस्माकीनां कर्मप्लोतिं व्याकरिष्यतीति। या श्रुत्वा अन्येऽपीह सत्त्वाः पापकात्कर्मणः प्रतिविरंस्यन्तीति। अथायुष्मानानन्दो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः ॥

तेन खलु समयेन भगवान् प्रतिसंलयनाद्व्युत्थाय चतसृणां पर्षदां मधुरमधुरं धर्मं B 275
देशयति क्षौद्रं मध्विवानेडकम्। अनेकशतानां च पर्षद्भगवतः सकाशान्मधुरमधुरं धर्मं

1 Speyer reads मन्दारकाणां against Mss

शृणोत्यनिञ्ज्यमानैरिन्द्रियैः । ततो बुद्धा भगवन्तः पूर्वालापिन एहीति स्वागतवादिनः स्मितपूर्वंगमाश्च । तत्र भगवानायुष्मन्तं नालदमामन्त्रयते– एहि नालद, स्वागतं ते, कुतस्त्वं नालद एतर्ह्यागच्छसीति । नालद आह–आगच्छाम्यहं भदन्त प्रेतचारिकायाः । तत्राहं प्रेतीमद्राक्षं यमराक्षससदृशीं रुधिरबिन्दुचितामस्थिशकलपरिवृतां श्मशानमध्य इवावस्थिताम् । आह च–

पञ्च पुत्रानहं रात्रौ दिवा पञ्च तथापरान् ।
भक्षयामि जनित्वा तान्नास्ति तृप्तिस्तथापि मे ॥ १ ॥ इति ॥
किं तया प्रकृतं पापं मर्त्यलोके सुदारुणम् ।
येन एवंविधं दुःखमनुभवति भयानकम् ॥ २ ॥ इति ॥

भगवानाह–पापकारिणी नालद सा प्रेती । इच्छसि तस्याः कर्मप्लोतिं श्रोतुम्? एवं भदन्त । तेन हि नालद शृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं नालद अतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यामन्यतमः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो
B 276 रममाणस्य परिचारयतो नैव पुत्रो न दुहिता । स करे कपोलं कृत्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः– अनेकधनसमुदितं मे गृहम् । न मे पुत्रो न दुहिता । ममात्ययात्सर्वस्वापतेयमपुत्रकमिति कृत्वा राजविधेयं भविष्यतीति । सोऽपुत्रः पुत्राभिनन्दी शिववरुणकुबेरशक्रब्रह्मादीनन्यांश्च देवताविशेषानायाचते स्म । तद्यथा–आरामदेवता वनदेवताश्चत्वरदेवताः शृङ्गाटकदेवता बलिप्रतिग्राहिका देवताः । सहजाः सहधर्मिका नित्यानुबद्धा अपि देवता आयाचते स्म । अस्ति चैष लोके प्रवादो यदायाचनहेतोः पुत्रा जायन्ते दुहितरश्चेति । तच्च नैवम् । यद्येवमभविष्यत्, एकैकस्य पुत्रसहस्रमभविष्यत्तद्यथा राज्ञश्चक्रवर्तिनः । अपि तु त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च । कतमेषां त्रयाणाम्? मातापितरौ रक्तौ भवतः संनिपतितौ, माता कल्या भवति ऋतुमती, गन्धर्वश्च प्रत्युपस्थितो भवति । एषां त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च । तस्य देवताराधनेऽपि सति न पुत्रो न दुहिता ॥

तस्यैव बुद्धिरुत्पन्ना–द्वितीयां भार्यामानयामि । कदाचित्सा सत्त्ववती स्यादिति । तेन सदृशात्कुलाद् द्वितीया भार्या आनीता । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः कालान्तरेण सा आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । तया हृष्टतुष्टप्रमुदितया स्वामिने निवेदितम्–दिष्ट्या आर्यपुत्र वर्धसे । आपन्नसत्त्वास्मि संवृत्ता । यथा च मे दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति, नियतं दारको भविष्यतीति । सोऽप्यात्तमनात्तमनाः पूर्वकायमभ्युन्नमय्य दक्षिणं बाहुमभिप्रसार्य उदानमुदानयति–अप्येवाहं चिरकालाभिलषितं

१ Compare Petavatthu, I. 6. 3

B 277 पुत्रमुखं पश्येयम् । जातो मे स्यान्नावजातः । कृत्यानि मे कुर्वीत । मृतः प्रतिबिभृयात् । दायाद्यं प्रतिपद्येत । कुलवंशो मे चिरस्थितिकः स्यात् । अस्माकं चाप्यतीतकालगतानामल्पं वा प्रभूतं वा दानानि दत्त्वा पुण्यानि कृत्वा अस्माकं नाम्ना दक्षिणामादेक्ष्यते–इदं तयोर्यत्रतत्रोपपन्नयोर्गच्छतोरनुगच्छत्विति । आपन्नसत्त्वां चैनां विदित्वोपरिप्रासादतलगतामयन्त्रितां धारयति शीते शीतोपकरणैरुष्णे उष्णोपकरणैर्वैद्यप्रज्ञप्तैराहारैर्नातितिक्तैर्नात्यम्लैर्नातिलवणैर्नातिमधुरैर्नातिकटुकैर्नातिकषायैस्तिक्ताम्ललवणमधुरकटुककषायविवर्जितैराहारैः । हारार्धहारविराजितगात्रीमप्सरसमिव नन्दनवनविचारिणीं मञ्चान्मञ्चं पीठात्पीठमनवतरन्तीमधरिमां भूमिम् । न चास्याः किंचिदमनोज्ञशब्दश्रवणं यावदेव गर्भस्य परिपाकाय ॥

ततस्तस्याः पूर्विकायाः प्रजापत्याः प्रथमपत्न्यास्तां बहुमानाल्लालितां दृष्ट्वा ईर्ष्या समुत्पन्ना । चिन्तयन्ति च–यद्येषा पुत्रं जनयिष्यति, नियतं मां बाधयिष्यति । सर्वथोपायसंविधानं कर्तव्यमिति । कामान् खलु प्रतिसेव्यमानस्य नास्ति किंचित्पापं कर्माचरणीयमिति । तया अनिष्टगतिप्रपातनमुग्धया विस्रम्भमुत्पाद्य तथाविधं गर्भशातनं द्रव्यं दत्तं येन पीतमात्रेणैव तस्यास्तपस्विन्याः स्रस्तो गर्भः । ततस्तया द्वितीयपत्न्या सर्वज्ञातीन् संनिपात्य सा प्रथमा पत्नी समनुयुज्यते–त्वया मे विस्रम्भमुत्पाद्य शातनं द्रव्यं दत्तम्, येन मे स्रस्तो गर्भ इति । ततोऽसौ प्रथमपत्नी ज्ञातिमध्ये शपथं कर्तुं प्रवृत्ता–यदि मया गर्भशातनं द्रव्यमनुप्रदत्तं स्यात्, अहं प्रेती भूत्वा जाताञ्जातान् पुत्रान् भक्षेययमिति ॥

B 278 किं मन्यसे नाल्द यासौ श्रेष्ठिभार्या, इयं सा प्रेती । यत्तया ईर्ष्याप्रकृतया गर्भशातनं दत्तं तेन प्रेतेषूपपन्ना । यत्तया मृषावादेन शपथः कृतः, तस्य कर्मणो विपाकेन रात्रिंदिवेन पञ्च पुत्रान् प्रसूय तानेव भक्षयति । तस्मात्तर्हि ते नाल्द वाग्दुश्चरितप्रहाणाय व्यायन्तव्यं यथा एवंविधा दोषा न स्युर्ये तस्याः प्रेत्याः । इत्येवं ते नाल्द शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमना आयुष्मान्नाल्दोऽन्ये च देवासुरगरुडकिन्नरमहोरगादयो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

वान्ताशा उज्झिताशाश्च खेटमूत्रोपजीविनः ।
पूयशोणितविष्ठाशा घोराः प्रकृतिदुःखिताः ॥ १ ॥ इति ॥

तस्यां च वैशाल्यामन्यतरो ब्राह्मणः । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया
B 230 सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । [1]दौर्गन्धं चास्याः काये संवृत्तम् । ततस्तेन ब्राह्मणेन नैमित्तिका आहूय पृष्टाः । ते कथयन्ति—योऽयमुदरस्थो दारकस्तस्यायं प्रभाव इति । यावदसौ नवानां मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातो दुर्वर्णो दुर्दर्शनो [2]अवकोटिमकोऽमेध्यम्रक्षितगात्रो दुर्गन्धश्च । तथाप्यसौ स्नेहपाशानुबद्धाभ्यां परमबीभत्सोऽपि मातृपितृभ्यां संवर्धितः । सोऽमेध्यस्थानेष्वेवाभिरमते संकारकूटे जम्बाले, केशांल्लुञ्चति, अमेध्यं मुखे प्रक्षिपति । तस्य बालो जाम्बाल इति संज्ञा संवृत्ता ॥

B 231 यावदसावितश्चामुतश्च परिभ्रमन् पूरणेन काश्यपेन दृष्टः । तस्यैतदभवत्—यादृशेषु स्थानेष्वयमभिरमते, नूनमयं सिद्धपुरुषः । यन्न्वहमेनं प्रव्राजयेयमिति । स तेन प्रव्राजितो नग्नः पर्यटति सत्क्रियासु च वर्तते । ततस्तेन पर्यटता वैशालीपरिखायां पञ्च प्रेतशतानि दृष्टानि । स पूर्वकर्मविपाकसंबन्धात्तां नगरपरिखामवतीर्य तैः सार्धं संगम्य समागम्य संमोदते, सखित्वं चाभ्युपगतः । यावदपरेण समयेन जाम्बालो दारकः कचित्प्रयोजनेन व्याक्षिप्तो वैशालीं प्रविष्टः । भगवांश्च तां नगरपरिखामनुप्राप्तः । ददृशुस्ते प्रेता बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्च भगवतः पादयोर्निपतिताः । भगवता उक्ताः—किं भवतां बाधत इति । ते ऊचुः—पिपासिताः स्मो भगवन्निति । ततो भगवता पञ्चभ्योऽङ्गुलिभ्योऽष्टाङ्गोपेतस्य पानीयस्य पञ्च धारा उत्सृष्टाः, येन तानि पञ्च प्रेतशतानि संतर्पितानि । ततस्ते भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसाद्य कालगताः । प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नाः ॥

धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्यकाया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते—
B 232 कुतश्च्युतः, कुत्रोपपन्नः केन कर्मणेति । ते पश्यन्ति प्रेतेभ्यश्च्युताः, प्रणीतेषु देवेषु त्रयस्त्रिंशेषूपपन्नाः, भगवतोऽन्तिके चित्तमभिप्रसाद्येति ॥ अथ प्रेतपूर्विणां देवपुत्राणामेतदभवत्—नास्माकं प्रतिरूपं स्यात्, यद्वयं पर्युषितपरिवासा भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेम । यन्नु वयमपर्युषितपरिवासा एव भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेमेति । अथ प्रेतपूर्विणो देवपुत्राश्चलविमलकुण्डलधरा हारार्धहारविराजितगात्रा मणिरत्नविचित्रमौलयः कुङ्कुमतमालपत्रस्पृक्कादिसंसृष्टगात्रास्तस्यामेव रात्रौ दिव्यानामुत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकमन्दारवाणां पुष्पाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा सर्वां कूटागारशालामुदारेणावभासेनावभास्य भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णा धर्मश्रवणाय । अथ भगवान् प्रेतपूर्विणां देवपुत्राणामाशयानुशयं

१ The correct form would be दौर्गन्ध्यं. २ अवकोटिमक comes from Pali ओकोटिमक and means ह्रस्व, deformed, misshapen.

धातु प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृतवान्, या श्रुत्वा पञ्चभिर्देवपुत्रशतैर्विंशतिशिखरसमुद्गत सत्कायदृष्टिशैल ज्ञानवज्रेण भित्वा स्रोतआपत्तिफलमनुप्राप्तम्। ते दृष्टसत्या लब्धलाभा इव वणिज, सपन्नसस्या इव कर्षका, शूरा इव निर्जितसग्रामा, सर्वरोगपरिमुक्ता इवातुरा यया विभूत्या भगवत्सकाशमागतास्तयैव विभूत्या भगवन्त त्रि प्रदक्षिणीकृत्य स्वभवन गता ॥

अथ जाम्बालो नगरपरिखामागतस्तान् प्रेतान्नाद्राक्षीत्। तत समन्वेषितुमारब्ध। स च तान् परिमार्गमाण खेदमापन्नो न च तानासादयति ॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धाना भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम्। धर्मता खलु II 283 बुद्धाना भगवता महाकारुणिकाना लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणा शमथविपश्यनाविहारिणा त्रिदमथवस्तुकुशलाना चतुरोघोत्तीर्णाना चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठिताना चतुर्षु सग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयाना पञ्चाङ्गविप्रहीणाना पञ्चगतिसमतिक्रान्ताना षडङ्गसमन्वागताना षट्पारमितापरिपूर्णाना सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकाना नवानुपूर्वविहारसमापत्तिकुशलाना दशबलबलिना दशदिक्समापूर्णयशसा दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टाना श्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोक व्यवलोक्य ज्ञानदर्शन प्रवर्तते—को हीयते, को वर्धते, क कृच्छ्रप्राप्त, क सकटप्राप्त, क सबाधप्राप्त, क कृच्छ्रसकटसबाधप्राप्त, कोऽपायनिम्न, कोऽपायप्रवण, कोऽपायप्राग्भार। कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्य कामपङ्कनिमग्नस्य हस्तोद्धारमनुप्रदद्याम्, कमार्यधनविरहितमार्यधनैश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपययम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम्। आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेला सागरो मकरालय ।
न तु वैनेयवत्साना बुद्धो वेलामतिक्रमेत् ॥ २ ॥

ततो भगवाञ्जाबालस्य कुलपुत्रस्यानुग्रहार्थं पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसघपुरस्कृतो वैशालीं पिण्डाय प्राविक्षत्। यावदनुपूर्वेण पिण्डपातमटन् B 284 वीथीमवतीर्ण। जाम्बालश्च इतस्ततोऽन्वाहिण्डमानो भगवतोऽग्रत स्थित। अथ ददर्श बुद्ध भगवन्त द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणै समलकृतमशीत्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्र व्यामप्रभालकृत सूर्यसहस्रातिरेकप्रभ जङ्गममिव रत्नपर्वत समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्त प्रसादितम्। स प्रसादजातो भगवत पादयोर्निपत्य कृतकरपुट उवाच—यदि भगवन् मादृशाना सत्त्वानामस्मिन् धर्मविनये प्रव्रज्यास्ति, लभेय स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामिति। ततो भगवान् महाकरुणापरिगतहृदय सत्त्वानामाशयानुशयज्ञस्त भव्यरूप विदित्वा गजभुजसदृश सुवर्णवर्णबाहुमभिप्रसार्येदमवोचत्—एहि भिक्षो चर ब्रह्मचर्यम्। इत्युक्तमात्रे भगवता सप्ताहावरोपितैरिव केशैर्द्वादशवर्षोपसपन्नस्येव भिक्षोरीर्यापथेन पात्रकरकव्यग्रहस्तोऽवस्थित। आह च—

एहीति चोक्तः स तथागतेन मुण्डश्च सांघाटिपरीतदेहः ।
सद्यः प्रशान्तेन्द्रिय एव तस्थावेवं स्थितो बुद्धमनोरथेन ॥ ३ ॥

ततोऽस्य भगवता मनसिकारो दत्तः। तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसन-
B 235 धर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविप्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः । सोऽर्हत्त्वप्राप्तोऽपि रूक्षेनाभिरमते । तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म—एषोऽग्रो मे भिक्षवो भिक्षूणां मम श्रावकाणां रूक्षाधिमुक्तानाम्, यदुत जाम्बालो भिक्षुरिति ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—किं भदन्त जाम्बालेन स्थविरेण कर्म कृतं येनैवंविधं दुःखमनुभवतीति । भगवानाह—जाम्बालेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययान्योघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । जाम्बालेनैव कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि अपि कल्पशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ ४ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि अस्मिन्नेव भद्रकल्पे चत्वारिंशद्वर्षसहस्रायुषि प्रजायां
B 236 क्रकुच्छन्दो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स शोभावतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । तस्यां च राजधान्यामन्यतमेन गृहपतिना विहारः कारितो यत्र नानादिग्देशवासिनो भिक्षव आगन्तव्यं गन्तव्यं वस्तव्यं च मन्यन्ते । तस्मिंश्च विहारे पृथग्जनो भिक्षुर्नैवासिकः । स चानीवातीवामत्सरी । आगन्तुकान् भिक्षून् दृष्ट्वाऽभिषज्यते, कुप्यति, व्यापद्यते, भ्रुकुटिं प्रतिनिर्मिणोति, कोपं संजनयति । ये तु तस्माद्विहाराद्भिक्षवः प्रक्रामन्ति, तान् दृष्ट्वा प्रीतिप्रामोद्यबहुलः प्रत्युद्गम्याभाषते च । यावदपरेण समयेन जनपदादर्हद्भिक्षुरागतः । स च विहारस्वाम्यनागामी । तेनासावीर्यापथेन संलक्षितोऽर्हन्निति । ततः प्रसादजातेन शोभनेन जेन्ताकस्नात्रेण चोपनिमन्त्रितः सार्धं भिक्षुसंघेन । स चावासिको भिक्षुस्तत्र नासीत् । यावद् द्वितीये दिवसे जेन्ताकस्नात्रे प्रतिपादिते भक्ते समीकृते आवासिको भिक्षुगणः । सोऽपि जेन्ताकस्नात्रं प्रविष्टः । पश्यति विहारस्वामिनमेकदाटकनियसितमागन्तुकस्य भिक्षोः परिकर्म कुर्वाणम् । ततोऽस्य मात्सर्यमुत्पन्नम् । तेन प्रदुष्टचित्तेन खरं

वाक्कर्म निश्चारितम्—वरं खलु ते भिक्षो अमेध्येन शरीरमुपलिप्तम्, न तु एवंविधस्य दानपतेः सकाशादुपस्थानं स्वीकृतमिति । ततस्तेनार्हता तूष्णीभावेनाधिवासितम्—मा हैवायं तपस्वी गाढतरस्य कर्मणो भागी भविष्यतीति । यावत्सामग्रीदेशकाले संप्राप्ते नैवासिकेन भिक्षुणा B 287 श्रुतम्—अर्हतोऽन्तिके त्वया चित्तं प्रदूषितमिति । श्रुत्वा चास्य विप्रतिसारो जातः । ततोऽर्हतो भिक्षोः पादयोर्निपत्याह—क्षमस्व आर्य यन्मया त्वयि परुषा वाग्निश्चारितेति । ततोऽर्हंस्तस्य प्रसादाभिवृद्ध्यर्थं गगनतलमभ्युद्गम्य विचित्राणि प्रातिहार्याणि विदर्शयितुमारब्धः । ततोऽस्य भूयसा विप्रतिसारः समुत्पन्नः । तेन तस्य पुरस्तात्तत्कर्म अत्ययेनादेशितं प्रकाशितमुत्तानी. कृतम्, च न चानेन शकितं नैष्ठिकं ज्ञानमुत्पादयितुम् । यावन्मरणकालसमये प्रणिधिं कर्तुमारब्धः—यन्मयाऽर्हतोऽन्तिके चित्तं प्रदूषितम्, खरं च वाक्कर्म निश्चारितम्, मा अस्य कर्मणो विपाकं प्रतिसंवेदयेयम् । यत्तु मया पठितं स्वाध्यायितं दानप्रदानानि दत्तानि संघस्य चोपस्थानं कृतम्, तस्य कर्मणो विपाकेन अनागतान् सम्यक्संबुद्धानारागयेयं मा विरागयेयमिति ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसो तेन कालेन तेन समयेनात्रासिको भिक्षुः, अयमेवासौ जाम्बालः । यदनेनार्हतोऽन्तिके खरं वाक्कर्म निश्चारितम्, अस्य कर्मणो विपाकेनानन्तं संसारे दुःखमनुभूतम् । तेनैव च कर्मावशेषेण एतर्हि पश्चिमे भवे एवं दुर्गन्धः परमदुर्गन्धोऽमेध्या- वस्करस्थाननिवासाभिप्रायः संवृत्तः । यत्पुनरनेन तत्र पठितं स्वाध्यायितं स्कन्धकौशलं धातुकौशलमायतनकौशलं प्रतीत्य समुत्पादकौशलं स्थानास्थानकौशलं च कृतम्, तेन 'B 288 मम शासने प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यन्मात्सर्यप्रहाणाय व्यायन्तव्यम् । तत्कस्य हेतोः? एते दोषा न भविष्यन्ति, ये जाम्बालस्य पृथग्जनभूतस्य । एष एव गुणगणो भविष्यति, योऽसौ तस्यैवार्हत्त्वप्राप्तस्य । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवोऽन्ये च देवासुरगरुडकिन्नरमहोरगादयो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥



षष्ठो वर्गः ।

तस्योद्दानम्—

कृष्णसर्पश्च चन्द्रश्च सालः श्रीमतिरेव च ।
वस्त्रं शुकश्च दूतश्च महिषः पोषधश्च वै ।
× × × × × हंसो भवति पश्चिमः ॥

५१ कृष्णसर्पः ।

B 289 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे । राजगृहे नगरद्वारेऽन्यतरो गृहपतिराढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । स च मत्सरी कुटुकुञ्चक आगृहीतपरिष्कारः काकायापि बलिं न प्रदातुं व्यवस्यति । स श्रमणब्राह्मणवनीपकान् दृष्ट्वा चित्तं प्रदूषयति । स्वके चोद्याने महान् हिरण्यसुवर्णस्य राशिः स्थापितः । स तत्र गृद्धोऽध्यवसितः कालगतः ॥

B 290 स कालं कृत्वा तस्यैवोपरि आशीविष उत्पन्नो महान् कृष्णसर्पो दृष्टिविषः । अथ ये तदुद्यानं जनकायाः प्रविशन्ति, तान् प्रेक्षितमात्रेण जीविताद्व्यपरोपयति । एष च शब्दो राजगृहे नगरे समन्ततो विसृतः—ये अमुकमुद्यानं प्रविशन्ति, सर्वे ते निधनमुपयान्तीति । जनकायेन च राज्ञे बिम्बिसाराय निवेदितम् ॥

अथ राज्ञो बिम्बिसारस्यैतदभवत्—कस्तं शक्ष्यति विनेतुमन्यत्र बुद्धाद्भगवत इति । अथ राजा बिम्बिसारो महाजनकायपरिवृतो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णः । एकान्तनिषण्णं राजानं बिम्बिसारं भगवान् धर्म्यया कथया संदर्शयति समादापयति समुत्तेजयति संप्रहर्षयति । अनेकपर्यायेण धर्म्यया कथया संदर्श्य समादाप्य समुत्तेज्य संप्रहर्ष्य तूष्णीम् । अथ राजा बिम्बिसार उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमिदमवोचत्—इह भगवन् राजगृहे नगरेऽमुष्मिन्नुद्याने महानाशीविषः कृष्णसर्पो दृष्टिविषः प्रतिवसति, महाजनविप्रघातं करोति । साधु भगवांस्तं विनयेदनुकम्पामुपादायेति । अधिवासयति भगवान् राज्ञो बिम्बिसारस्य तूष्णीभावेन । अथ राजा बिम्बिसारो भगवतस्तूष्णीभावेनाधिवासनां विदित्वा भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वोत्थायासनात्प्रक्रान्तः ॥

B 291 अथ भगवांस्तस्या एव रात्रेरत्ययात्पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय येन तदुद्यानं तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवता सूर्यसहस्रातिरेकप्रभाः कनकवर्णा मरीचय उत्सृष्टाः,

यैस्तदुद्यानं सर्वमवभासितम्। कल्पसहस्रपरिभाविताश्च मैत्र्यंशव उत्सृष्टाः, यैरस्य स्पृष्टमात्रं शरीरं प्रह्लादितम्। अथ स आशीविष इतश्चामुतश्च प्रेक्षितुमारब्धः—कस्य प्रभावान्मम शरीरं प्रह्लादितमिति। अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम्। प्रसन्नचित्तस्य च भगवता तन्मय्या गत्यास्तन्मय्या योन्या धर्मो देशितः—भद्रमुख त्वयैवैतद्द्रव्यमुपार्जितम्। येन त्वमाशीविषगतिमुपपादितः। साधु ममान्तिके चित्तं प्रसादय, अस्माच्च निधानाच्चित्तं विरागय। मा हैव इतः कालं कृत्वा नरकेषूपपत्स्यस इति। यदास्य भगवता जातिः स्मारिता, तदा रोदितुं प्रवृत्तः। अथ भगवांस्तस्यां वेलायां गाथे भाषते—

इदानीं किं करिष्यामि तिर्यग्योनिगतस्य ते।
अक्षणप्रतिपन्नस्य किं रोदिषि निरर्थकम्॥ १॥
साधु प्रसाद्यतां चित्तं महाकारुणिके जिने।
तिर्यग्योनिं विरागयेह ततः स्वर्गं गमिष्यसि॥ २॥ इति॥

यावद्भगवता पात्रे प्रक्षिप्य वेणुवनं नीतः। अत्रान्तरे राज्ञा मागधेन जनकायेन च श्रुतं यथासावाशीविषो भगवता विनीत इति॥

अथासावाशीविषः स्वाश्रयं जुगुप्समानोऽनाहारतां प्रतिपन्नः। भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसाद्य कालगतः, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः। धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते—कुतश्च्युतः, कुत्रोपपन्नः, केन कर्मणेति। पश्यति—आशीविषेभ्यश्च्युतः, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः, भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसाद्येति। अथाशीविषपूर्व[1]कस्य देवपुत्रस्यैतदभवत्—न मम प्रतिरूपं स्यात्, यदहं पर्युषितपरिवासो भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयम्। यन्न्वहमपर्युषितपरिवास एव भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयमिति। अथाशीविषपूर्वको देवपुत्रश्चलविमलकुण्डलधरो हारार्धहारविराजितगात्रो मणिरत्नचित्रचूडः कुङ्कुमतमालपत्रस्पृक्कादिसंसृष्टगात्रस्तस्यामेव रात्रौ दिव्यानामुत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकमन्दा[2]रवाणां पुष्पाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा सर्वं वेणुवनं कलन्दकनिवापमुदारेणावभासेनावभासयन् भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। अथ भगवानाशीविषपूर्वकस्य देवपुत्रस्याशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा आशीविषपूर्वकेण देवपुत्रेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं प्राप्तम्। स दृष्टसत्यस्त्रिरुदानमुदानयति—इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतं, न पित्रा, न राज्ञा, न देवताभिर्नेष्टेन स्वजनबन्धुवर्गेण न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यद्भगवतास्माकं कृतम्। उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि, प्रतिष्ठापिताः स्मो देवमनुष्येषु। आह च—

B 2 93

---

१ Mss. आभिमानिनम् for अव°. २ Speyer °मन्दारकाणां against Mss.

: 293 तवानुभावात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः ।
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः ॥ ३ ॥

त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः ।
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णश्च दुःखार्णवपारमस्मि ॥ ४ ॥

नरवरेन्द्र नरामरपूजित विगतजन्मजरामरणामय ।
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम् ॥ ५ ॥ इति ॥

अवनम्य ततः प्रलम्बहारः चरणौ द्वावभिवन्द्य जातहर्षः ।
परिगम्य च दक्षिणं जितारिं सुरलोकाभिमुखो दिवं जगाम ॥ ६ ॥

अथाशीविषपूर्वको देवपुत्रो वणिगिव लब्धलाभः, संपन्नसस्य इव कर्षकः, शूर इव विजितसंग्रामः, सर्वरोगपरिमुक्त इवातुरो यया विभूत्या भगवत्सकाशमुपगतस्तयैव विभूत्या तस्यामेव रात्रौ राज्ञो बिम्बिसारस्य सकाशमुपसंक्रम्य सर्वं राजकुलमुदारेणावभासेनावभास्य राजानं प्रबोध्य एतदुवाच—महाराज उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ, किं स्वपिषीति । अथ राजा प्रबुद्धः पश्यति तमुदारमवभासं तं च देवपुत्रम् । दृष्ट्वा प्रीतमनास्तं पप्रच्छ कस्त्वमिति । स कथयति—अहं स दृष्ट्याशीविषो भगवता तत्रोद्याने विनीतः, कालं कृत्वा प्रणीतेषु देवेषु
B 234 त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः । भगवन्तं च मे पर्युपास्य सत्यदर्शनं कृतम् । स इदानीं प्रबोधयामि । गत्वा तदुद्यानमस्मुकस्मात्प्रदेशान्महानिधानमुत्पाट्य मम नाम्ना भगवन्तं सश्रावकसंघं भोजय, दक्षिणादेशनां च कारयेति । अधिवासयति राजा बिम्बिसारो देवपुत्रस्य तूष्णीभावेन । अथाशीविषपूर्वको देवपुत्रो राज्ञस्तूष्णीभावेनाधिवासनां विदित्वा तत्रैवान्तर्हितः ॥

अथ स राजा बिम्बिसारस्तस्यामेव रात्रौ मागधानां पौरजानपदानां निवेद्य तदुद्यानं गत्वा निधानमुत्पाट्य भगवन्तं सश्रावकसंघं त्रैमास्यं भोजयित्वा भगवन्तं पप्रच्छ—कानि कानि भगवन्नाशीविषपूर्वकेण देवपुत्रेण कर्माणि कृतानि, येनाशीविषेषूपपन्नः ? कानि कर्माणि कृतानि येन देवेषूपपन्नः, सत्यदर्शनं च कृतमिति ? भगवानाह—यत्तेनातिमात्रो लोभ उत्पादितः, श्रमणब्राह्मणवनीपकानां चान्तिके चित्तं प्रदूषितम्, तेनाशीविषेषूपपन्नः । यन्ममान्तिके चित्तं प्रसादितम्, तेन देवेषूपपन्नः । काश्यपे च सम्यक्संबुद्धे उपासकभूतेन शरणगमनशिक्षापदग्रहणं कृतम्, तेन सत्यदर्शनं कृतमिति । तस्मात्तर्हि महाराज मात्सर्यप्रहाणाय व्यायन्तव्यम् । एते दोषा न भविष्यन्ति ये आशीविषस्य । एष एव गुणगणो भविष्यति, यस्तस्यैव देवपुत्रस्येत्येवं ते महाराज शिक्षितव्यम् । अथ राजा बिम्बिसारो भगवतो भाषितमभिनन्द्यानुमोद्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वोत्थायासनात्प्रक्रान्तः ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवोऽन्ये च देवासुरगरुडकिन्नरमहोरगादयो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

५२ चन्द्रः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः B 295 पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । श्रावस्त्यामन्यतमः कर्षको ब्राह्मणः । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः सर्वजनमनोनयनप्रह्लादनकरः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य जातौ सर्वलोकानां नयनप्रह्लादनम्, तस्माद्भवतु अस्य दारकस्य चन्द्र इति नामेति । [illegible] च तेन ब्राह्मणेन कृच्छ्रेण लब्धः । न चास्यान्यः पुत्रो न दुहिता ॥

स उन्नीतो वर्धितो महान् संवृत्तः । स सर्वलोकप्रह्लादनकरत्वाद्ब्राह्मणगृहपतिभिः कृत्स्नं नगरमन्वाहिण्ड्यत इति । स ब्राह्मणस्तस्मिन् भूयस्या मात्रयाध्यवसितो नित्यमेव क्रम- B 296 स्थानशय्यासु संरक्षणपरोऽवतिष्ठते । तस्य च ब्राह्मणस्यानाथपिण्डदसमीपे गृहम् । अथ स ब्राह्मणदारकोऽनाथपिण्डदसंसर्गाज्जेतवनं गत्वा बुद्धवचनं शृणोति । तेन भगवच्छासने प्रसादः प्रतिलब्धः । स चाल्पायुष्कः कालं कृत्वा प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः ॥

धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते—कुतश्च्युतः, कुत्रोपपन्नश्च, केन कर्मणेति । पश्यति मनुष्येभ्यश्च्युतः, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः, भगवतोऽन्तिके चित्तमभिप्रसाद्येति । अथ ब्राह्मणपूर्विणो देवपुत्रस्यैतदभवत्—न मम प्रतिरूपं स्यात्, यदहं पर्युषितपरिवासो भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयम् । यन्न्वहमपर्युषितपरिवास एव भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयमिति । अथ ब्राह्मणपूर्वको देवपुत्रश्चलविमलकुण्डलधरो हारार्धहारविराजितगात्रो मणिरत्नविचित्रचूडः कुङ्कुमतमालपत्रस्पृक्कादिसंसृष्टगात्रस्तस्यामेव रात्रौ दिव्यानामुत्पलकुमुदपुण्डरीकमन्दारवाणां पुष्पाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा सर्वं जेतवनमुदारेणावभासेनावभास्य भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । अथ भगवान् ब्राह्मणपूर्वकस्य देवपुत्रस्याशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा ब्राह्मणपूर्वकेण देवपुत्रेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं प्राप्तम् । स दृष्टसत्यस्त्रिरुदानमुदानयति— B 297 इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतं न पित्रा न राज्ञा न देवताभिर्नेष्टेन स्वजनबन्धुवर्गेण न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यद्भगवतास्माकं कृतम् । उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि, प्रतिष्ठापिताः स्मो देवमनुष्येषु । आह च—

त्वदनुभावात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः ।
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः ॥ १ ॥
त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः ।
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णश्च दुःखार्णवपारमस्मि ॥ २ ॥
नरवरेन्द्र नरामरपूजित विगतजन्मजरामरणामय ।
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम् ॥ ३ ॥ इति ॥
अवनम्य ततः प्रलम्बहारश्चरणौ द्वावभिनन्द्य जातहर्षः ।
परिगम्य च दक्षिणं जितारिं सुरलोकाभिमुखो दिवं जगाम ॥ ४ ॥

अथ ब्राह्मणपूर्वको देवपुत्रो वणिगिव लब्धलाभः, सस्यसंपन्न इव कर्षकः, शूर इव जितसंग्रामः, सर्वरोगपरिमुक्त इवातुरो यया हि विभूत्या भगवत्सकाशमागतस्तयैव विभूत्या स्वभवनं गतः ॥

भिक्षवः पूर्वरात्रापररात्रं जागरिकायोगमनुयुक्ता विहरन्ति । तैर्दृष्टो भगवतोऽन्तिके
B 293 उदारोऽवभासः । यं दृष्ट्वा संदिग्धा भगवन्तं पप्रच्छुः—किं भगवन् अस्यां रात्र्यां भगवन्तं दर्शनाय ब्रह्मा सहांपतिः शक्रो देवेन्द्रश्चत्वारो लोकपाला उपसंक्रान्ताः ? भगवानाह—न भिक्षवो ब्रह्मा सहांपतिर्न शक्रो देवेन्द्रो नापि चत्वारो लोकपाला मां दर्शनायोपसंक्रान्ताः, अपि योऽसावेकपुत्रकोऽस्य ब्राह्मणस्य पुत्रोऽल्पायुष्कः कालगतः, स ममान्तिके चित्तमभिप्रसाद्य प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः, सोऽस्यां रात्रौ मत्सकाशमुपसंक्रान्तः । तस्य मया धर्मो देशितः, दृष्टसत्यश्च स्वभवनं गतः ॥

अत्र चान्तरे स ब्राह्मणस्तमेकपुत्रकमिष्टं कान्तं प्रियं मनापं क्षान्तमप्रतिकूलं श्मशाने निर्हृत्योत्सङ्गे कृत्वा करुणकरुणं विलपन् कथयति—हा पुत्रक हा एकपुत्रकेति । ज्ञातयः सुबहूनि शोकविनोदनं कुर्वाणा न शक्नुवन्त्युत्थापयितुम् । स काककुररश्वशृगालगृध्रपरिवृतः प्रकीर्णकेशाभिः स्त्रीभिरनुगतो महाजनकायेन चोद्वीक्ष्यमाणस्तिष्ठति । ततोऽस्य पुत्रो देवभूतः पितरं परिदेवमानं दृष्ट्वा कारुण्यादाकम्पितहृदयः पितुः शोकविनोदनार्थमृषिवेषधारिणमात्मानमभिनिर्माय श्मशानसमीपे पञ्चतपावस्थितः । अथ स ब्राह्मणस्तमृषिं पप्रच्छ—भो महर्षे अनेन तपसा किं प्रार्थयस इति । ऋषिराह—राज्यं प्रार्थये, सौवर्णश्च मे रथः स्यान्नानारत्नविचित्रः, सूर्याचन्द्रमसौ रथचक्रे स्याताम्, चत्वारश्च लोकपालाः पुरस्तान्नयेयुः । सोऽहं तं रथमभिरुह्येमां महापृथिवीमन्वाहिण्डेयेति । ब्राह्मणः कथयति—

B 294 यदि वर्षशतं पूर्णं तपिष्यसि निरन्तरम् ।
न लप्स्यसेऽपि तत्स्थानं परमन्तपसापि हि ॥ ५ ॥ इति ॥

ऋषिः कथयति—त्वं च पुनरनेन मृतकुणपेनाशुचिना परमदुर्गन्धेन शवेन काष्ठभूतेन किं प्रार्थयस इति । ब्राह्मणः प्राह—प्रियो मे एकपुत्रकः कालगतः, तं प्रार्थय इति । ऋषिराह—

यदि वर्षशतं पूर्णं रोदिष्यसि निरन्तरम्।
न लप्स्यसेऽपि तं पुत्रं रुदितेन हि किं तव ॥ ६ ॥ इति ॥

ततस्तस्य ब्राह्मणस्य भूतमृषिवचनमवगम्य प्रसादो जातः। प्रसादजातश्चाह—कस्त्वमिति। तत ऋषिस्तं वेषमन्तर्धाप्य स्ववेषेण स्थित्वा पितरमाह—अहं ते स एकपुत्रको B 300 भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसाद्य कालगतः। प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः। तव शोकविनोदनार्थमिहागतः। एहि त्वं तात बुद्धं भगवन्तं शरणं गच्छ, अप्येव त्वमपि संसारसमतिक्रामं कुर्या इति ॥

अथ स ब्राह्मणो मृतशरीरमपहाय येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। तस्मै भगवता चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा तेन ब्राह्मणेन विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं प्राप्तम्। स लब्धोदयो लब्धलाभो भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य प्रक्रान्तः ॥

ततो भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—पश्य भगवन्, यावदनेन देवपुत्रेणायं पिता शोकं विनोद्य सत्यदर्शने प्रतिष्ठापित इति। भगवानाह—किमत्र भिक्षव आश्चर्यं यदनेनैतर्हि दृष्टसत्येन पिता परित्रातः। यत्त्वनेन अतीतेऽध्वनि पृथग्जनेन सता यावत्त्रिरपि पिता जीविताद् व्यवरोप्यमाणः परित्रातः। तच्छृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यामन्यतमः पारदारिकः। तस्य पुत्रो भद्रः कल्याणाशयोऽतीव लोकस्याभिमतः। यावदस्य पित्रा चौर्यं कृतम्। ततो राज्ञा वध्यतामित्याज्ञप्तम्। ततः पुत्रेण यावत्त्रिरपि राजानं विज्ञाप्य इष्टेन जीवितेनाच्छादितः ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन पारदारिक B 301 आसीत्, अयं स ब्राह्मणः। पारदारिकपुत्रोऽयमेव ब्राह्मणदारकः ॥

भिक्षव ऊचुः—किं कर्म कृतं येन पितापुत्राभ्यां सत्यदर्शनं कृतमिति। भगवानाह—काश्यपे सम्यक्संबुद्धे उपासकभूताभ्यां शरणगमनशिक्षापदग्रहणं कृतम्। तेनेदानीं सत्यदर्शनं कृतम्। तस्मात्तर्हि भिक्षवः सर्वसंस्कारा अनित्याः, सर्वधर्मा अनात्मानः, शान्तं निर्वाणमिति निर्वाणे यत्नः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवोऽन्ये च देवासुरकिन्नरगरुडमहोरगादयो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

५३ सालः ।

B 302 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु पुनः समयेन श्रावस्त्यां सालभञ्जिका नाम पर्व[1] प्रत्युपस्थितम् । तत्रानेकानि प्राणिशतसहस्राणि संनिपत्य सालपुष्पाण्यादाय क्रीडन्ति रमन्ते परिचारयन्ति । यावदन्यतरा श्रेष्ठिदारिका सालपुष्पाण्यादाय श्रावस्तीं प्रविशति । भगवांश्च भिक्षुगणपरिवृतः श्रावस्तीं पिण्डाय चरित्वा निर्गच्छति । ददर्श सा दारिका बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्राति-
B 303 रेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । दृष्ट्वा च पुनः प्रसादजातया भगवान् सालपुष्पैरवकीर्णः । ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रतिनिवृत्ता—भूयोऽन्यानि गृहत्वार्थे आनेष्यामीति । यावदसौ सालवृक्षमधिरूढा पतिता । भगवतः कृतोपस्थाना कालगता प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्ना यावत्सालपुष्पविमानालंकृता देवसमितिमुपसंक्रान्ता ॥

तस्मिंश्च काले शक्रो देवेन्द्रः सुधर्मायां देवसभायां देवगणस्य मध्ये बुद्धस्य वर्णं भाषते, धर्मस्य संघस्य च वर्णं भाषते । ददर्श शक्रो देवेन्द्रस्तां देवकन्यां सालपुष्पविमानालंकृतामुत्तमकुशलमूलाम् । दृष्ट्वा च गाथया प्रत्यभाषत—

गात्रं केन विमृष्टकाञ्चननिभं पद्मोत्पलाभं तव
गात्रश्रीरतुला कृतेयमिह ते देहात्प्रभा निःसृता ।
वक्त्रं केन विबुद्धपद्मसदृशं चामीकराभं तव
ब्रूहि त्वं मम देवते फलमिदं यत्कर्मजं भुज्यते ॥ १ ॥

देवता प्राह—

सश्रावको नरादित्य आकीर्णो वरलक्षणैः ।
तत्कर्म कुशलं कृत्वा राजतेऽभ्यधिकं मम ।
जलजेन्दुविशुद्धाभं वदनं कान्तदर्शनम् ॥ २ ॥

शक्रः प्राह—

अहो गुणमयं क्षेत्रं सर्वदोषविवर्जितम् ।
यत्र न्यस्तं त्वया बीजमिदं स्वर्गोपपत्तये ॥ ३ ॥

---

1 Mss. पर्वनं, पर्वतं for पर्व which Speyer has adopted on the strength of दिव्यावदान.

को नार्चयेत्प्रवरकाञ्चनराशिगौरं B 304
बुद्धं विशुद्धकमलायतपत्रनेत्रम् ।
यत्राधिकारजनितानि वराङ्गनानां
रेजुर्मुखानि कमलायतलोचनानि ॥ ४ ॥

धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा अचिरोपसंपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते–कुतश्च्युतः, कुत्रोपपन्नः, केन कर्मणेति । सा पश्यति–मनुष्येभ्यश्च्युता, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्ना, भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसाद्येति । अथ तस्या देवकन्याया एतदभवत्–न मम प्रतिरूपं स्याद्यदहं पर्युषितपरिवासा भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयम् । यन्न्वहमपर्युषितपरिवासा एव भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयमिति । अथ सा देवकन्या चलविमलकुण्डलधरा हारार्धहारविराजितगात्री मणिरत्नविचित्रचूडा कुङ्कुमतमालपत्रस्पृक्कादिसंसृष्टगात्री अनेकदेवताशतसहस्रपरिवृता तेनैव सालपुष्पविमानेन सह भगवत्सकाशमुपसंक्रान्ता । भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णा धर्मश्रवणाय । अथ भगवांस्तस्या देवताया आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा तया देवकन्यया विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम् । सा दृष्टसत्या त्रिरुदानमुदानयति–इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतं, न पित्रा, न देवताभिर्न राज्ञा नेष्टेन स्वजनबन्धुवर्गेण, न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यद्भगवतास्माकं कृतम्। उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि, प्रतिष्ठापिताः स्मो देवमनुष्येषु । आह च–

तवानुभावात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः । B 305
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः ॥ ५ ॥

त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः ।
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णा च दुःखार्णवपारमस्मि ॥ ६ ॥

नरवरेन्द्र नरामरपूजित विगतजन्मजरामरणामय ।
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम् ॥ इति ॥ ७ ॥

अवनम्य ततः प्रलम्बहारा चरणौ द्वावभिवन्द्य जातहर्षा ।
परिगम्य च दक्षिणं जितारिं सुरलोकाभिमुखी दिवं जगाम ॥ ८ ॥

अथासौ देवकन्या वणिगिव लब्धलाभः, सस्यसंपन्न इव कर्षकः, शूर इव विजितसंग्रामः, सर्वरोगपरिमुक्त इवातुरो यया विभूत्या भगवत्सकाशमागता, तयैव विभूत्या स्वभवनं गता ॥

क्रियाकारश्च कारितो न केनचित्तथागतस्तूपे काराः कर्तव्या इति । यदा पञ्चदश्यां प्रवारणा संवृत्ता, तदा तत्र केशनखस्तूपे न कश्चित्संमार्जनं दीपधूपपुष्पदानं वा कुरुते । ततोऽन्तः-पुरिकाः केशनखस्तूपं तथाविधं राजानं च बिम्बिसारमनुस्मृत्य करुणकरुणं रोदितुमारब्धाः— हा कष्टं धर्मराजवियोगाद्वयं पुण्यात्प्रहीणा इति । तत्र च श्रीमती नामान्तःपुरिका । सा स्वकं जीवितमगणयित्वा बुद्धगुणांश्चानुस्मृत्य केशनखस्तूपं संमृज्य दीपमालामकार्षीत् । याव-दजातशत्रुरुपरिप्रासादतलगतः तमुदारमवभासं दृष्ट्वा पप्रच्छ किमिदमिति । यावदन्यया कथितम्—श्रीमत्या केशनखस्तूपे दीपमाला कृतेति । ततः श्रीमतीमाहूय कथयति—किमर्थं राजशासनमतिक्रमसीति । सा कथयति—यद्यपि मया तव शासनमतिक्रान्तम्, किं तु धर्मराजस्य B 309 मया बिम्बिसारस्य शासनं नातिक्रान्तमिति । ततस्तेन कुपितेन चक्रं क्षिप्त्वा जीविताद् व्यवरोपिता । सा भगवति प्रसन्नचित्ता कालगता प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्ना ॥

तत्र काले देवसमितिरुपस्थिता । अथ श्रीमती देवकन्या समन्तयोजनं दिव्यप्रभा-मण्डलावभासिता देवसमितिमुपसंक्रान्ता । ततः शक्रो देवेन्द्रस्तमुदारमवभासं दिव्यां च प्रभां समन्तयोजनां दृष्ट्वा पप्रच्छ—

गात्रं केन विमृष्टकाञ्चननिभं पद्मोत्पलाभं तव
गात्रश्रीरतुला कृतेयमिह ते देहाप्रभा निःसृता ।
वक्त्रं केन विबुद्धपद्मसदृशं चामीकराभं तव
ब्रूहि त्वं मम देवते फलमिदं यत्कर्मजं भुज्यते ॥ १ ॥

देवता प्राह—

त्रैलोक्यनाथं जगतः प्रदीपं निरीक्ष्य बुद्धं वरलक्षणाढ्यम् ।
चकार दीपं वदतां वरस्य तमोनुदं क्लेशतमोनुदस्य ॥ २ ॥
दृष्ट्वा प्रभां चन्द्रमरीचिवर्णां चकार भावेन मुनौ प्रसादम् ।
प्रभां च हर्षात्समुदीक्ष्य शास्तुश्चक्रे प्रणामं वदतां वरस्य ॥ ३ ॥
तत्कर्मणा[1] श्रिया देहं राजतेऽभ्यधिकं मम ।
जलजेन्दुविशुद्धाभं वदनं कान्तदर्शनम् ॥ ४ ॥

शक्रः प्राह— II 310

अहो गुणमयं क्षेत्रं सर्वदोषविवर्जितम् ।
यत्र न्यस्तं त्वया बीजमिदं स्वर्गोपपत्तये ॥ ५ ॥

१ Speyer : तत्कर्मणः against Mss.

को नार्चयेत्प्रवरकाञ्चनराशिगौरं
बुद्धं विशुद्धकमलायतपत्रनेत्रम् ।
यत्राधिकारजनितानि वराङ्गनानां
रेजुर्मुखानि कमलायतलोचनानि ॥ ६ ॥

धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते—कुतश्च्युतः, कुत्रोपपन्नः, केन कर्मणेति । सा पश्यति—मनुष्येभ्यश्च्युता, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्ना, भगवतोऽन्तिके चित्तमभिप्रसाद्येति । अथ श्रीमत्या देवकन्याया एतदभवत्—न मम प्रतिरूपं स्याद्यदहं पर्युषितपरिवासा भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयम् । यन्न्वहमपर्युषितपरिवासा एव भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयमिति । अथ श्रीमती देवकन्या दिव्यप्रभावभासपरिवेष्टिता दिव्यानामुत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकमन्दारवाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा सर्वं वेणुवनं कलन्दकनिवापमुदारेणावभासेनावभास्य भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णा धर्मश्रवणाय ॥

अथ भगवाञ्छ्रीमत्या देवकन्याया आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा श्रीमत्या देवकन्यया विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं प्राप्तम् । सा दृष्टसत्या त्रिरुदानमुदानयति—इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतं, न पित्रा, न राज्ञा, न देवताभि-
B 311 र्नेष्टेन स्वजनबन्धुवर्गेण, न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यद्भगवतास्माकं कृतम् । उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि, प्रतिष्ठापिताः स्मो देवमनुष्येषु । आह च—

तवानुभावात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः ।
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः ॥ ७ ॥
त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः ।
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णा च दुःखार्णवपारमस्मि ॥ ८ ॥
नरवरेन्द्र नरामरपूजित विगतजन्मजरामरणामय ।
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम् ॥ ९ ॥
अवनम्य ततः प्रलम्बहारा चरणौ द्वावभिवन्द्य जातहर्षा ।
परिगम्य च दक्षिणं जितारिं सुरलोकाभिमुखी दिवं जगाम ॥ १० ॥

अथ श्रीमती देवकन्या वणिगिव लब्धलाभः, सस्यसंपन्न इव कर्षकः, शूर इव जितसंग्रामः, सर्वरोगविमुक्त इवातुरः, यया विभूत्या भगवत्सकाशमागता, तयैव विभूत्या स्वभवनं गता ॥

भिक्षवः पूर्वरात्रापररात्रं जागरिकायोगमनुयुक्ता विहरन्ति । तैर्दृष्टो भगवतोऽन्तिके
उदारोऽवभासः । यं दृष्ट्वा संदिग्धा भगवन्तं पप्रच्छुः—किं भगवन्निमां रात्रिं ब्रह्मा सहांपतिः
शक्रो देवेन्द्रश्चत्वारो लोकपाला भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रान्ताः ? भगवानाह—न भिक्षवो
ब्रह्मा सहांपतिर्न शक्रो देवेन्द्रो नापि चत्वारो लोकपाला मां दर्शनायोपसंक्रान्ताः ।
अपि तु राज्ञो बिम्बिसारस्य श्रीमती नामान्तःपुरिका स्वजीवितमगणयित्वा बुद्धगुणांश्चानुस्मृत्य B 312
तथागतस्य केशनखस्तूपे दीपमालां कृतवती । ततो राज्ञा अजातशत्रुणा कुपितेन जीवि-
ताद् व्यवरोपिता । सा ममान्तिके चित्तं प्रसाद्य कालगता प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्ना ।
सा अस्यां रात्रौ मत्सकाशमुपसंक्रान्ता । तस्या मया धर्मो देशितः, दृष्टसत्या च स्वभवनं गता ।
तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यं यच्छास्तारं सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः
पूजयिष्यामः । शास्तारं सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वोपनिश्रित्य विहरिष्यामः । इत्येवं
वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

५५ वस्त्रम् ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 313
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहो-
रगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्यय-
भैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । यदा
अनाथपिण्डदेन गृहपतिना बुद्धप्रमुखाय भिक्षुसंघाय जेतवनं निर्यातितम्, क्रमेण (च)
कोटिशतं भगवच्छासने दत्तम्, तदा तस्य बुद्धिरभवत्—किमत्राश्चर्यं यदहं दानानि
ददामि, पुण्यानि वा करोमि, यन्वहं दरिद्रजनानुग्रहार्थं श्रावस्तीनिवासिनो जनकाया-
च्छन्दकभिक्षणं कृत्वा भगवन्तं सश्रावकसंघमुपतिष्ठेयम् । एवं मे महाजनानुग्रहः कृतो
भविष्यति, बहु चानेन पुण्यं प्रसूतं भविष्यतीति । ततोऽनाथपिण्डदेन गृहपतिना एष
वृत्तान्तो राज्ञे निवेदितः । राज्ञा सर्वस्यां श्रावस्त्यां घण्टावघोषणं कारितम्—शृण्वन्तु भवन्तः
श्रावस्तीनिवासिनः पौराः । अथ सप्तमे दिवसे अनाथपिण्डदो गृहपतिर्हस्तिस्कन्धाभिरूढ- B 314
स्तथागतस्य सश्रावकसंघस्यार्थाय च्छन्दकभिक्षणं कर्तुकामः । यस्य वो यन्मात्रं परित्यक्तं
तदनुप्रदातव्यमिति । यावत्सप्तमे दिवसे अनाथपिण्डदो गृहपतिर्हस्तिस्कन्धाभिरूढस्तथा-
गतस्य सश्रावकसंघस्यार्थाय च्छन्दकभिक्षणं कर्तुं प्रवृत्तः । तत्र येषां यन्मात्रो विभवस्ते तन्मात्रं
दातुं प्रवृत्ताः । केचिद्धारं प्रयच्छन्ति, केचित्कटकम्, केचित्केयूरम्, केचिज्जातरूपमालाम्,

---

[1] Some Mss. read here: केचिद्दर्पं प्रयान्ति, केचित्कटकटं, i. e., some were delighted and others murmered, which is clearly an interpolation, not supported by chinese version. दर्प is mentioned as an ornament.

केचिदङ्गुलिमुद्राम्, केचिन्मुक्ताहारम्, केचिद्धिरण्यम्, केचित्सुवर्णम्, केचिदन्तशः कार्षापणम् । गृहपतिरपि परानुग्रहार्थं प्रतिगृह्णाति ॥

यावदन्यतमा स्त्री परमदरिद्रा । तया त्रिभिर्मासैः कृच्छ्रेण पटक उपार्जितः । सा तं पटकं प्रावृत्य वीथीमवतीर्णा । अनाथपिण्डदश्च तया दूरत एवागच्छन् शङ्खपटहैर्बोध्यमानैरवलोकितः । तयान्यतम उपासकः पृष्टः—यदि तावदयं गृहपतिराढ्यो महाधनो महाभोगोऽन्तर्भूमौ निगूढान्यपि निधानानि पश्यति, कस्मादयं परकुलेभ्यो भैक्ष्यमटतीति । सा उपासकेनोक्ता—परानुग्रहार्थम् । येऽसमर्था भगवन्तं सश्रावकसंघं भोजयितुम्, तेषामर्थेऽनुग्रहं करोति । कथं बहवः समेता भगवन्तं प्रतिपादयेयुरिति । ततस्तस्या दारिकाया बुद्धिरुत्पन्ना—अहं तावदकृतपुण्या, न मे शक्तिरस्ति, यदहमेकाकिनी भगवन्तं सश्रावकसंघं भोजनेन प्रतिपादयेयम् । यन्न्वहमत्र किंचिदनुप्रदद्यामिति । सा स्वकं विभवमवलोकयन्ती न किंचित्पश्यति ऋते पटकात् । सा चिन्तयितुं प्रवृत्ता—यद्यहमिहस्थैव पटकं प्रदास्यामि, नग्ना भविष्यामि । यन्न्वहं शरणपृष्ठमभिरुह्य पटकं क्षिपेयमिति । ततः सा शरणपृष्ठमभिरुह्य स्वशरीरात्पटकमवनीय अनाथपिण्डदस्योपरि क्षिप्तवती । सा गृहपतिना संलक्षिता—नूनमस्या एष एव विभवो यदनया शरणसंस्थया क्षिप्तमिति । तेन स्वपौरुषेयाणामाज्ञानुप्रदत्ता—गच्छन्तु भवन्तः, अवलोकयन्तु केनायं पटकः क्षिप्त इति । तैरवलोकिता यावदुत्कुटुका निषण्णा । ततस्तैः पृष्टा । तया चोक्तम्—यो मे विभव आसीत्स मे भगवद्गुणानुकीर्तनं प्रतिश्रुत्य दारिद्र्यभयभीतया तथागतप्रमुखे भिक्षुसंघे दत्त इति । ततस्तैरनाथपिण्डदाय निवेदितम् ।

B 316 ततोऽनाथपिण्डदेन गृहपतिना परमविस्मयजातेन सा दारिका विचित्रैर्वस्त्रैराभरणैश्चाच्छादिता । सा चाल्पायुष्का कालगता प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्ना । उपपन्नमात्रायास्तस्यास्तथाविधानि वस्त्राणि प्रादुर्भूतानि, न कस्यचिदन्यस्य देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा ॥

धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते—कुतश्च्युतः, कुत्रोपपन्नः, केन कर्मणेति । सा पश्यति मनुष्येभ्यश्च्युता, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्ना, भगवतः पटकप्रदानादिति । ततो वस्त्रदायिका देवकन्या चलविमलकुण्डलधरा हारार्धहारविभूषितगात्री मणिरत्नविचित्रचूडा कुङ्कुमतमालपत्रस्पृक्कादिसंसृष्टगात्री तामेव रात्रिं दिव्यानामुत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकमन्दारवाणां पुष्पाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा सर्वं जेतवनमुदारेणावभासेनावभास्य भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णा धर्मश्रवणाय । अथ भगवान् पटकप्रदायिकाया देवकन्याया आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा पटकप्रदायिकया देवकन्यया विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम् । सा दृष्टसत्या त्रिरुदानमुदानयति—इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतं न पित्रा न राज्ञा न देवताभिर्नेष्टेन स्वजनबन्धुवर्गेण न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यदस्माकं

कृतम् । उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः पिहितान्यपायद्वाराणि, विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि, प्रतिष्ठापिताः स्मो देवमनुष्येषु । आह च—

तवानुभावात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः । B 317
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः ॥ १ ॥
त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः ।
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णा च दुःखार्णवपारमस्मि ॥ २ ॥
नरवरेन्द्र नरामरपूजित विगतजन्मजरामरणामय ।
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम् ॥ ३ ॥ इति ॥
अवनम्य ततः प्रलम्बहारा चरणौ द्वावभिवन्द्य जातहर्षा ।
परिगम्य च दक्षिणं जितारिं सुरलोकाभिमुखी दिवं जगाम ॥ ४ ॥

अथ पटप्रदायिका देवकन्या वणिगिव लब्धलाभः, सस्यसंपन्न इव कर्षकः, शूर इव विजितसंग्रामः, सर्वरोगपरिमुक्त इवातुरो यया विभूत्या भगवत्सकाशमागता तयैव विभूत्या स्वभवनं गता ॥

भिक्षवः पूर्वरात्रापररात्रं जागरिकायोगमनुयुक्ता विहरन्ति । तैर्दृष्टो भगवतोऽन्तिके उदारोऽवभासः । यं दृष्ट्वा संदिग्धा भगवन्तं पप्रच्छुः— किं भगवन्नस्यां रात्रौ भगवन्तं दर्शनाय ब्रह्मा सहांपतिः शक्रो देवेन्द्रश्चत्वारो लोकपाला उपसंक्रान्ताः? भगवानाह — न भिक्षवो ब्रह्मा सहांपतिर्न शक्रो देवेन्द्रो नापि चत्वारो लोकपाला मां दर्शनायोपसंक्रान्ताः । या दरिद्रदारिका अनाथपिण्डदस्य गृहपतेश्छन्दकभिक्षणं कुर्वाणस्य पटं दत्त्वा कालगता, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्ना, सा इमां रात्रिं मत्सकाशमुपसंक्रान्ता । तस्या मया धर्मो B 318
देशितः । सा प्रसादजाता प्रक्रान्ता, दृष्टसत्या च स्वभवनं गता । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यम्, यद्बुद्धधर्मसंघेषु कारान् करिष्यामो नापकारान् । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

५६ शुकः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 319
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । राजगृहे नगरे राजा बिम्बिसारो राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नमखिलमकण्टकम् । एकपुत्रकमिव राज्यं पालयति । स च राजा श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय

आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः । यावदसौ भगवद्दर्शनोत्कण्ठितः करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः । ततोऽमात्यैरुक्तः—किमर्थं देव शोकः क्रियत इति । राजोवाच—चिरदृष्टो मे सुगतः । सोऽहमाकाङ्क्षामि भगवतो दर्शनमिति । अश्रौषीद्भगवान् दिवाविहारोपगतो दिव्येन श्रोत्रेण विशुद्धेनातिक्रान्तमानुषेण राजा बिम्बिसार उत्कण्ठित इति । अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम् । धर्मता खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपाद-
B 320 चरणतलसुप्रतिष्ठितानां चतुर्षु संग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टानाम्—त्रिरात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः, कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्य कामपङ्कनिमग्नस्य हस्तोद्धारमनुप्रदद्याम्, कमार्यधनविरहितमार्यधनैश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम् । आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः ।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत् ॥ १ ॥

ततो भगवान् राज्ञो बिम्बिसारस्यानुग्रहार्थं त्रयाणां वार्षिकाणां मासानामत्ययात्कृतचीवरो निष्ठितचीवरः समादाय पात्रचीवरं जनपदचारिकां प्रक्रान्तः । अनुपूर्वेण चारिकां चरन्नन्यतमं वनषण्डमनुप्राप्तः । तत्र च वनषण्डे मनुष्यप्रलापी शुकः प्रतिवसति । तेन भगवान् दूरत एव दृष्टः । ततस्त्वरितत्वरितं भगवन्तमुवाच—एतु भगवान्, स्वागतं भगवते, क्रियतामस्माकमनुग्रहः, इहैव वनषण्डे एकां रात्रिं प्रतिवसेति । ततो भगवाञ्छुकस्यानुग्रहार्थं यत्र वृक्षे शुकस्यालयस्तत्र तृणसंस्तरं संस्तीर्य पर्यङ्केण निषण्णः, अन्यवृक्षेषु
B 321 महाश्रावकाः, ततः शुकः कृत्स्नां रात्रिमितस्ततस्तं वनषण्डं पर्यटति, मा हैव कश्चिद्भगवन्तं सश्रावकसंघं विहेठयिष्यतीति मनुष्यो वा अमनुष्यो वा यक्षो वा राक्षसो वा श्वापदश्चण्डशृङ्गो वेति । ततः प्रभातायां रजन्यां भगवन्तं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य क्षमयितुमारब्धः । क्षमस्व भगवंस्तिर्यग्योनिगतोऽहम्, नास्ति मे विभवो येन भगवन्तमभ्यर्चयेयम्, अपि त्वहमतो गच्छामि । राज्ञो बिम्बिसारस्य भगवत आगमनं निवेदयामीति । एवमस्त्विति । यावदसौ राज्ञः सकाशं संप्रस्थितः । अनुपूर्वेण राज्ञः सकाशमनुप्राप्तः । तस्मिंश्च समये राजा उपरिप्रासादतलगतो निष्पुरुषेण तूर्येण क्रीडति रमते परिचारयति । ततः शुको मानुषप्रलापी राजानमुवाच । भो राजन्, दिदिसं ते भवतु—भगवान् सश्रावक-

संघस्तत्र विजितमनुप्राप्तः। तदर्हति देवो भक्तं सज्जीकर्तुमिति। ततो राजा त्वरितत्वरितं प्रासादादवतीर्यामात्यगणपरिवृतो भगवतोऽर्धेन आसनकानि प्रज्ञप्य छत्रध्वजपताकाभिर्विचित्रैश्च गन्धपुष्पधूपैर्भगवन्तं प्रत्युद्गतः। ततो राज्ञा भगवान् संश्रावकसंघो महता सत्कारेण प्रवेशितः, प्रणीतेन चाहारेण संतर्पितः॥

अथ शुकस्यैतदभवत्—यद्भगवान् सश्रावकसंघ एवंविभूतिस्तत्सर्वं मामागम्य। इति विदित्वा हृष्टतुष्टप्रमुदित उदग्रप्रीतिसौमनस्यजातो राज्ञः पुरस्तादितश्चामुतश्च पर्यटन् II 322 श्येनकेनापहृत्य पञ्चत्वमापादितः। भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसाद्य कालगतः। प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः॥

धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते—कुतश्च्युतः कुत्रोपपन्नः, केन कर्मणेति। स पश्यति—तिर्यग्भ्यश्च्युतः, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः, भगवतोऽन्तिके चित्तमभिप्रसाद्येति। अथ शुकपूर्विणो देवपुत्रस्यैतदभवत्—न मम प्रतिरूपं स्याद्यदहं पर्युषितपरिवासो भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयम्। यन्न्वहमपर्युषितपरिवास एव भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयमिति। अथ शुकपूर्वी देवपुत्रश्चलविमलकुण्डलधरो हारार्धहारविराजितगात्रो मणिरत्नविचित्रचूडः कुङ्कुमतमालपत्रस्पृक्कादिसंसृष्टगात्रस्तस्यामेव रात्रौ दिव्यानामुत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकमन्दारवाणां पुष्पाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा सर्वं जेतवनमुदारेणावभासेनावभास्य भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। अथ भगवांश्छुकपूर्विणो देवपुत्रस्याशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा शुकपूर्विणा देवपुत्रेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम्। स दृष्टसत्यस्त्रिरुदानमुदानयति—इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतं, न पित्रा, न राज्ञा, न देवताभिर्नेष्टेन स्वजनबन्धुवर्गेण, न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यद्भगवतास्माकं कृतम्। उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि, प्रतिष्ठापिताः स्मो देवमनुष्येषु। आह च—

तवानुभावात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः।
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः॥ २॥

त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः। B 323
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णश्च दुःखार्णवपारमस्मि॥ ३॥

नरवरेन्द्र नरामरपूजित विगतजन्मजरामरणामय।
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम्॥ ४॥

अवनम्य ततः प्रलम्बहारश्चरणौ द्वावभिवन्द्य जातहर्षः।
परिगम्य च दक्षिणं जितारिं सुरलोकाभिमुखो दिवं जगाम॥ ५॥

अथ शुकपूर्वी देवपुत्रो वणिगिव लब्धलाभः, सस्यसंपन्न इव कर्षकः, शूर इव विजितसंग्रामः, सर्वरोगपरिमुक्त इवातुरो यया विभूत्या भगवत्सकाशमागतस्तयैव विभूत्या स्वभवनं गतः ॥

भिक्षवः पूर्वरात्रापररात्रं जागरिकायोगमनुयुक्ता विहरन्ति । तैर्दृष्टो भगवतोऽन्तिके उदारोऽवभासः । यं दृष्ट्वा संदिग्धा भगवन्तं पप्रच्छुः—किं भगवन्नस्यां रात्रौ भगवन्तं दर्शनाय ब्रह्मा सहांपतिः शक्रो देवेन्द्रश्चत्वारो लोकपाला उपसंक्रान्ताः? भगवानाह—न भिक्षवो ब्रह्मा सहांपतिर्न शक्रो देवेन्द्रो नापि चत्वारो लोकपाला मां दर्शनायोपसंक्रान्ताः । अपि तु दृष्टः स युष्माभिः शुको येन वयं तस्मिन् वनषण्डे रात्रिं वस्तुमुपनिमन्त्रिता इति? भिक्षव ऊचुः—एवं भदन्तेति । भगवानाह—स एव भिक्षवः कालं कृत्वा प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्न इति । भिक्षव ऊचुः—कानि भदन्त शुकपूर्वकेण देवपुत्रेण कर्माणि कृतानि येन शुकेषूपपन्नः, कानि कर्माणि कृतानि येन देवेषूपपन्नः, सत्यदर्शनं च कृतमिति । भगवानाह—शुकपूर्वकेणैव भिक्षवो देवपुत्रेण पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । शुकपूर्वकेण देवपुत्रेण कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि
B 324 कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि अपि कल्पशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ ६ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि अस्मिन्नेव भद्रकल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति स्म । तस्यान्यतम उपासकः । तेन शिक्षाशैथिल्यं कृतम् । तस्य कर्मणो विपाकाच्छुकेषूपपन्नः । यन्ममान्तिके चित्तं प्रसादितम्, तेन देवेषूपपन्नः । यत्तेन परिशिष्टानि शिक्षापदानि रक्षितानि, तेन सत्यदर्शनं कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

५७ दूतः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 325 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहे वर्षा उपगतो वेणुवने कलन्दकनिवापे। अथ अनाथपिण्डदो गृहपतिर्येन राजा प्रसेनजित्कौशलस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य राजानं प्रसेनजितं जयेनायुषा च वर्धयित्वा विज्ञापयति—यत्खलु देव जानीयाश्चिरदृष्टोऽस्माभिर्भगवान्। परितृषिताः स्मो भगवतो दर्शनाय। इच्छामो वयं भगवन्तं द्रष्टुमिति। ततो राजा अनाथपिण्डदं गृहपतिमुवाच—कच्चित्ते गृहपते श्रुतं कुत्र भगवानेतर्हि वर्षा उपगत इति? अनाथपिण्डद उवाच—श्रुतं मे देव भगवान् राजगृहे वर्षा उपगत इति॥

ततो राज्ञा प्रसेनजिता कौशलेन अनाथपिण्डदाद्यैश्च पौरजानपदामात्यैरन्यतमः पुरुषो दूतेनाहूयोक्तः—एहि त्वं भोः पुरुष, येन भगवांस्तेनोपसंक्राम। उपसंक्रम्य अस्माकं वचनेन भगवतः पादौ शिरसा वन्दस्व, अल्पाबाधतां च पृच्छ अल्पातङ्कं च लघूत्थानतां च यात्रां B 326 च बलं च सुखं चानवद्यतां च स्पर्शविहारतां च। एवं च वद—राजा भदन्त कौशलः श्रावस्तीनिवासिनश्च पौरा आकाङ्क्षन्ति भगवतो दर्शनम्। एवं चाहुः—चिरदृष्टोऽस्माभिर्भगवान्। परितृषिताः स्मो भगवतो दर्शनाय। इच्छामो वयं भगवन्तं द्रष्टुम्। साधु भगवाञ्छ्रावस्तीमागच्छेदनुकम्पामुपादायेति। एवं देवेति स पुरुषो राज्ञः प्रसेनजितः कौशलस्य सामात्यपौरजानपदस्य प्रतिश्रुत्य श्रावस्तीतोऽनुपूर्वेण चञ्चूर्यमाणो राजगृहं नगरमनुप्राप्तः। ततः पूर्वं राजगृहं नगरमवलोक्य येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णः। एकान्तनिषण्णः स पुरुषो भगवन्तमिदमवोचत्—राजा भदन्त प्रसेनजित्कौशलः श्रावस्तीनिवासिनश्च पौरा भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा अल्पाबाधतां पृच्छन्ति, अल्पातङ्कतां च लघूत्थानतां च यात्रां च बलं च सुखं चानवद्यतां च स्पर्शविहारतां च। एवं चाहुः—चिरदृष्टोऽस्माभिर्भगवान्। परितृषिताः स्मो भगवतो दर्शनाय। इच्छामो वयं भगवन्तं द्रष्टुम्। साधु भगवाञ्छ्रावस्तीमागच्छेदनुकम्पामुपादायेति। भगवानाह—सचेन्मे भोः पुरुष राजा बिम्बिसारोऽनुज्ञास्यति, गमिष्यामीति। ततः स दूतो राजानं बिम्बिसारमनुज्ञाप्य भगवन्तमिदमवोचत्—अनुज्ञातोऽसि भगवन् राज्ञा बिम्बिसारेण गमनाय, यस्येदानीं भगवान् कालं मन्यत इति। अधिवासयति भगवांस्तस्य पुरुषस्य तूष्णीभावेन॥

अथ भगवांस्त्रयाणां वार्षिकाणां मासानामत्ययात्कृतचीवरो निष्ठितचीवरः समादाय B 327 पात्रचीवरं महता परिवारेण श्रावस्त्यभिमुखोऽभिजगाम। दूतोऽपि रथाभिरूढः संप्रस्थितः। अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं पद्भ्यां संप्रस्थितम्। ततो रथादवतीर्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमिदमवोचत्—प्रतिगृह्यतां भगवन्नस्माकीनो रथोऽनुकम्पामुपादायेति॥

भगवानाह—

ऋद्धिपादरथेनाहं सम्यग्व्यायामवर्तिना ।
विचरामि महीं कृत्स्नामक्षतः क्लेशकण्टकैः ॥ १ ॥ इति ॥

दूतः प्राह—यद्यपि भगवानृद्धिपादयानयायी, तथापि तु क्रियतां ममानुग्रहार्थमनुकम्पेति । अथ भगवान् दूतस्यानुग्रहार्थमृद्ध्या रथस्योपरि स्थितः । ततो भगवान् रथाभिरूढः श्रावस्तीमनुप्राप्तः । दूतेन च राज्ञे निवेदितम् । अथ राजा सामात्यः सपौरजानपदो भगवन्तं प्रत्युद्गतः । तत्रैव च जेतवने रात्रिं वासमुपगतो धर्मश्रवणाय । स च दूतोऽल्पायुष्को धर्मं श्रुत्वा तस्यामेव रात्रौ कालगतः । स कालं कृत्वा प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः ॥

धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते—कुतश्च्युतः, कुत्रोपपन्नः, केन कर्मणेति । स पश्यति मनुष्येभ्यश्च्युतः, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः, भगवतोऽन्तिके चित्तमभिप्रसाद्येति । अथ दूतपूर्विणो देवपुत्रस्यैतदभवत्—न मम प्रतिरूपं स्याद्यदहं पर्युषितपरिवासो भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयम् । यन्न्वहमपर्युषितपरिवास एव भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयमिति । II 323 अथ दूतपूर्वी देवपुत्रश्चलविमलकुण्डलधरो हारार्धहारविराजितगात्रो मणिरत्नविचित्रचूडः कुङ्कुमतमालपत्रस्पृक्कादिसंसृष्टगात्रस्तस्यामेव रात्रौ दिव्यानामुत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकमन्दारवाणां पुष्पाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा सर्वं जेतवनमुदारेणावभासेनावभास्य भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । अथ भगवान् दूतपूर्विणो देवपुत्रस्याशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा दूतपूर्विणा देवपुत्रेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम् । स दृष्टसत्यस्त्रिरुदानमुदानयति—इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतं, न पित्रा, न राज्ञा, न देवताभिर्नेष्टेन स्वजनबन्धुवर्गेण न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यद्भगवतास्माकं कृतम् । उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि, प्रतिष्ठापिताः स्मो देवमनुष्येषु । आह च—

तवानुभावात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः ।
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः ॥ २ ॥
त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः ।
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णश्च दुःखार्णवपारमस्मि ॥ ३ ॥
नरवरेन्द्र नरामरपूजित विगतजन्मजरामरणामय ।
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम् ॥ ४ ॥
अवनम्य ततः प्रलम्बहारश्चरणौ द्वावभिवन्द्य जातदर्पः ।
परिगम्य च दक्षिणं जितारिं सुरलोकाभिमुखो दिवं जगाम ॥ ५ ॥

अथ दूतपूर्वी देवपुत्रो वणिगिव लब्धलाभः, सस्यसंपन्न इव कर्षकः, शूर इव B 329
विजितसंग्रामः, सर्वरोगपरिमुक्त इवातुरो यया हि विभूत्या भगवत्सकाशमागतस्तयैव विभूत्या स्वभवनं गतः ॥

ततो राजा प्रसेनजिदुपरिप्रासादतलगतस्तमुदारमवभासं दृष्ट्वा प्रभातायां रजन्यां भगवन्तं पप्रच्छ—किं भगवन्निमां रात्रिं भगवन्तं दर्शनाय ब्रह्मा सहांपतिः शक्रो देवेन्द्रश्चत्वारो लोकपाला उपसंक्रान्ताः ? भगवानाह—न महाराज ब्रह्मा सहांपतिर्न शक्रो देवेन्द्रो नापि चत्वारो लोकपाला मां दर्शनायोपसंक्रान्ताः, अपि तु तावको दूतः स ममान्तिके चित्तमभिप्रसाद्य कालगतः प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः । स इमां रात्रिं मत्सकाशमागतः । तस्य मया धर्मो देशितः । स दृष्टसत्यः स्वभवनं गत इति । ततो राजा विस्मयजातः कथयति—अहो बुद्धो अहो धर्मः अहो संघो यत्र नाम परीत्तं कर्म कृत्वा महान् विपाक इति । अथ राजा प्रसेनजित्कौशलो भगवतो भाषितमभिनन्द्यानुमोद्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वोत्थायासनात्प्रक्रान्तः ॥

तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म—तिस्र इमा भिक्षवोऽग्रप्रज्ञप्तयः । कतमास्तिस्रः ? बुद्धेऽग्रप्रज्ञप्तिर्धर्मे संघेऽग्रप्रज्ञप्तिः । बुद्धेऽग्रप्रज्ञप्तिः कतमा ? ये केचित्सत्त्वा अपदा वा द्विपदा वा बहुपदा वा रूपिणो वा अरूपिणो वा संज्ञिनो वा असंज्ञिनो वा नैवसंज्ञिनो नासंज्ञिनः, तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेषामग्र आख्यातः । ये केचिद्बुद्धेऽभिप्रसन्नाः, अग्रे, तेऽभिप्रसन्नाः । तेषामग्रेऽभिप्रसन्नानामग्र एव विपाकः प्रतिकाङ्क्षितव्यो देवेषु वा देवभूतानां मनुष्येषु वा मनुष्यभूतानाम् । इयमुच्यते बुद्धेऽग्रप्रज्ञप्तिः । धर्मेऽग्रप्रज्ञप्तिः कतमा ? ये B 330
केचिद्धर्माः संस्कृता वा असंस्कृता वा, विरागो धर्मस्तेषामग्र आख्यातः । ये केचिद्धर्मेऽभिप्रसन्नाः, अग्रे तेऽभिप्रसन्नाः । तेषामग्रेऽभिप्रसन्नानामग्र एव विपाकः प्रतिकाङ्क्षितव्यो देवेषु वा देवभूतानां मनुष्येषु वा मनुष्यभूतानाम् । इयमुच्यते धर्मेऽग्रप्रज्ञप्तिः । संघेऽग्रप्रज्ञप्तिः कतमा ? ये केचित्संघा वा गणा वा पूगा वा पर्षदो वा, तथागतश्रावकसंघस्तेषामग्र आख्यातः । ये केचित्संघेऽभिप्रसन्नाः, अग्रे तेऽभिप्रसन्नाः । तेषामग्रेऽभिप्रसन्नानामग्र एव विपाकः प्रतिकाङ्क्षितव्यो देवेषु वा देवभूतानां मनुष्येषु वा मनुष्यभूतानाम् । इयमुच्यते संघेऽग्रप्रज्ञप्तिः ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

५८ महिषः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 331
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लान-

प्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कोशलेषु जनपदेषु चारिकां चरन्नन्यतमद्वनषण्डमनुप्राप्तः । तत्र च वनषण्डे महान् महिषीयूथः प्रतिवसति, पञ्चमात्राणि च महिषीपालशतानि । यावत्तत्रान्यतमो महिषो बलवान् परमेण बलेन समन्वागतः । स परमनुष्याणां गन्धमाघ्राय पृष्ठतोऽनुधावति । भगवांश्च तं प्रदेशमनुप्राप्तः । ततो महिषीपालैर्भगवान् सश्रावकसंघो दूरत एव दृष्टः । ततस्तैरुच्चैःशब्दैरुक्तः—भगवन्, इमं मार्गं वर्जय, दुष्टमहिषोऽत्र प्रतिवसतीति । भगवानाह—अल्पोत्सुका भवन्तु भवन्तः । वयमत्र कालज्ञा भविष्याम इति । अथासौ दुष्टमहिषो भगवन्तं दूरत एव दृष्ट्वा लाङ्गूलमुन्नाम्य येन भगवांस्तेन प्रधावितः । ततो भगवता पुरस्तात्पञ्च केसरिणः सटाधारिणः सिंहा निर्मिताः,
B 332 वामे दक्षिणे च पार्श्वे द्वावग्निस्कन्धौ, उपरिष्टान्महत्ययोमयी शिला । ततः स महिषः समन्ततो महाभयं दृष्ट्वा भगवतः पादौ निश्रित्य दीनवदनश्च भगवन्तं प्रेक्षते । ततोऽस्य भगवता तन्मय्या गत्यास्तन्मय्या योन्यास्त्रिभिः पादैर्धर्मो देशितः—इति हि भद्रमुख सर्वसंस्कारा अनित्याः, सर्वधर्मा अनात्मानः, शान्तं निर्वाणमिति । जातिश्च स्मारिता । स श्रुत्वा रोदितुं प्रवृत्तः । अथ भगवांस्तस्यां वेलायां गाथे भाषते—

इदानीं किं करिष्यामि तिर्यग्योनिगतस्य ते ।
II अक्षणप्रतिपन्नस्य किं रोदिषि निरर्थकम् ॥ १ ॥
साधु प्रसादयतां चित्तं मयि कारुणिके जिने ।
तिर्यग्योनिं विराग्येह ततः स्वर्गं गमिष्यसि ॥ २ ॥ इति ॥

अथासौ दुष्टमहिषः स्वाश्रयं जुगुप्समानोऽनाहारतां प्रतिपन्नः । दीप्ताग्नयस्तिर्यग्योनिगताः प्राणिनः । स आशु कालं कृत्वा प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः ॥

धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते—कुतश्च्युतः, कुत्रोपपन्नः, केन कर्मणेति । स पश्यति तिर्यग्भ्यश्च्युतः, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः, भगवतोऽन्तिके चित्तमभिप्रसाद्येति । अथ महिषपूर्विणो देवपुत्रस्यैतदभवत्—न मम प्रतिरूपं स्याद्यदहं पर्युषितपरिवासो भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयम् । यन्न्वहमपर्युषितपरिवास एव भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयमिति । अथ महिषपूर्वी देवपुत्रश्चलविमलकुण्डलधरो हारार्धहारविराजितगात्रो मणिरत्नविचित्रचूडः कुङ्कुमतमालपत्रस्पृक्का-
B 333 दिसंसृष्टगात्रस्तस्यामेव रात्रौ दिव्यानामुत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकमन्दारवाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा सर्वं तं वनषण्डमुदारेणावभासेनावभास्य भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । अथ भगवान् महिषपूर्विणो देवपुत्रस्याशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा महिषपूर्विणा देवपुत्रेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम् । स दृष्टसत्यस्त्रिरुदानमुदानयति—इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतं, न पित्रा, न राज्ञा, न

१ Ms. पर्युषितः; Speyer अपर्युषितः.

देवताभिर्नेष्टेन स्वजनबन्धुवर्गेण, न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यद्भगवतास्माकं कृतम् । उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि, प्रतिष्ठापिताः स्मो देवमनुष्येषु । आह च—

तवानुभावात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः ।
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः ॥ ३ ॥

त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः ।
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णश्च दुःखार्णवपारमस्मि ॥ ४ ॥

नरवरेन्द्र नरामरपूजित विगतजन्मजरामरणामय ।
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम् ॥ ५ ॥

अवनम्य ततः प्रलम्बहारश्चरणौ द्वावभिवन्द्य जातहर्षः ।
परिगम्य च दक्षिणं जितारिं सुरलोकाभिमुखो दिवं जगाम ॥ ५ ॥

अथ तैर्महिषीपालैः स उदारोऽवभासो दृष्टः, यं दृष्ट्वा कुतूहलजाता भगवन्तं पप्रच्छुः—क एष भगवन् रात्रौ दिव्यमवभासं कृत्वा भगवत्सकाशमनुप्राप्त इति । भगवानाह—स एष भवन्तो महिषो ममान्तिके चित्तमभिप्रसाद्य कालगतः प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः । B 331
सोऽस्यां रात्रौ मत्सकाशमुपसंक्रान्तः । तस्य मया धर्मो देशितः । स दृष्टसत्यः स्वभवनं गतः । ततस्ते महिषीपालाः परं विस्मयमापन्नाः—आश्चर्यं यन्नाम अयं तिर्यग्योनिगतो भूत्वा भगवन्तं कल्याणमित्रमासाद्य देवेषूपपन्नः, सत्यदर्शनं च कृतम् । कथं नाम वयं मनुष्यभूता विशेषं नाधिगच्छेमेति ? ततस्ते बुद्धं भगवन्तं सश्रावकसंघं प्रणीतेनाहारेण संतर्प्य भगवतोऽन्तिके प्रव्रजिताः । तैर्युज्यमानैर्घटमानैर्व्यायच्छमानैः सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त महिषपूर्वकेण देवपुत्रेण कर्माणि कृतानि येन महिषेषूपपन्नः ? एभिश्च महिषीपालैः किं कर्म कृतं येनार्हत्त्वं साक्षात्कृतम् ? भगवानाह—एभिरेव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । एभिः कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ ७ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि अस्मिन्नेव भद्रकल्पे विंशतिसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति

ऋषिपतने मृगदावे । तत्र च काले भिक्षूणां विनिश्चये वर्तमाने त्रिपिटो भिक्षुः पञ्चशतपरिवारो B 335 विनिश्चयेऽवस्थितः । तत्र च भिक्षवः शैक्षाशैक्षाः । ते त्रिपिटं प्रश्नं पृच्छन्ति । स न शक्नोति व्याकर्तुम् । तेन कुपितेन खरं वाक्कर्म निश्चारितम्—इमे च महिषाः किं प्रजानन्तीति । शिष्यैरप्यस्योक्तम्—इमे महिषीपालाः किं प्रजानन्तीति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ महिषः, अयमसौ त्रिपिटः । ये ते शिष्याः, इमे ते महिषीपालाः । तेन कर्मणा पञ्च जन्मशतानि महिषेषूपपन्नाः । इमानि च पञ्च महिषीपालशतानि संवृत्तानि । यन्ममान्तिके चित्तं प्रसादितं तेन देवेषूपपन्नाः, सत्यदर्शनं च कृतम् । तस्मात्तर्हि भिक्षवो वाग्दुश्चरितप्रहाणाय व्यायन्तव्यं यथा एते दोषा न भविष्यन्ति ये महिषस्य महिषीपालानां च । एष एव गुणगणो भविष्यति यस्तस्यैव देवपुत्रभूतस्य । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

५९ उपोपधः ।

B 336 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु पुनः समयेन देवानां त्रायस्त्रिंशानामुपोपधो नाम देवपुत्रोऽसकृदसकृद्भगवत्सकाशामुपसंक्रमति धर्मश्रवणाय । यावदपरेण समयेन उपोपधो नाम देवपुत्रः पञ्चशतपरिवारो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णो धर्मश्रवणाय । अथ भगवानुपोपधस्य देवपुत्रस्य आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा उपोपधेन देवपुत्रेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम् । स दृष्टसत्यस्त्रिरुदानमुदानयति—इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतं, न पित्रा, न राज्ञा, न देवताभिर्नेष्टेन स्वजनबन्धुवर्गेण, न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैर्यद्भगवतास्माकं कृतम् । उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि, प्रतिष्ठापिताः स्मो देवमनुष्येषु । आह च—

तवानुभावात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः ।
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः ॥ १ ॥

त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः।
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णश्च दुःखार्णवपारमस्मि ॥ २ ॥
नरवरेन्द्र नरामरपूजित विगतजन्म जरामरणामय। B 337
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम् ॥ ३ ॥
अवनम्य ततः प्रलम्बहारश्चरणौ द्वावभिवन्द्य जातहर्षः।
परिगम्य च दक्षिणं जितारिं सुरलोकाभिमुखो दिवं जगाम ॥ ४ ॥

ततो भिक्षवः पूर्वरात्रापररात्रं जागरिकायोगमनुयुक्ता विहरन्ति। तैर्दृष्टो भगवतोऽन्तिके उदारोऽवभासः। यं दृष्ट्वा संविग्ना भगवन्तं पप्रच्छुः—किं भदन्त इमां रात्रिं भगवन्तं दर्शनाय ब्रह्मा सहांपतिः शक्रो देवेन्द्रश्चत्वारो लोकपाला उपसंक्रान्ताः? भगवानाह—न भिक्षवो ब्रह्मा सहांपतिर्न शक्रो देवेन्द्रो नापि चत्वारो लोकपाला मां दर्शनायोपसंक्रान्ताः। अपि तु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषु उपोषधो नाम देवपुत्रः पञ्चशतपरिवारो मां दर्शनायोपसंक्रान्तः। तस्य मया धर्मो देशितः। दृष्टसत्यश्च स स्वभवनं गत इति। भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कुतो भदन्त उपोषधस्य देवपुत्रस्योत्पत्तिर्नामाभिनिर्वृत्तिश्चेति। भगवानाह—इच्छथ यूयं भिक्षवः श्रोतुम्? एवं भदन्त। तेन हि भिक्षवः शृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि अस्मिन्नेव भद्रकल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे। B 338 यावदपरेण समयेन कृकी राजा भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामति पर्युपासनाय। यावद्द्वौ ब्राह्मणौ ऋषिपतनं गतौ केनचित्करणीयेन। ताभ्यां राजा दृष्टो महत्या राजर्द्ध्या महता राजानुभावेन। तयो राज्याभिलाषो जातः। ताभ्यामन्यतम उपासकः पृष्टः—भो बुद्धोपासक, किं कर्म कृत्वा यच्चिन्तयति यत्प्रार्थयते तदस्य सर्वं समृध्यतीति। उपासकेनोक्तम्—यः परिशुद्धमष्टाङ्गसमन्वागतमुपवासमुपवसति, यच्चिन्तयति यत्प्रार्थयते तदस्य सर्वं समृद्धयतीति। ततस्तौ ब्राह्मणौ आषाढस्य गृहपतेः सकाशादष्टाङ्गसमन्वागतमुपवासमुपलभ्योपोषितौ। तत्रैकेन परिशुद्धो रक्षितः। स कालं कृत्वा राज्ञः कृकेः पुत्रत्वमभ्युपगतः। तस्य सुजात इति नामधेयं व्यवस्थापितम्। स पितुरत्ययाद्राज्ये प्रतिष्ठापितः ॥

द्वितीयेनोपवासः खण्डितः। स कालं कृत्वा नागेषूपपन्नः। तस्योपरि दिवसे दिवसे सतत्कृत्यः तप्तवालुका निपतति यया सोऽस्थिशेषः क्रियते। B 339 तस्यैतदभवत्—कस्येदं कर्मणः फलं कस्यायं कर्मणः फलविपाको येनाहमीदृशं दुःखमनुभवामीति। स पश्यति—अष्टाङ्गसमन्वागतं मे उपवासं समादाय शिक्षाशैथिल्यं कृतं येनाहमीदृशं महद्दुःखं प्रत्यनुभवामि। येन पुनः समादाय रक्षितं तेन राज्यं प्रतिलब्धमिति। तस्यैतदभवत्—यन्न्वहमिदानीमपि

तावदष्टाङ्गसमन्वागतमुपवासमुपवसेयम्। अप्येव नाम नागयोनेर्मोक्षः स्यादिति। ततो नागवर्णमन्तर्धाप्य ब्राह्मणवर्णमात्मानमभिनिर्माय राज्ञः सकाशमुपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य जयेनायुषा च वर्धयित्वोवाच—अष्टाङ्गसमन्वागतेन मे महाराज उपवासेन प्रयोजनम्। तदर्हति देवोऽष्टाङ्गसमन्वागतमुपवासं पर्येषितुम्। अथ न पर्येषसे, नियतं देवस्य सप्तधा मूर्धानं स्फालयामि। इत्युक्त्वा तत्रैवान्तर्हितः। ततो राजा भीतस्त्रस्तः संविग्न आहृष्टरोमकूपो हिरण्यपिटकं ध्वजाग्रे बद्ध्वा सर्वविजिते घण्टावघोषणं कारयामास—यो मेऽष्टाङ्गसमन्वागतमुपवासं देशयिष्यति, तस्यैतं हिरण्यपिटकं दास्यामि, महता सत्कारेण सत्करिष्यामीति। यावदन्यतमा वृद्धा स्त्री पलगण्डदुहिता। तया राज्ञः स्तम्भो दर्शितः—अत्र मे स्तम्भे पिता असकृद्गन्धधूपपुष्पार्चनं कृतवान्। तमुत्पाट्य प्रत्यवेक्षस्वेति। ततो राज्ञा पौरुषेयाणा-
B 340 माज्ञा दत्ता—अयं स्तम्भ उत्पाट्यतामिति। ततो राजपुरुषैः स्तम्भ उत्पाटितः। तस्याधस्तात्सुवर्णपत्राभिलिखितोऽष्टाङ्गसमन्वागत उपवासो लब्धः। स ह पञ्च चोपासकशिक्षापदानि सप्तत्रिंशच्च बोधिपक्ष्या धर्माः। ततो राज्ञा तस्य नागस्याष्टाङ्गसमन्वागत उपवासो लिखित्वा दत्तः। ऋषिपतननिवासिभिश्च द्वादशभिर्ऋषिसहस्रैः सप्तत्रिंशद्बोधिपक्ष्या धर्माः प्रत्यक्षीकृताः। स च नागोऽष्टाङ्गसमन्वागतमुपवासमुपोष्य स्थलमुद्गम्योत्सृष्टकायोऽवस्थितः। सोऽनाहारतां प्रतिपन्नः कालं कृत्वा पञ्चशतपरिवारः प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः। अतो भिक्षव उपोषधस्योत्पत्तिर्नामाभिनिर्वृत्तिश्चेति॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

६० हंसाः।

B 311 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। श्रावस्त्यां राजा प्रसेनजित्कौशल्यो राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्करोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नमखिलमकण्टकम्। एकपुत्रमिव राज्यं पालयति। यावदपरेण समयेन राजा प्रसेनजित्कौशल्यो जेतवनं निर्गतो भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रमितुं पर्युपासनाय। राज्ञा च पञ्चालेन राज्ञः प्रसेनजित्कौशल्यस्य प्राभृतं पञ्च हंसशतानि प्रेषितानि। यदा राजा जेतवनं निर्गतस्तदा तानि पञ्च हंसशतान्युपनामितानि। ततो राज्ञा प्रसेनजिता तेषामभयप्रदानं दत्त्वा तत्रैव जेतवने समुत्सृष्टानि। यदा भगवान् महाश्रावकपरिवृतोऽजिने उपनिषीदति, तदा ते हंसा भगवत्सकाशमुपसंक्रामन्ति। भगवानपि तेभ्य आलोपमनुप्रयच्छति महाश्रावकाश्च।

---

१ Mss. हंस. २ Speyer अजिरे for अजिने against Mss., on the strength of Tibetan translation.

ते भुक्त्वा तृप्ताः प्रणीतेन्द्रियास्तिष्ठन्ति । यदा भगवान् प्रतिसंलयनाद्व्युत्थाय चतसृणां B 342
पर्षदां धर्मं देशयति, तदा ते हंसा भगवत्सकाशं गत्वा धर्मं शृण्वन्ति । ते चाल्पायुष्काः
कालं कृत्वा प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नाः ॥

धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते— कुतश्च्युतः, कुत्रोपपन्नः, केन कर्मणेति । पश्यन्ति हंसेभ्यश्च्युताः, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नाः, भगवतोऽन्तिके चित्तमभिप्रसाद्येति । अथ हंसपूर्विणो देवपुत्राश्चलविमलकुण्डलधरा हारार्धहारविराजितगात्रा मणिरत्नविचित्रितचूडाः कुङ्कुमतमालपत्रस्पृक्कादिसंसृष्टगात्रास्तस्यामेव रात्रौ दिव्यानामुत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकमन्दारवाणां पुष्पाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा सर्वं जेतवनमुदारेणावभासेनावभास्य भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णा धर्मश्रवणाय । अथ भगवान् हंसपूर्विणां देवपुत्राणामाशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा हंसपूर्विभिर्देवपुत्रैर्विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतापत्तिफलं प्राप्तम् । ते दृष्टसत्या वणिज इव लब्धलाभाः, सस्यसंपन्ना इव कर्षकाः, शूरा इव विजितसंग्रामाः, सर्वरोगपरिमुक्ता इवातुराः यया विभूत्या भगवत्सकाशमागतास्तयैव विभूत्या स्वभवनं गताः ॥

भिक्षवः पूर्वरात्रापररात्रं जागरिकायोगमनुयुक्ता विहरन्ति । तैर्दृष्टो भगवतोऽन्तिके
उदारोऽवभासः । यं दृष्ट्वा संदिग्धा भगवन्तं पप्रच्छुः—किं भगवन्निमां रात्रिं भगवन्तं B 343
दर्शनाय ब्रह्मा सहांपतिः शक्रो देवेन्द्रश्चत्वारो लोकपाला उपसंक्रान्ताः? भगवानाह—न भिक्षवो ब्रह्मा सहांपतिर्न शक्रो देवेन्द्रो नापि चत्वारो लोकपाला मां दर्शनायोपसंक्रान्ताः, अपि तु दृष्टास्ते युष्माभिर्भिक्षवस्तानि पञ्च हंसशतानि राज्ञा प्रसेनजिता कौशलेन इहोत्सृष्टानि? एवं भदन्त । तानि ममान्तिके चित्तमभिप्रसाद्य कालगतानि, प्रणीतेषु देवेषूपपन्नानि । तान्यस्यां रात्रौ मत्सकाशमुपसंक्रान्तानि । तेषां मया धर्मो देशितः । दृष्टसत्यानि च स्वभवनं गतानि ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त हंसपूर्विकैर्देवपुत्रैः कर्माणि कृतानि येन हंसेषूपपन्नाः, कानि कर्माणि कृतानि येन देवेषूपपन्नाः, सत्यदर्शनं च कृतमिति? भगवानाह—एभिरेव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । एभिः कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः B 344 शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । तत्रैभिः प्रव्रजितैः शिक्षाशैथिल्यं कृतम् । तेन हंसेषूपपन्नाः । यन्ममान्तिके चित्तं प्रसादितं तेन देवेषूपपन्नाः । यत्परिशिष्टानि शिक्षापदानि तेन सत्यदर्शनं कृतमिति । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षवः एकान्तकृष्णानि कर्माणि अपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥



सप्तमो वर्गः ।

तस्योदानम्—

सुवर्णाभः सुगन्धिश्च वपुष्मान् बलवान् प्रियः ।
पद्माक्षो दुन्दुभिः पुत्राः सूर्यो मल्लपताकया ॥

६१ सुवर्णाभः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे । कपिलवस्तुनि अन्यतमः शाक्य आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकोऽतिक्रान्तो मानुषवर्णमसंप्राप्तश्च दिव्यं वर्णं जाम्बूनदनिष्कसदृशः । सुवर्णवर्णया चानेन प्रभया सर्वं कपिलवस्तु नगरमवभासितम् । तद्दर्शनान्मातापितरावन्ये B 346 च कुतूहलाभ्यागताः सत्त्वाः परं विस्मयमागताः । चिन्तयन्ति च—कुतोऽयमीदृशः सत्त्वविशेष इति । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः—यस्मादनेन जातेन सुवर्णवर्णया प्रभया सर्वं कपिलवस्तु नगरमवभासितम्, तस्माद्भवतु दारकस्य सुवर्णाभ इति नामेति । सुवर्णाभो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्योऽनुप्रदत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् । स च पण्डितो व्यक्तो मेधावी श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः ॥

यावदपरेण समयेन रूपमदमत्तो बहिरधिष्ठानस्य क्रीडति । संबहुलाश्च शाक्या न्यग्रोधारामं गच्छन्ति । ततस्तेन सुवर्णाभेन दृष्टाः पृष्टाश्च—क्व भवन्तो गच्छन्तीति । तैरुक्तम्—न्यग्रोधारामं गच्छामो बुद्धं भगवन्तं द्रष्टुमिति । सुवर्णाभस्य बुद्ध इत्यश्रुतपूर्वं नाम श्रुत्वा सर्वरोमकूपाण्याहृष्टानि, परमं च कुतूहलमुत्पन्नम् । तस्यैतदभवत्—यन्न्वहमपि बुद्धं भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रामेयमिति । सोऽपि न्यग्रोधारामं गच्छति । ततस्तत्र ददर्श सुवर्णाभकुमारो बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्चास्य B 347

योऽसौ रूपमदः स प्रतिविगतः । स भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । तस्य भगवता धर्मो देशितः । स तं धर्मं श्रुत्वा प्रव्रज्याभिलाषी संवृत्तः । यावन्मातापितरावनुज्ञाप्य भगवत्सकाशमुपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणमय्य भगवन्तमिदमवोचत्—लभेयाहं भदन्त स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावम् । चरेयमहं भगवतोऽन्तिके ब्रह्मचर्यमिति । ततो भगवान् गजभुजसदृशं सुवर्णवर्णबाहुमभिप्रसार्य सुवर्णाभदारकमिदमवोचत्—एहि कुमार, चर ब्रह्मचर्यमिति ।

एहीति चोक्तः स तथागतेन मुण्डश्च संघाटिपरीतदेहः ।
सद्यः प्रशान्तेन्द्रिय एव तस्थावेवं स्थितो बुद्धमनोरथेन ॥ १ ॥

यावत्सद्याहावरोपितकेशश्मश्रुर्द्वादशवर्षोपसंपन्नेर्यापथः पात्रकरव्यग्रहस्तो भगवतः
B 318 पुरस्तात्स्थितः । तस्य भगवता मनसिकारो दत्तः । तेन युज्यमानेन व्यायच्छमानेन घटमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चनः आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त सुवर्णाभेन कर्माणि कृतानि येनैवमभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः, प्रव्रज्य च अचिरादर्हत्वं साक्षात्कृतमिति । भगवानाह—सुवर्णाभेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । सुवर्णाभेन कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

B 319 न प्रणश्यन्ति कर्माणि अपि कल्पशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ २ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । यावद्विपश्यी सम्यक्संबुद्धो बुद्धकार्यं कृत्वा इन्धनक्षयादिवाग्निर्निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः । ततो राज्ञा बन्धुमता भगवतः शरीरे शरीरपूजां कृत्वा समन्तयोजनः स्तूपश्चतूरत्नमयः प्रतिष्ठापितः क्रोशमुच-

1 Speyer घाषित्य, Mss. badly mutilated.

त्वेन। स्तूपमहश्च प्रज्ञप्तः। यावदन्यतमो गृहपतिस्तस्मिन् स्तूपमहे वर्तमाने निर्गतः। तेन तस्मात्स्तूपात्सौवर्णवर्ण आदर्शः पतितो दृष्टः। स तेनावतंसकः कारयित्वा तत्र स्तूपे आरोपितः। गन्धधूपपुष्पार्चनं कृत्वा पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कृतम्—अहमप्येवंविधानां गुणानां लाभी भविष्यामि, एवंविधमेव शास्तारमारागयेयमिति॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन गृहपतिरासीत्, अयं स सुवर्णाभः। यत्तेन विपश्यिनः सम्यक्संबुद्धस्य स्तूपे कारा कृता, तेनास्यैवंविधो रूपविशेषः संवृत्तः। यत्प्रणिधानं कृतं तदिहैव जन्मन्यर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

६२ सुगन्धिः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे। B 350

कपिलवस्तुनि अन्यतमः कुलपुत्रः प्रतिवसति आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातः अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको अतिक्रान्तो मानुषवर्णमसंप्राप्तश्च दिव्यं वर्णम्। तस्य मुखान्नीलोत्पलगन्धो वाति, सर्वशरीराच्चन्दनगन्धः। तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति। ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य मुखान्नीलोत्पलगन्धो वाति, शरीराच्चन्दनगन्धः, तस्माद्भवतु दारकस्य सुगन्धिरिति नामेति। सुगन्धिर्दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्। स पूर्वहेतुबलाधानाच्छ्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः। यदा सुगन्धिर्दारकः केयूरहारकटकालंकृतो वीथीमवतरति, तदा चन्दनगन्धेन सर्वं नगरमापूरयति। जनकायश्च दिव्यं गन्धमाघ्राय परं विस्मयमापद्यते। एवं चाह—अहो पुण्यानां सामर्थ्यमिति॥ B 351

यावदपरेण समयेन सुगन्धिर्दारको न्यग्रोधारामं गतः । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम् । प्रसादजातश्च भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । तस्मै भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा सुगन्धिदारकेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतापत्तिफलं साक्षात्कृतम् । स दृष्टसत्यो मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तस्त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाश-
B 352 पाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविद्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त सुगन्धिना कर्माणि कृतानि येनास्य मुखान्नीलोत्पलगन्धो वाति, सर्वशरीराच्चन्दनगन्धश्च । भगवानाह—सुगन्धिनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । सुगन्धिना कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । यावद्विपश्यी सम्यक्संबुद्धः सकलं बुद्धकार्यं कृत्वा इन्धनक्षयादिवाग्निर्निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः, ततो राज्ञा बन्धुमता भगवतः शरीरे शरीरपूजां कृत्वा समन्तयोजनः स्तूपश्चतूरत्नमयः प्रतिष्ठापितः क्रोशः
B 353 मुच्चत्वेन । स्तूपमहश्च प्रज्ञप्तः । तत्रान्यतमेन गृहपतिना प्रसादजातेन विचित्रैर्गन्धैः प्रलेपं दत्त्वा धूपपुष्पार्चनं कृत्वा प्रणिधानं कृतम्—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन एवंविधानां गुणानां लाभी भविष्यामि । एवंविधमेव शास्तारमारागयेयम्, मा विरागयेयमिति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन गृहपतिरासीत्, अयं स सुगन्धिः । यदनेन विपश्यिनः सम्यक्संबुद्धस्य स्तूपे काराः कृतास्तेन सुगन्धः संवृत्तः ।

यत्प्रणिधानं कृतं तेनेह जन्मन्यर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

६३ वपुष्मान् ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 354
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे । कपिलवस्तुनि अन्यतमः शाक्य आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको गौरोऽतिक्रान्तो मानुषवर्णमसंप्राप्तश्च दिव्यं वर्णं रम्यवपुः सूक्ष्मत्वङ् महेशाख्यः प्रांशोच्छ्रयकायश्च । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थापितम्—किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य दिव्यं वपुः, तस्माद्भवतु दारकस्य वपुष्मानिति नामेति । B 355
वपुष्मान् दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् । स च श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः सर्वलोकेषु पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च । ततो वपुष्मान् यान् यानपि भूप्रदेशान् गत्वा भ्रमति, ते तेऽस्य मेध्या भवन्ति । एवंविधः पुण्यमहेशाख्यः ॥

यावदपरेण समयेन न्यग्रोधारामं गतः । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाद्यानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं

प्रसादितम् । प्रसादजातश्च भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय ।
तस्मै भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी
धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा वपुष्मता विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण
भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम् । स दृष्टसत्यो मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने
B 356 प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं
चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेश-
प्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणि-
तलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो
भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त वपुष्मता कर्माणि कृतानि येनास्यैवंविध आश्रयोऽर्हत्त्वं च प्राप्तमिति । भगवानाह—वपुष्मतैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । वपुष्मता कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनु-भविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक
उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां
बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । यावद्विपश्यी सम्यक्संबुद्धः
B 357 सकलं बुद्धकार्यं कृत्वा इन्धनक्षयादिवाग्निर्निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः, ततोऽस्य
राज्ञा बन्धुमता शरीरे शरीरपूजां कृत्वा समन्तयोजनश्चतूरत्नमयः स्तूपः प्रतिष्ठापितः क्रोश-
मुच्चत्वेन । तत्र च राज्ञा बन्धुमता सपुत्रवर्गेण सामात्यगणपरिवृतेन स्तूपमहः कृतः ।
यावदन्यतमस्मिन् दिवसेऽन्यतमो दरिद्रपुरुषः स्तूपाङ्गणं प्रविष्टः । तत्र तेन पुष्पाणि म्लानानि
दृष्टानि, रजसा च [स्तूपाङ्गणो] मलिनीकृतः । ततस्तेन बुद्धगुणाननुस्मृत्य प्रसादजातेन
संमार्जनीं गृहीत्वा स्तूपः संमृष्टो निर्माल्यं चापनीतम् । ततोऽपगतरजं स्तूपं निर्मलं दृष्ट्वा
प्रसादजातः पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कृतवान्—अनेनाहं कुशलेन चित्तोत्पादेन चैवंविधानां
गुणानां लाभी भविष्यामीत्येवंविधमेव शास्तारमारागयेयं मा विरागयेयमिति ॥

---

१ Speyer's suggestion that स्तूपवर्णो or simply वर्णो represent Mss. better than स्तूपाङ्गणो, may be noted.

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन दरिद्रः पुरुष आसीत्, अयं स वपुष्मान्। यतस्तेन स्तूपः संमृष्टः, तेनाभिरूपः संवृत्तः। यत्प्रणिधानं कृतं तेनेह जन्मन्यर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥ B 3

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

६४ बलवान्।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे। कपिलवस्तुनि अन्यतमः शाक्य आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकोऽतिक्रान्तपौरुषबलः। तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति। ज्ञातय ऊचुः—यस्मादयं दारको बलवान्, प्राप्तं स्यादस्य बलवानिति नाम। बलवान् दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेन अन्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्। स च श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः॥ B 359 B 360

यावदपरेण समयेन न्यग्रोधारामं गतः। अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्यानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम्। प्रसादजातश्च भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। तस्य भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा बलवता विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम्। स दृष्टसत्यो मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः। तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कार-

गतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविप्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः॥

B 361 भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त बलवता कर्माणि कृतान्युपचितानि येनास्याश्रयो बल्वान्, अर्हत्त्वं च प्राप्तमिति। भगवानाह—बलवतैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। बलवता कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति। यावद्विपश्यी सम्यक्संबुद्धः सकलं बुद्धकार्यं कृत्वा इन्धनक्षयादिवाग्निर्निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः, तस्य राज्ञा बन्धुमता शरीरे शरीरपूजां कृत्वा समन्तयोजनः स्तूपश्चतूरत्नमयः प्रतिष्ठापितः क्रोशमुच्चत्वेन। तत्र स्तूपमहे वर्तमाने महाजनकायेन नृत्यता गायता च स्तूपं पांसुना मलिनीकृतम्। यावदन्यतमो गृहपतिः स्तूपाङ्गणं प्रविष्टः। स पश्यति स्तूपाङ्गणं रजसा मलिनी-
B 362 कृतम्। ततस्तेन गृहपतिना बुद्धगुणाननुस्मृत्य प्रसादजातेन तैलव्यामिश्रो गन्धकायो दत्तः, प्रणिधानं च कृतम्—अप्येवंविधानां गुणानां लाभी स्याम्। एवंविधमेव शास्तारमारागयेयं मा विरागयेयमिति॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन गृहपतिः, अयं स बल्वान्। यदनेन विपश्यिनः स्तूपे काराः कृतास्तेन बल्वान् संवृत्तः। यत्प्रणिधानं कृतं तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

प्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । प्रियेण कृतानि कर्माण्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । यावद्विपश्यी सम्यक्संबुद्धः सकलं बुद्धकार्यं कृत्वा इन्धनक्षयादिवाग्निर्निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः, तस्य राज्ञा बन्धुमता शरीरे शरीरपूजां कृत्वा समन्तयोजनश्चतूरत्नमयः स्तूपः प्रतिष्ठापितः क्रोशमुच्चत्वेन । यावदपरेण समयेन वसन्तकालसमये संपुष्पितेषु (पादपेषु) नानाविचित्रितेषु पुष्पेषु प्रादुर्भूतेष्वन्यतमो गृहपती राजानं विज्ञापयामास—इच्छाम्यहं देवसहायो विपश्यिनः
B 366 स्तूपे पुष्पारोपणं कर्तुमिति । राजा कथयति—एवमस्त्विति । यावत्तेन गृहपतिना राजामात्यपौरुषैः सहायेन घण्टावघोषणेन विचित्रपुष्पसंग्रहं कृत्वा विपश्यिनः स्तूपे पुष्पारोहणं कृतम्, यत्रानेकैः प्राणिशतसहस्रैश्चित्तानि प्रसाद्य कुशलमूलानि समारोपितानि ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन गृहपतिरासीत्, अयं स प्रियः । यत्तेन महाराजसहायेन कुशलमूलान्यवरोपितानि, तेन महाजनस्य प्रियो मनापश्च संवृत्तः, तेनैव हेतुना दर्शनीयः प्रासादिकः । अर्हत्त्वं च प्राप्तम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

—x—

६६ पद्माक्षः ।

B 367 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे । कपिलवस्तुनि अन्यतमः शाक्य आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो

1 Mss. पद्मः for पद्माक्षः even though उद्दान mentions it as पद्माक्षः.

वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकोऽभिनीलपद्मनेत्रः दिव्येनेन्द्रनीलमणिरत्नेन शिरस्यावद्धेन, येन कपिलवस्तु नगरमिन्द्रनीलवर्णं व्यवस्थापितम् । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य पद्मसदृशे अक्षिणी, तस्माद्भवतु दारकस्य पद्माक्ष इति नामेति । पद्माक्षो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् । स च श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः II 368
कारुणिको महात्मा धर्मकामस्त्यागरुचिः प्रदानाभिरतो महति त्यागे वर्तते । स येन येन गच्छति, तेन देवमनुष्यैः पूज्यतेऽभ्यर्च्यते च ॥

अथ पद्माक्षो दारकोऽपरेण समयेन न्यग्रोधारामं गतः । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्तमभिप्रसादितम् । प्रसादजातश्च भगवत्पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । तस्मै भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा पद्माक्षेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतापत्तिफलं साक्षात्कृतम् । स दृष्टसत्यो दानप्रदानानि दत्त्वा श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकदुःखितान् संतर्पयित्वा मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः । यावदसौ पिण्डपात- B 369
प्रविष्टो महाजनकायेनोद्वीक्ष्यमाणो जिहेति । अथ स पद्माक्षो भगवतः सकाशमुपसंक्रम्य भगवन्तं विज्ञापयामास—साधु मे भगवांस्तथा करोतु यथा मणिरत्नमन्तर्धीयेत । भगवानाह—कर्मजं ह्येतत्, न शक्यमन्तर्धापयितुम् । अपि तु तथा करिष्यामि यच्छ्राद्धा द्रक्ष्यन्ति नाश्राद्धा इति । ततो भगवता तथा कृतम् ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त पद्माक्षेण कर्माणि कृतानि येनैवं महेशाख्योऽर्हत्त्वं च प्राप्तमिति । भगवानाह—पद्माक्षेणैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । पद्माक्षेण कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ?

न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । यावद्विपश्यी सम्यक्संबुद्धः सकलं बुद्धकार्यं कृत्वेन्धनक्षयादिवाग्निर्निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः, तस्य राज्ञा B 370 बन्धुमना शरीरे शरीरपूजां कृत्वा समन्तयोजनश्चतूरत्नमयः स्तूपः प्रतिष्ठापितः । तत्र अनेकानि प्राणिशतसहस्राणि कारान् कृत्वा स्वर्गमोक्षपरायणानि भवन्ति । यावदन्यतमः सार्थवाहो महासमुद्रात्सिद्धयानपात्रोऽभ्यागतः । तेन तत्र महदिन्द्रनीलकं रत्नमानीतम् । तेन विपश्यिनः स्तूपं दृष्ट्वा तथागतगुणाननुस्मृत्य तन्मणिरत्नं विपश्यिनः स्तूपवर्षस्थाल्यामुपरि निबद्धम् । तस्यानुभावेन दिग्विदिशः सर्वा नीलाकारा अवस्थिताः । पद्मैश्च पूजां कृत्वा प्रणिधानं कृतम्—अहमप्येवं गुणानां लाभी स्याम्, एवंविधमेव शास्तारमारागयेयं मा विरागयेयमिति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन सार्थवाह आसीत्, अयं स पद्माक्षः । यत्तेन विपश्यिनः स्तूपे मणिरत्नमारोपितं तस्य कर्मणो विपाकेनास्य मणिरत्नं शिरसि प्रादुर्भूतम् । यन्नीलपद्मैः पूजा कृता तेनाभिनीलपद्मनेत्रः संवृत्तः । यत्प्रणिधानं कृतं तेनेह जन्मन्यर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

६७ दुन्दुभिस्वरः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 371 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे । कपिलवस्तुनि अन्यतमः शाक्य आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते

परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको महेशाख्यः कलविङ्कमनोज्ञ[1]भाणी दुन्दुभिस्वरनिर्घोषः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः—यस्मादयं दारको दुन्दुभिस्वरः, तस्मादस्य भवतु दुन्दुभिस्वर इति नामेति । दुन्दुभिस्वरो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् । स च II 372 श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलस्त्यागरुचिः प्रदानरुचिर्महति त्यागे वर्तते ॥

यावदपरेण समयेन दुन्दुभिस्वरो दारको न्यग्रोधारामं गतः । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम् । प्रसादजातश्च भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । तस्मै भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा दुन्दुभिस्वरेण दारकेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतापत्तिफलं साक्षात्कृतम् । स दृष्टसत्यो दानप्रदानानि दत्त्वा श्रमणब्राह्मणवनीपकान् दुःखितान् संतर्पयित्वा मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त दुन्दुभिस्वरेण कर्माणि कृतानि येनाभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकोऽर्हत्त्वं च प्राप्तमिति ? भगवानाह—दुन्दुभिस्वरेणैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । दुन्दुभिस्वरेण कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये B 373 पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥

1 Mss. मनोज्ञभाणी or °वाणी, unnecessarily emended by Speyer into °भाषी.

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । यावद्विपश्यी सम्यक्संबुद्धः सकलं बुद्धकार्यं कृत्वेन्धनक्षयादिवाग्निर्निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः, तस्य राज्ञा बन्धुमता शरीरे शरीरपूजां कृत्वा समन्तयोजनश्चतूरत्नमयः स्तूपः प्रतिष्ठापितः क्रोशमुच्चत्वेन । तत्रानेकानि प्राणिशतसहस्राणि कारान् कृत्वा स्वर्गमोक्षपरायणानि भवन्ति । यावदन्यतरेण गृहपतिना विचित्राणि वाद्यभाण्डानि पुरुषाश्च शिक्षयित्वा तत्र स्तूपे निर्यातिताः, ये तत्र स्तूपे अहन्यहनि वाद्यविशेषैः सत्कारं कुर्वन्ति ॥

B 374 किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन गृहपतिरासीद्, अयं स दुन्दुभिस्वरः । यत्तेन विपश्यिनः स्तूपे विचित्राणि वाद्यभाण्डानि निर्यातितानि, तेनेदानीं दुन्दुभिस्वरः संवृत्तः । तेनैव हेतुनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानां कर्मणामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

६८ पुत्राः[1] ।

B 375 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे । कपिलवस्तुनि अन्यतमः शाक्य आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । महती महती मांसपेशी जाता, यां दृष्ट्वा मातापितरौ विषण्णौ, अन्ये च गृहवासिनः परिचारका ज्ञातयश्च—को नामायमेवंविधो जात इति । यावदसौ गृहपतिः शोकागारं प्रविश्य करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः—कस्य निवेदयेयम्, को ज्ञास्यति किमेतदिति । तस्य बुद्धिरुत्पन्ना—अयं बुद्धो भगवान् सर्वज्ञः सर्वदर्शी । बुद्धस्य भगवतो निवेदयामि, स ज्ञास्यतीति । स येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवन्तं पप्रच्छ । भगवानाह—मा भैषीस्त्वं गृहपते, मा भैषीः । सुविहिते कपरि

[1] Mss. पुत्रः against उद्दान.

शतं निर्गतम्। तं स्तूपं दृष्ट्वा तथागतगुणाननुस्मृत्य तैस्तत्र स्तूपे एकपुरुषेण वा एकदेहिना वा
एकात्मना वा एकचित्तेनेव एकात्मभावेनेव सर्वैरेकसमूहीभूतैः प्रसन्नचित्तकैः प्रीतिजातैरेका-
II 378 त्मनीभूतैस्तत्र स्तूपे पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनानि नैवेद्यरससाप्रभोज्यानि सर्वोपहाराणि
चोपढौकितानि। ध्वजवितानच्छत्राणि चारोपितानि। आरोप्य एकसमूहीभूत्वा एकस्वरेण
स्तुतिं कृत्वा प्रदक्षिणशतसहस्रं कृतम्। ततस्तैः सर्वैरेकात्मभावेनैकचित्तकेन प्रणिधानं
कृतम्—अनेन कुशलमूलेनास्माकं तथैवैकात्मजाता एकचित्तकाः समानदेहाः समानाचाराः
समानधर्माः समानपुण्याः समनिर्वाणा भवन्तु इति। तत्रैव स्तूपे एवं भक्तिपरायणा निर्वृताः॥

[1]* * * * * * तेनैव हेतुना इदानीमेकपेशीजाताः समरूपाः समदेहभावाः
समात्मचित्ताः समबलवीर्यपराक्रमाः समाचाराः समधर्मेषु परायणाः समं स्रोतापत्तिफलं
B 379 प्राप्ताः, समं चार्हत्त्वं प्राप्ताः। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्त(कृष्णो)
विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव
एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः।
इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

६९ सूर्यः।

II 380 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किंनरैर्[2]महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिंनरमहो-
रगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्यय-
भैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे। कपिलवस्तुनि
अन्यतमः शाक्य आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो
वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परि-
चारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको
महेशाख्यः शिरसि मणिरत्नयुक्तः। [3]* * * *। तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा
नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति। ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य दारकस्य
B 381 शिरसि मणिरत्नं प्रादुर्भूतम्, तस्य मणिरत्नस्य प्रभया सर्वं गृहमवभासितं सूर्यस्येव, तस्मादस्य

---

१ The text in all Mss. is mutilated. The para must begin with कि मन्यध्वे भिक्षवः...पंक्तया: as in several other stories. २ After किंनरैः some Mss. read मनुष्यैः which is unusual. ३ Tibetan translation here seems to add a few sentences describing the sun-like splendour of the gem on crest. None of the Mss. used by Speyer contains any reference to these phrases. Cf. तस्य मणिरत्नस्य प्रभया सर्वं गृहमवभासितं सूर्यस्येव.

सूर्यो नाम भवतु इति । सूर्यो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् । स च श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलस्त्यागरुचिः प्रदानकौशलो महति त्यागे वर्तते ॥

यावदपरेण समयेन सूर्यो दारको न्यग्रोधारामं गतः । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसाद्य स्वशिरसि मणिरत्नमुद्धृत्य भगवत उपनामितम् । ततः प्रसादजातो भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । ततो भगवता सूर्यस्यानुकम्पामुपादाय तन्मणिरत्नमुपगृह्याशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा तेन सूर्येण दारकेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतापत्तिफलं साक्षात्कृतम् । स दृष्टसत्यो दानप्रदानानि दत्त्वा श्रमणब्राह्मणवनीपकान् दुःखितान् सत्त्वान् संतर्पयित्वा मातापितरावनुज्ञाप्य भगवतः शासने प्र- B 382
व्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविन्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त सूर्येण दारकेण कर्माणि कृतानि येन शिरसि मणिरत्नं जातम्, येन च महेशाख्योऽर्हत्त्वं च प्राप्तमिति । भगवानाह—सूर्येणैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । सूर्येण कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । यावद्विपश्यी सम्यक्संबुद्धः B 383

सकलं बुद्धकार्यं कृत्वा इन्धनक्षयादिवाग्निर्निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः, तस्य राज्ञा बन्धुमता शरीरे शरीरपूजां कृत्वा समन्तयोजनश्चतूरत्नमयः स्तूपः प्रतिष्ठापितः क्रोशमुच्चत्वेन। यत्रानेकानि प्राणिशतसहस्राणि कारान् कृत्वा स्वर्गमोक्षपरायणानि भवन्ति। तत्र स्तूपमहो वर्तते। श्राद्धा ब्राह्मणगृहपतयो विचित्रैर्गन्धमाल्यविलेपनैश्छत्रैर्ध्वजैः पताकाभिः पूजां कुर्वन्ति। यावदपरेण पुरुषेण राज्ञः सकाशाद् द्यूतं क्रीडतः सूर्याभासं मणिरत्नं निर्जितम्। ततस्तेन प्रसादजातेन विपश्यिनश्चैत्ये वर्षास्थाल्यां समारोपितम्। ततः पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कृतम्—अनेनाहं कुशलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च एवंविधानां गुणानां लाभी स्याम्, एवंविधं शास्तारमारागयेयं मा विरागयेयम्, एवंविधेन चूडायां बद्धेन मातुः कुक्षेर्निर्गच्छेयमिति॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन अक्षधूर्त आसीत्, अयं स सूर्यः। यत्तेन विपश्यिनः स्तूपे रत्नं समारोपितं तेनास्य शिरसि मणिरत्नं प्रादुर्भूतम्। तेनैव हेतुना अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः। अर्हत्त्वं च साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

७० मल्लपताका[1]।

B 394 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे। कपिलवस्तुनि अन्यतमः शाक्य आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातः अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकोऽतिक्रान्तो मानुषं वर्णमसंप्राप्तश्च दिव्यं वर्णम्। यदासौ कुमारो जातस्तदा देवताभिर्दिव्याः पताकाः समन्तत उच्छ्रापिताः, दिव्यानि वाद्यभाण्डानि पराहतानि, दिव्यानि चोत्पलकुमुदपद्मपुण्डरीकमान्दारवाणां पुष्पाणि क्षिप्तानि, सर्वं च कपिलवस्तु नगरं यशसा आपूरितम्, सर्वगृहेषु चास्य नाम्ना पताका उच्छ्रापिताः। तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं
B 395 व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति। ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य जातस्य यशसा सर्व-

---

1 Mss. मल्लनाक.

लोक आपूरितः, तस्माद्भवतु दारकस्य विदितयशा इति नामेति। विदितयशा दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्। स च श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः॥

यावदपरेण समयेन न्यग्रोधारामं गतः। अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम्। प्रसादजातश्च भगवत्पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। तस्मै भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा विदितयशसा दारकेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतापत्तिफलं साक्षात्कृतम्। स दृष्टसत्यः श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकेभ्यो दानप्रदानानि दत्त्वा मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः। तेन युज्यमानेन घट- B 386
मानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः। स याचितचीवरं परिभुङ्क्ते अल्पमयाचितम्, याचितपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारान् परिभुङ्क्ते अल्पमयाचितम्॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त विदितयशसा कर्माणि कृतानि येन जातमात्रस्य देवताभिः पताका उच्छ्रापिताः, यशसा च सर्वलोक आपूर्णः, प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति। भगवानाह—विदितयशसैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। विदितयशसा कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्येकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि B 387
विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो

सकलं बुद्धकार्यं कृत्वा इन्धनक्षयादिवाग्निर्निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः, तस्य राज्ञा बन्धुमता शरीरे शरीरपूजां कृत्वा समन्तयोजनश्चतूरत्नमयः स्तूपः प्रतिष्ठापितः क्रोशमुच्चत्वेन । यत्रानेकानि प्राणिशतसहस्राणि कारान् कृत्वा स्वर्गमोक्षपरायणानि भवन्ति । तत्र स्तूपमहो वर्तते । श्राद्धा ब्राह्मणगृहपतयो विचित्रैर्गन्धमाल्यविलेपनैश्छत्रैर्ध्वजैः पताकाभिः पूजां कुर्वन्ति । यावदपरेण पुरुषेण राज्ञः सकाशाद् द्यूतं क्रीडतः सूर्यामासं मणिरत्नं निर्जितम् । ततस्तेन प्रसादजातेन विपश्यिनश्चैत्ये वर्षास्थाल्यां समारोपितम् । ततः पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कृतम्—अनेनाहं कुशलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च एवंविधानां गुणानां लाभी स्याम्, एवंविधं शास्तारमारागयेयं मा विरागयेयम्, एवंविधेन चूडायां बद्धेन मातुः कुक्षेर्निर्गच्छेयमिति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन अक्षधूर्त आसीत्, अयं स सूर्यः । यत्तेन विपश्यिनः स्तूपे रत्नं समारोपितं तेनास्य शिरसि मणिरत्नं प्रादुर्भूतम् । तेनैव हेतुना अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः । अर्हत्त्वं च साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

७० मल्लपताका ।

B 384 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे । कपिलवस्तुनि अन्यतमः शाक्य आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातः अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकोऽतिक्रान्तो मानुषं वर्णमसंप्राप्तश्च दिव्यं वर्णम् । यदासौ कुमारो जातस्तदा देवताभिर्दिव्याः पताकाः समन्तत उच्छ्रापिताः, दिव्यानि वाद्यभाण्डानि पराहतानि, दिव्यानि चोत्पलकुमुदपद्मपुण्डरीकमान्दारवाणां पुष्पाणि क्षिप्तानि, सर्वं च कपिलवस्तु नगरं यशसा आपूरितम्, सर्वगृहेषु चास्य नाम्ना पताका उच्छ्रापिताः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य जातस्य यशसा सर्व-
B 385

---

१ Mss. मल्लपताकः.

लोक आपूरितः, तस्माद्भवतु दारकस्य विदितयशा इति नामेति । विदितयशा दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् । स च श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितप्रतिपन्नः कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः ॥

यावदपरेण समयेन न्यग्रोधारामं गतः । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम् । प्रसादजातश्च भगवत्पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । तस्मै भगवता आशयानुशयं धातु प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा विदितयशसा दारकेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतापत्तिफलं साक्षात्कृतम् । स दृष्टसत्यः श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकेभ्यो II 336 दानप्रदानानि दत्त्वा मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविद्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः । स याचितचीवरं परिभुङ्क्ते अल्पमयाचितम्, याचितपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारान् परिभुङ्क्ते अल्पमयाचितम् ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त विदितयशसा कर्माणि कृतानि येन जातमात्रस्य देवताभिः पताका उच्छ्रापिताः, यशसा च सर्वलोक आपूर्णः, प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति । भगवानाह—विदितयशसैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । विदितयशसा कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्येकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि B 337 विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो

भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । यावद्विपश्यी सम्यक्संबुद्धः सकलं बुद्धकार्यं कृत्वा इन्धनक्षयादिवाग्निर्निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः, तस्य राज्ञा बन्धुमता शरीरे शरीरपूजां कृत्वा समन्तयोजनश्चतूरत्नमयः स्तूपः प्रतिष्ठापितः क्रोशमुच्चत्वेन । यत्र अनेकानि प्राणिशतसहस्राणि कारान् कृत्वा स्वर्गमोक्षपरायणानि भवन्ति । यावद्राज्ञा बन्धुमता स्तूपमहः कारितः । तत्र च स्तूपमहे वर्तमाने मल्लानां मध्ये पताका उच्छ्रापिता । यावद्राजमल्लेन राजमल्लो निहतः । ततस्तेन मल्लपताका आसादिता । स तामादाय अनेकप्राणिशतसहस्रपरिवृतो नानाविचित्रैर्वाद्यैर्वाद्यमानैर्येन विपश्यिनः स्तूपस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य तथागतगुणानामनुस्मरणं कृत्वा तां पताकां स्तूपयष्ट्यां बद्ध्वा प्रणिधानं कृतवान्—अहमप्येवंविधानां गुणानां लाभी स्याम्, एवंविधमेव शास्तारमारागयेयं मा विरागयेयमिति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन मल्ल आसीत्, अयं स विदितयशाः । यदनेन विपश्यिनः स्तूपे काराः कृतास्तेन संसारेऽनन्तं सुखमनुभूतवान् । तेनैव हेतुना इदानीमर्हत्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव
B 388 एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥



अष्टमो वर्गः।

तस्योद्दानम्—

सुप्रभा सुप्रिया चैव शुक्ला सोमा तथापरा।
कुवलया सुन्दरी चैव मुक्ता चैव कचङ्गला।
क्षेमा विरूपा च * * वर्गो भवति समुदितः॥

७१ सुप्रभा।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 1
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। श्रावस्त्यामन्यतमः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारिका जाता अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका दिव्यालंकारभूषिता मणिरत्नेन कण्ठे आबद्धेन। तस्माच्च प्रभा निर्गच्छति, यया सर्वा श्रावस्ती अवभासते। तस्या जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारिकाया नामेति। ज्ञातय ऊचुः—यस्मादनया जातमात्रया मणिरत्नावभासेन सर्वा श्रावस्ती अवभासिता, तस्माद्भवतु दारिकायाः सुप्रभेति नामेति। सा सुप्रभा दारिका अष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्ता द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सा अष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन B 2
सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्। सा दारिका श्राद्धा भद्रा कल्याणाशया आत्महितपरहितप्रतिपन्ना। तस्या ये ये याचनका आगच्छन्ति, तेभ्यस्तेभ्यः कण्ठादलंकारमवमुच्य प्रयच्छति। दत्ते च पुनरलंकारः प्रादुर्भवति॥

यावदसौ दारिका क्रमेण महती संवृत्ता, तदा तस्या बहवो याचनका आगच्छन्ति, राजपुत्रा अमात्यपुत्राः श्रेष्ठिपुत्राश्च। तैरुपद्रूयमाणः पिता चास्याः करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः—यद्येकस्मै दास्यामि, अन्ये मे अमित्रा भविष्यन्तीति। यावदसौ दारिका पितरं चिन्तापरमवेक्ष्योवाच—तात किमसि चिन्तापर इति। तेन सोऽर्थो विस्तरेण समाख्यातः। दारिका कथयति—तात न ते शोकः कर्तव्यः। स्वयमेवाहं सप्तमे दिवसे स्वयंवरमवतरिष्यामीति। ततः श्रेष्ठी राज्ञः प्रसेनजितो निवेद्य श्रावस्त्यां घण्टावघोषणं कारयामास—सप्तमे दिवसे सुप्रभा दारिका स्वयंवरमवतरिष्यति, येन वो यत्करणीयं स तत्करोत्विति॥

१ Volume II of Speyer's edition commences here.

B 3 ततः सप्तमे दिवसे सुप्रभा दारिका रथाभिरूढा काषायं ध्वजमुच्छ्राप्य बुद्धं चित्रपटे लेखयित्वा अभिष्टुवती वीथीमवतीर्णा । सा तत्र राजपुत्रैरमात्यपुत्रैः श्रेष्ठिपुत्रैश्च सोत्कण्ठोद्वीक्ष्यमाणा विचित्राभिः कथाभिः संज्ञप्योवाच—सर्वथाहं न केनचिदंशेन भवतां परिभवं करोमि। केवलं तु नाहं कामेनार्थिनी। बुद्धं शरणं गतास्मि। तस्य सकाशे प्रव्रजिष्यामीति । ततस्ते निर्भर्त्सिताः प्रतिनिवृत्ताः । सुप्रभापि दारिका भगवत्सकाशमुपसंक्रम्य भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णा धर्मश्रवणाय । तस्या भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा सुप्रभया दारिकया विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम्, अभिनिर्हारश्च कृतः । अथ सुप्रभा दारिका उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणमय्य भगवन्तमिदमवोचत्—लभेयाहं भदन्त स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुणीभावम् । चरेयमहं भगवतोऽन्तिके ब्रह्मचर्यमिति । ततो भगवान् संलक्षयति—

B 4 अनया अस्मच्छासने महद्विनेयाकर्षणं कर्तव्यमिति । ततो भगवतोक्ता—गच्छ दारिके पर्षदमवलोकयेति । ततः सुप्रभा दारिका जेतवनान्निर्गत्य तत्रागता । तत्रैकैकस्यैवं भवति—बलेनैनां हराम इति । ते तामाक्रमितुमारब्धाः । ततः सुप्रभा दारिका तैरुपक्रम्यमाणा विततपक्ष इव हंसराजो गगनतलमभ्युद्गम्य विचित्राणि प्रातिहार्याणि दर्शयितुमारब्धा । आशु पृथग्जनस्य ऋद्धिरावर्जनकरी । ततस्ते तदत्यद्भुतं देवमनुष्यावर्जनकरं प्रातिहार्यं दृष्ट्वा उद्दण्डरोमाणो मूलनिकृत्ता इव द्रुमाः पादयोर्निपत्य विज्ञापयितुमारब्धाः—अवतर अवतर भगिनि, यथैते त्वया धर्माः साक्षात्कृताः । अस्थानमेतद् यत्त्वं कामान् परिभुञ्जीथा इति । ततः सुप्रभा दारिका गगनतलादवतीर्य जनकायस्य पुरस्तात्स्थित्वा तथाविधां धर्मदेशनां कृतवती, यां श्रुत्वा अनेकैः प्राणिशतसहस्रैः सत्यदर्शनं कृतम् । ततो भगवता महाप्रजापत्याः संन्यस्ता । ततस्तया प्रव्राजिता उपसंपादिता च । तया युज्यमानया घटमानया व्यायच्छमानया इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन्ती संवृत्ता, त्रैधातुकवीतरागा

B 5 समलोष्टकाञ्चना आकाशपाणितलसमचित्ता वासीचन्दनकल्पा विद्याविदारिताण्डकोशा विद्याभिज्ञाप्रतिसंविप्राप्ता भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखा[1] । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्या मान्याभिवाद्या च संवृत्ता ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वे संशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त सुप्रभया दारिकया कर्माणि कृतानि, येनाभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका, मणिरत्नं च कण्ठे प्रादुर्भूतम्, प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति । भगवानाह—सुप्रभयैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि

[1] The correct form, according to Pāṇini, 4. 1. 54, should be पराङ्मुखी, but our Mss. read पराङ्मुखा throughout.

कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । यावद्विपश्यी सम्यक्संबुद्धः B 6
सकलं बुद्धकार्यं कृत्वेन्धनक्षयादिवाग्निर्निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः, तस्य राज्ञा बन्धुमता शरीरे शरीरपूजां कृत्वा समन्तयोजनश्चतूरत्नमयः स्तूपः प्रतिष्ठापितः क्रोशमुच्चत्वेन । या बन्धुमतो राज्ञोऽग्रमहिषी वृद्धीभूता, तया विचित्राण्याभरणानि शरीरादवमुच्य तत्र स्तूपे दत्तानि । ततः पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कृतवती—अनेन कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन चार्हत्त्वं प्राप्नुयामिति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो याऽसा तेन कालेन तेन समयेन राज्ञो बन्धुमतो अग्रमहिषी आसीत्, इयं सा सुप्रभा । यदनया विपश्यिनः स्तूपे विचित्राण्याभरणानि समारोपितानि, तेनाभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेता संवृत्ता । यत्प्रणिधानं कृतम्, तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

७२ सुप्रिया ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 7
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन अनाथपिण्डदस्य गृहपतेः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारिका जाता अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेता श्रावस्त्यधिवासिनो जनकायस्यातीव प्रिया । तस्या जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारिकाया नामेति । ज्ञातय ऊचुः—यस्मादियं प्रिया सर्वजनस्य, तस्माद्भवतु दारिकायाः सुप्रियेति नामेति । जातिसरा जातमात्रा गाथां भाषते—

दत्तं हि दानं बहु वाल्पकं वा
विस्तीर्यते क्षेत्रविशेषयोगात् ।
तस्माद्धि देयं विदुषा प्रयत्नात्
बुद्धाय लोकेन्द्रसुरेश्वराय ॥ १ ॥

अथास्या मातापितरावन्ये च गृहवासिनस्तं वाक्यव्याहारं श्रुत्वा भीतास्त्रस्ताः
B 8 संविग्ना आहृष्टरोमकूपाः कथयन्ति—पिशाचीव सेयं दारिकेति । सा कथयति—अम्ब नाहं
पिशाची नापि राक्षसी, किं तर्हि दारिका । इच्छामि दानानि दातुमिति । ततोऽस्या मात्रा
अनाथपिण्डदस्य गृहपतेर्निवेदितम्—एवमेषा दारिका ब्रूत इति । ततस्तेन गृहपतिना हृष्टतुष्ट-
प्रमुदितेन भगवानन्तर्गृहे सभिक्षुसंघो भोजितः, तस्याश्च नाम्ना दक्षिणादेशनं कारितम् ॥

यावदसौ दारिका क्रमेण सप्तवर्षा संवृत्ता, मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने
प्रव्रजिता । सा सर्वासां भिक्षुणीनामिष्टा कान्ता प्रिया मनापा । यावत्तत्र कालेन महादुर्भिक्षं
प्रादुर्भूतं दुर्भिक्षान्तरकल्पसदृशम्, यत्रानेकानि प्राणिशतसहस्राणि अन्नपानवियोगात्कालं
कुर्वन्ति । तत्र भगवानायुष्मन्तमानन्दमामन्त्रयते स्म—गच्छ आनन्द, मद्वचनात्सुप्रियां वद—
चतस्रस्ते पर्षदस्त्रैमास्यं चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैः प्रतिपादयितव्या
इति । तत आयुष्मानानन्दः सुप्रियां गत्वोवाच—भगवानाह—चतस्रस्ते परिषदस्त्रैमास्यं
चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैः प्रतिपादयितव्या इति । ततः सुप्रिया
कृतकरपुटा भगवत आज्ञां शिरसि कृत्वा कथयति—एवमस्त्विति ॥

B 9 सुप्रिया श्रावस्तीमभिसंप्रस्थिता गोचरव्यवलोकनार्थम् । यावदेषा प्रवृत्तिरनाथपिण्डदेन
श्रुता । स त्वरितं सुप्रियाया अग्रतो भूतः कथयति—सुप्रिये क्व गच्छसीति । सा कथयति—
भगवानाह त्रैमास्य वैयावृत्यकर्मणि नियुक्तेति । अनाथपिण्डद उवाच—अल्पोत्सुका भव, अहं त्वां
सर्वेण प्रचारयामीति । सुप्रिया कथयति—किमत्राश्चर्यं यदि तातो दृष्टसत्यः प्रचारयति समन्ततो-
ऽन्तर्हितानि निधानान्यभिसमीक्ष्य । अहं तु दरिद्रजनस्यानुग्रहं करोमीति । तया पञ्चभिरुपा-
सकशतैरल्पोत्सुका क्रियते । मल्लिकया देव्या, वर्षाकारया क्षत्रियया, ऋषिदत्तपुराणाभ्यां
स्थपतिभ्यां, विशाखया मृगारमात्रा, राज्ञा प्रसेनजिता । अटवीगता तत्राप्यमनुष्यैर्मनुष्यवेष-
धारिभिः प्रचार्यते । तया एवं प्रचार्यमाणया भगवान् सश्रावकसंघस्त्रैमास्यमुपस्थितश्चीवर-
पिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैः । तत्रैव च त्रैमास्ये युज्यमानघटमानव्यायच्छ-
B 10 मानया इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरण-
विध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन्ती संवृत्ता त्रैधातुक-
वीतरागा समलोष्टकाञ्चना आकाशपाणितलसमचित्ता वासीचन्दनकल्पा विद्याविदारिताण्ड-
कोशा विद्याभिज्ञाप्रतिसंविद्प्राप्ता भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखा । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां
पूज्या मान्याभिवाद्या च संवृत्ता ॥

अथ भगवांस्त्रैमास्यात्ययात् कृतचीवरो निष्ठितचीवरः समादाय पात्रचीवरं श्रावस्त्या राजगृहं संप्रस्थितः सार्धं श्रावकसंघेन । ततः सुप्रियया भगवानन्तर्मार्गे अल्पोत्सुकः कृतः । यावदसौ [१] [अल्पो]दिकामटवीमनुप्राप्तः, गण्डीदेशकालो जातः, पथ्यदनं च नास्ति । तया भगवान् सश्रावकसंघः उपनिवेशितः । ततः पात्रं वामे पाणौ प्रतिष्ठाप्योवाच, प्रव्याहृतवती—यदि पुण्यानामस्ति विपाकः, पात्रमेवंविधभक्ष्यभोज्यादिना परिपूर्येतेति । ततो देवतया दिव्यया सुधया परिपूरितम् । ततः सुप्रियया अनुपरिपाटिकया सर्वस्य भिक्षु- B 11 संघस्य पात्राणि पूरितानि । तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म—एषा अग्रा मे भिक्षवो भिक्षुणीनां मम श्राविकाणां कृतपुण्यानां यदुत सुप्रिया भिक्षुणी ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः । कानि भदन्त सुप्रियया कर्माणि कृता(नि) येन आढ्ये कुले जाता अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका अभिमता सर्वजनस्य, प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति । भगवानाह—सुप्रिययैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । सुप्रियया कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि । B 12
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ २ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि अस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । अथ काश्यपः सम्यक्संबुद्धः पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो वाराणसीं नगरीं पिण्डाय प्राविक्षत् । यावदन्यतरः श्रेष्ठी सपरिजन उद्यानं गतः, प्रभूतं च खादनीयं भोजनीयं नीतम् । यावत्तस्य प्रेष्यदारिकया [२] * * * * । (तया) भगवान् सश्रावकसंघोऽन्तर्मार्गे दृष्टः । तस्याः प्रसादजातायाः बुद्धिरुत्पन्ना—किं मां स्वामी द्विरपि दासीकरिष्यति, यन्न्वहं भगवन्तं भोजयेयमिति । ततस्तया बन्धनताडनमगणयित्वा भक्तपेडामुद्दाय भगवान् सश्रावकसंघो विचित्रेणाहारेण संतर्पितः । ततः श्रेष्ठिनः सकाशमुपसंक्रान्ता । यावच्छ्रेष्ठिना उक्ता—दारिके क्व सा भक्तपेडेति । सा कथयति—भगवान् मे काश्यपः सम्यक्संबुद्धः पिण्डकेन प्रतिपादितः । इति B 13

१ Neither Tibetan nor Chinese translations give any help to restore the gap २ The gap, according to Tibetan translation, indicates that the slave girl carried cooked rice According to कल्पद्रुमावदान, it is पेडामादाय पैटिकीम्

श्रुत्वा श्रेष्ठी परं विस्मयमापन्नः । ततस्तेन हृष्टतुष्टप्रमुदितेनोक्ता—गच्छ दारिके, अद्याग्रेण त्वमदासी भव, या त्वं मम सुप्तस्य जागर्षीति । सा कृतकरपुटा गृहपतिं विज्ञापितवती—अनुजानीहि माम्, भगवच्छासने प्रव्रजिष्यामीति । ततोऽस्याः श्रेष्ठिना पात्रचीवरं दत्तम् । सा स्वकेन पात्रचीवरेण भगवच्छासने प्रव्रजिता । भगवतः काश्यपस्य प्रवचने दशवर्षसहस्राणि वैयावृत्यं कृतम्, मञ्चैस्तर्पणैर्यवागूपानैर्नित्यकैर्नैमित्तिकैर्दीपमालाभिः कठिनचीवरैर्दानप्रदानानि दत्त्वा प्रणिधानं कृतम्—यन्मया भगवते काश्यपाय कृच्छ्रेण समुदानीय दानप्रदानानि दत्तानि, अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च भगवतः शाक्यमुनेः प्रव्रज्यार्हत्त्वं प्राप्नुयामिति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो यासौ प्रेष्यदारिका, इयमसौ सुप्रिया । यदनया भगवान् काश्यपः पिण्डकेन प्रतिपादितः, तेन आढ्ये कुले जाता अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका अभिमता सर्वजनस्य । यत्प्रणिधानं कृतं तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

७२ शुक्ला ।

B 14 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे । शाक्येषु रोहिणो नाम शाक्यः प्रतिवसति आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतो न पुत्रो न दुहिता । स करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः—अनेकधनसमुदितं मे गृहम्, न मे पुत्रो न दुहिता । ममात्ययात्सर्वस्वापतेयमपुत्रकमिति कृत्वा राजविधेयं भविष्यतीति । स श्रमणब्राह्मणनैमित्तिकसुहृत्संबन्धिबान्धवैरुच्यते—देवताराधनं कुरुष्वेति । सोऽपुत्रः पुत्राभिनन्दी शिववरुणकुबेरवासवादीनन्यांश्च देवताविशेषानायाचते । तद्यथा—आरामदेवता वनदेवताश्चत्वरदेवताः शृङ्गाटकदेवता बलिप्रतिग्राहिका देवताः । सहजाः सहधार्मिका नित्यानुबद्धा अपि देवता आयाचते स्म । अस्ति चैष लोके प्रवादो यदायाचनहेतोः पुत्रा जायन्ते दुहितरश्चेति । तच्च नैवम् । यद्येवमभविष्यत्, एकैकस्य पुत्रसहस्रमभविष्यत्तद्यथा राज्ञश्चक्रवर्तिनः । अपि तु
B 15 त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च । कतमेषां त्रयाणाम् ? मातापितरौ

रक्तौ भवत संनिपतितौ, माता कल्या भवति ऋतुमती, गन्धर्वश्च प्रत्युपस्थितो भवति। एतेषा त्रयाणा स्थानाना संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च ॥

स चैवमायाचनपरस्तिष्ठति। अन्यतमा च दारिका अन्यतमस्माद्देवनिकायाच्च्युत्वा तस्य प्रजापत्या कुक्षिमवक्रान्ता। तया स्वामिने निवेदितम्। तत स्वामिनोच्यते—भद्रे यदि पुत्र जनिष्यसीत्येव कुशलम्, अथ दुहितरम्, तयैव सह त्वा निष्कासयामीति। यावदसावष्टाना वा नवाना वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारिका जाता अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका अतिक्रान्ता मानुष वर्णमसंप्राप्ता च दिव्य वर्णम्, शुक्लैर्वस्त्रै प्रावृता अनुपलिप्तैव गर्भमलेन। यावद्रोहिणेन श्रुत प्रजापती ते प्रसूता दारिका जातेति, स क्षुपित प्रविष्ट। ततोऽस्य प्रजापत्या दिव्यवस्त्रप्रावृता दारिकोपनीता। ततो रोहिण शाक्यो दारिका दृष्ट्वा पर विस्मयमापन्न। तस्या जातौ जातिमह कृत्वा नामधेय व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारिकाया नामेति। ज्ञातय ऊचु—यस्मादिय शुक्लवस्त्रपरिवृता जाता, तस्माद्भवतु दारिकाया शुक्लेति नामेति। शुक्ला दारिका अष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्ता द्वाभ्यामसधात्रीभ्या द्वाभ्या क्षीरधात्रीभ्या द्वाभ्या मलधात्रीभ्या द्वाभ्या क्रीडनिकाभ्या धात्रीभ्याम्। सा अष्टाभिर्धात्रीभि B 16
रुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषै। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्। यथा यथा च शुक्ला दारिका वर्धते, तथा तथा तान्यपि वस्त्राणि वर्धन्ते न च मलिनीभवन्ति, न चास्या कायो मलेनाभिभूयते ॥

यदा शुक्ला दारिका क्रमेण महती संवृत्ता, तदास्या बहवो याचनका आगच्छन्ति राजपुत्रा अमात्यपुत्राश्च। ततस्तैरुपद्रूयमाण पिता चास्या करे कपोल दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थित—यद्येकस्मै दास्यामि, अन्ये मे अमित्रा भविष्यन्तीति। यावदसौ दारिका पितर चिन्तापरमवेक्ष्योवाच—तात किमसि चिन्तापर इति। तेन सोऽर्थो विस्तरेण समाख्यात। दारिका कथयति—तात न ते शोक कर्तव्य, नाह कामेनार्थिनी, भगवच्छासने प्रव्रजिष्यामि, अनुजानीहि मा तातेति। यावदसौ मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजिता। येनैव वस्त्रेण प्रावृता जाता, तत एव परिपूर्णं पञ्चचीवर संपन्नम्। तया युज्यमानया घटमानया व्यायच्छमानया इदमेव पञ्चगण्डक संसारचक्र चलाचल विदित्वा सर्वसंस्कारगती शतनपतनविकिरणविध्वसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्व साक्षात्कृतम्। अर्हन्ती संवृत्ता, त्रैधातुकवीतरागा समलोष्टकाञ्चना आकाशपाणितलसमचित्ता वासीचन्दनकल्पा विद्याविदारिताण्डकोशा विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्ता भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखा। सेन्द्रोपेन्द्राणा देवाना पूज्या मान्याभिवाद्या च संवृत्ता ॥

भिक्षव संशयजाता सर्वसंशयच्छेत्तार बुद्ध भगवन्त पप्रच्छु—कानि भदन्त शुक्लया कर्माणि कृतानि, येनाढ्ये कुले जाता अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका शुक्लवस्त्रप्रावृता। B 17
प्रव्रज्य चार्हत्त्व साक्षात्कृतमिति। भगवानाह—शुक्लयैव भिक्षव पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यभावीनि। शुक्लया

कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि अस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । यावदन्यतरा श्रेष्ठिभार्या श्राद्धा भद्रा कल्याणाशया केनचिदेव करणीयेन ऋषिपतनं गता । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्च भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णा धर्मश्रवणाय । ततोऽस्या भगवता काश्यपेन धर्मो देशितः । तया लब्धप्रसादया भगवन्तं
B 18 सश्रावकसंघमन्तर्गृहे भोजयित्वा भिक्षुसंघाय कठिनचीवरमनुप्रदत्तम्, क्रमेण च मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजिता ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो यासौ श्रेष्ठिभार्या, एषैवासौ शुक्ला भिक्षुणी । यदनया भिक्षुसंघाय कठिनचीवरमनुप्रदत्तं तेन शुक्लवस्त्रप्रावृता जाता । यद्ब्रह्मचर्यवासः परिपालितस्तेनेह जन्मन्यर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ।

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

७४ सोमा ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः
B 19 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । श्रावस्त्यामन्यतमो ब्राह्मण आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी त्रयाणां वेदानां पारगः सनिघण्टकैटभानां साक्षरप्रभेदानामितिहासपञ्चमानां पदशो व्याकरणः[१] । स पञ्च माणवकशतानि ब्राह्मणकान् मन्त्रान् पाठयति । तेन

---

[१] व्याकरणः means one who explains or expounds.

पुत्रहेतो सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयत पत्नी आपन्नसत्वा संवृत्ता। सा अष्टाना वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारिका जाता अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेता। तस्या जातौ जातिमह कृत्वा नामधेय व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारिकाया नामेति। ज्ञातय ऊचु—प्रायशोऽस्माक पुत्रपौत्रिकाया सोमनामानि क्रियन्ते। भवतु दारिकाया सोमेति नाम। B 20
सोमा दारिका उन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तै-रुपकरणविशेषै। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्॥

यदा क्रमेण महती संवृत्ता, सा पण्डिता व्यक्ता मेधाविनी पटुप्रचारा स्मृतिमती श्रुतिधरा च। यावदस्या पिता माणवकान् मन्त्रान् पाठयति, सा श्रुतमात्रेणोद्गृह्णाति। श्रुत्वा च तेषा शास्त्राणा पूर्वापरेण व्याख्यान करोति। ततोऽस्या यशसा सर्वा श्रावस्ती स्फुटा संवृत्ता। तीर्थ्याश्चास्या अहन्यहनि दर्शनायोपसंक्रामन्ति, तया च सह विनिश्चय कुर्वन्ति। यदा भगवाननुत्तरा सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्ध, तदा श्रावस्तीमागत। प्रायेण ये पण्डिता पण्डितसंख्याता, ते भगवतो दर्शनायोपसंक्रामन्ति। तत सा तान् नपश्यन्ती अन्तर्जन-मामन्त्रयते—कोऽत्र भवन्तो हेतुर्येनैतर्हि शास्त्रविदो नोपसंक्रामन्तीति। ते कथयन्ति—भगवान् सर्वज्ञ शाक्यमुनिर्नामेह संप्राप्त, सर्वे तच्छ्रवणा संवृत्ता इति। ततो बुद्ध इत्यश्रुतपूर्वं घोष श्रुत्वास्या सर्वरोमकूपा हृष्टा। तत्र सोमा दारिका बुद्धशब्दश्रवणाद्भगवत्सकाशमुपसंक्रान्ता। B 21
अथासौ ददर्श बुद्ध भगवन्त द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणै समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनै-र्विराजितगात्र व्यामप्रभालंकृत सूर्यसहस्रातिरेकप्रभ जङ्गममिव रत्नपर्वत समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाच्च भगवत्पादाभिवन्दन कृत्वा पुरस्तान्निषण्णा धर्मश्रवणाय। अथ भगवान् सोमाया दारिकाया आशयानुशय धातु प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशना कृतवान्, या श्रुत्वा सोमया विंशतिशिखरसमुद्गत सत्कायदृष्टिशैल ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोता-पत्तिफल साक्षात्कृतम्। सा दृष्टसत्या महाप्रजापत्या सकाशे प्रव्रजिता। तया युज्यमानया घटमानया व्यायच्छमानया इदमेव पञ्चगण्डक ससारचक्र चलाचल विदित्वा सर्वसंस्कार-गतीं शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्व साक्षात्कृतम्। अर्हन्ती संवृत्ता त्रैधातुकवीतरागा समलोष्टकाञ्चना आकाशपाणितलसमचित्ता वासीचन्दन-कल्पा विद्याविदारिताण्डकोशा विद्याभिज्ञाप्रतिसंविल्लब्धा भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखा। सेन्द्रोपेन्द्राणा देवाना पूज्या मान्याभिवाद्या च संवृत्ता॥

यदा भगवता भिक्षुभ्य आज्ञा दत्ता—यूयमेव भिक्षवोऽर्धमास प्रातिमोक्ष-सूत्रोद्देशमुद्दिशतेति, तदा महाप्रजापत्या—उद्दिशतु भगवान् प्रातिमोक्षम्, उद्दिशतु सुगत प्रातिमोक्षमिति। भगवानाह—न हि भिक्षुण्यस्तथागता अर्हन्त सम्यक्संबुद्धा पदशो धर्ममुद्दिशन्ति। यदि युष्माक काचिदुत्सहते सकृदुक्त धारयितुम्, एवमहमुद्दिशेयमिति। B 22
तेन खलु समयेन सा भिक्षुणी तस्यामेव पर्षदि संनिपण्णा संनिपतिता। अथ सा भिक्षुणी उत्थायासनादेकेन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणमय्य भगवन्तमेतदवोचत्—उद्दिशतु भगवान् प्राति-

मोक्षम्, उद्दिशतु सुगतः प्रातिमोक्षम्। अहं सकृदुक्तं धारयिष्ये। ततो भगवता विस्तरेणोद्दिष्टः, सोमया सकृदुक्तो धारितः। तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म—एषा अग्रा मे भिक्षवो भिक्षुणीनां मम श्राविकाणां बहुश्रुतानां श्रुतधरीणां यदुत सोमा भिक्षुणी॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त सोमया भिक्षुण्या कर्माणि कृतान्युपचितानि, येनाढ्ये कुले जाता अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका श्रुतिधरा च संवृत्तेति। भगवानाह—सोमयैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। सोमया कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति B 23 ऋषिपतने मृगदावे। यावदन्यतरा ब्राह्मणदारिका भगवतः काश्यपस्य शासने प्रव्रजिता। तया तत्रोद्दिष्टं पठितं स्कन्धकौशलं प्रतीत्य समुत्पादकौशलं स्थानास्थानकौशलं च कृतम्। न तु शकितं नैष्ठिकं ज्ञानमुत्पादयितुम्। यस्याश्चोपाध्यायिकायाः सकाशे प्रव्रजितासीद्, सा भगवता काश्यपेन श्रुतधरीणामग्रा निर्दिष्टा। ततः सोमया भिक्षुण्या मरणकाले प्रणिधानं कृतम्—यथा मे उपाध्यायिका श्रुतधरीणामग्रा निर्दिष्टा, एवमहमप्यनागतेऽध्वनि योऽसौ भगवता काश्यपेनोत्तरो नाम माणवो व्याकृतः—भविष्यसि त्वं माणव वर्षशतायुषि प्रजायां शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इति, तस्य शासने प्रव्रजिता भगवता शाक्यमुनिना श्रुतिधरीणामग्रा निर्दिश्येय॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो यासौ ब्राह्मणदारिका आसीद्, इयं सा सोमा भिक्षुणी। यदनया प्रणिधानं कृतम्, तेन श्रुतिधरीणामग्रा निर्दिष्टा। यदनया तस्योद्दिष्टं पठितं स्वाध्यायितम्, तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

७५ कुवलया।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 24 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। तेन खलु समयेन राजगृहे नगरे गिरिवल्गुसमागमो नाम पर्व प्रत्युपस्थितम्। तत्र सर्वेभ्यः षड्भ्यो महानगरेभ्यो जनकायः संनिपतति। यावद्दक्षिणापथान्नटाचार्य आगतः। तस्य दुहिता कुवलया नाम अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेता। सा रूपयौवनारोग्यमदमत्ता। यदा रङ्गमध्यमवतरति, तदा सर्वप्रेक्षकैः सोत्कण्ठैरुद्वीक्ष्यते। ये चाप्रतिसंख्यानबहुलास्तेषां मनांस्याकर्षति। तत्र यदा पर्व प्रत्युपस्थितं भवति, तदा पूरणप्रभृतयः सपर्षत्का उपसंक्रामन्ति। ततः कुवलया दारिका जनकायमुवाच—अस्ति भवन्तो राजगृहे B 25 नगरे कश्चिन्मनुष्यभूतो यो मे रूपेण समो विशिष्टतरो वेति। जनकायेनोक्ता—अस्ति श्रमणो गौतमः सपरिवार इति। कुवलयोवाच—किमसौ मनुष्यभूतोऽथ देव इति। मनुष्यभूतः स तु सर्वज्ञ इति॥

ततस्तद्वचनमुपश्रुत्य कुवलया सर्वालंकारभूषिता भगवत्सकाशमुपसंक्रान्ता। उपसंक्रम्य भगवतः पुरस्तात्स्थित्वा नृत्यति गायति वादयते स्त्रीलिङ्गानि स्त्रीचिह्नानि स्त्रीनिमित्तानि चोपदर्शयति। ये सरागा भिक्षवस्ते तया संभ्रामिताः। ततो भगवान् रागबहुलानां भिक्षूणां विनयनार्थं कुवलयायाश्च रूपयौवनमदापनयनार्थं तद्रूपानृद्ध्यभिसंस्कारानभिसंस्कृतवान्, येन कुवलया जीर्णा वृद्धा पलितशिरस्का खण्डदन्ता कुब्जगोपानसीवक्रा निर्मिता। तत्कालसमनन्तरमेव कुवलयाया आत्मानं बीभत्समभिवीक्ष्य योऽसौ रूपयौवनमदः स प्रतिविगतः। रागबहुलाश्च भिक्षवः संविग्नाः। ततः कुवलया अपगतमदा भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा भगवन्तं विज्ञापितवती—साधु मे भगवांस्तथा धर्मं देशयतु, यथाहमस्मात्पूतिकलेवरादल्पकृच्छ्रेण B 26 परिमुच्येयेति। अथ भगवान् कुवलयायास्तेषां चावीतरागाणां भिक्षूणामाशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तथाविधां धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा कैश्चिद्विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतापत्तिफलं साक्षात्कृतम्, कैश्चित्सकृदागामिफलम्, कैश्चिदनागामिफलम्, कैश्चित्प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। कुवलयापि लब्धप्रसादा भगवत्सकाशे प्रव्रजिता। तया युज्यमानया घटमानया व्यायच्छमानया इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन्ती संवृत्ता त्रैधातुकवीतरागा समलोष्टकाञ्चना आकाशपाणितलसमचित्ता वासीचन्दनकल्पा विद्याविदारिताण्डकोशा विद्या-

१ Mss. संचालिताः. Speyer संभ्रामिताः, attracted, captured.

भिज्ञाप्रतिसंविप्राप्ता भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखा । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्या मान्या अभिवाद्या च संवृत्ता । तैरपि नटैस्तेन संवेगेन सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—आश्चर्यं भदन्त यद्भगवता कुवलया नटदारिका रूपयौवनमदमत्ता जरया संवेज्य यावदत्यन्तनिष्ठे निर्वाणे प्रतिष्ठापिता इति । भगवानाह—किमत्र भिक्षव आश्चर्यं यदिदानीं मया विगतरागेण विगतद्वेषेण विगतमोहेन परिमुक्तेन जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैः सर्वज्ञेन सर्वाकारज्ञेन सर्वज्ञज्ञानज्ञेयवशिप्राप्तेन कुवलया दारिका रूपयौवनमदमत्ता जरया B 27 संवेज्य यावदत्यन्तनिष्ठे निर्वाणे प्रतिष्ठापिता । यत्तु मया अतीतेऽध्वनि सरागेण सद्वेषेण समोहेनापरिमुक्तेन जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैः कुवलया दारिका संवेज्य पञ्चसु व्रतप्रदेशेषु प्रतिष्ठापिता । तच्छृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यां ब्रह्मदत्तो नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नम् । प्रियमिवैकपुत्रकं राज्यं कारयति । यावदसौ राजा देव्या सह क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः कालान्तरेण देवी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको गौरः कनकवर्णश्छत्राकारशिराः प्रलम्बबाहुर्विस्तीर्णललाट उच्चघोषणः[1] संगतभ्रूस्तुङ्गनासः सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेतः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य पिता काशिराजः, अयं चाभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः, तस्माद्भवतु दारकस्य काशिसुन्दर इति नाम । काशिसुन्दरो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते B 28 क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् । यदा महान् संवृत्तस्तदा यौवराज्येऽभिषिक्तः । सोऽनेकदोषदुष्टमनर्थमूलं राजत्वं विदित्वा ऋषिषु प्रव्रजितः । स च हिमवत्कन्दरे प्रतिवसति फलमूलाम्बुभक्षोऽजिनवल्कलधारी अग्निहोत्रिकः । यावदपरेण समयेन फलानां[र्थं][2]मन्यतरं पर्वतकन्दरमनुप्रवृत्तः । यावत्तत्र किन्नरदारिका । ऋषिकुमारं दृष्ट्वा संरक्ता नृत्यति गायति वादयति स्त्रीचिह्नानि स्त्रीनिमित्तानि स्त्रीविक्रीडितान्युपदर्शयति । यावत्काशिसुन्दरेण ऋषिणा तस्या दारिकाया धर्मदेशना दत्ता । जीर्णासि भगिनि, प्रथमस्ते स्वरो मधुरः स्निग्धश्च, पश्चिमस्ते जर्जरीभूत इति । ततस्तेन तस्या धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा किन्नरकन्याया योऽभूद्रूपमदः

---

१ उच्चघोषणः may be due to the fusion of उच्चघोषः and °घोणः. २ Mss फलानां. Speyer adds अर्थम्, which is not necessary. This is a Prakritism for फलेभ्यः, i. e., फलान्यर्थम् as Prakrit has no dative form.

स प्रतिविगतः। तया प्रसादजातया प्रणिधानं कृतम्—यस्मिन् समयेऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्येथाः, तदा तेऽहं श्राविका स्यामिति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन ऋषिकुमारो
बभूव, अहं सः। किन्नरकन्या इयमेव कुवलया। भिक्षवो बुद्धं भगवन्तं पृच्छन्ति—कानि
भदन्त कुवलयया कर्माणि कृतानि येनाभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका संवृत्ता, कानि
कर्माणि कृतानि येनार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति। भगवानाह—कुवलययैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु B 29
जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। कुवलयया कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि चत्वारिंशद्वर्षसहस्रायुषि प्रजायां क्रकुच्छन्दो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स शोभावतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति। यावद्दक्षिणापथादन्यतरो नटाचार्य आगतः। तत्र शोभनेन राज्ञा भगवतः सकाशात्सत्यदर्शनं कृत्वा नटाचार्याणामाज्ञा दत्ता—बौद्धं नाटकं मम पुरस्तान्नाटयितव्यमिति। तैराज्ञा शिरसि प्रतिगृहीता—एवं भदन्तेति। ततः सर्वनटैर्बौद्धं नाटकं विचार्य मुनिनिर्जितं कृतम्।
यावद्राज्ञो[1]ऽमात्यगणपरिवृतस्य पुरतो नटा नाटयितुमारब्धाः। तत्र नटाचार्यः स्वयमेव B 30
बुद्धवेषेणावतीर्णः, परिशिष्टा नटा भिक्षुवेषेण। ततो राज्ञा हृष्टतुष्टप्रमुदितेन नटाचार्यप्रमुखो नटगणो महता धनस्कन्धेनाच्छादितः। ततस्ते भगवच्छासने लब्धप्रसादा दानप्रदानानि दत्वा सम्यक्प्रणिधानं चक्रुः—अनेन वयं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अनागतान् बुद्धानारागयेम, मा विरागयेमेति ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो ये ते नटाः, इमे ते कुवलयाप्रमुखाः। यदेभिस्तत्र प्रणिधानं कृतं तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

१ Mss. यावद्राजा अमात्यगणपरिवृतो नटं नाटयितुमारब्धः, which is quite good.

७६ काशिकसुन्दरी।

B 31 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः वाराणस्यां विहरति ऋषिपतने मृगदावे। वाराणस्यां नगर्यां राजा ब्रह्मदत्तो राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नम्। प्रियमिवैकपुत्रकं राज्यं पालयति। यावदसौ राजा देव्या सह क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः कालान्तरेण देवी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारिका जाता अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेता। तस्या जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारिकाया नामेति। ज्ञातय ऊचुः—यस्मादियं काशिराजस्य दुहिता सुरूपा च, तस्माद्भवतु दारिकायाः काशिसुन्दरीति नामेति। काशिसुन्दरी दारिका अष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्ता द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सा B 32 अष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्॥

यदा काशिसुन्दरी दारिका क्रमेण महती संवृत्ता, तदा प्रातिसीमैः षड्भी राजभी राज्ञो ब्रह्मदत्तस्य दूतसंप्रेषणं कृतम्—श्रुतमस्माभिर्यथा तव दुहिता जातेति। तदर्हस्यस्माकं पुत्राणामन्यतरस्मै अनुप्रदातुमिति। ततो राजा शोकागारं प्रविश्य करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितश्चिन्तयति—यद्येकस्मै दास्यामि, अपरेण सह मे विरोधो भविष्यतीति। काशिसुन्दरी दारिका सर्वालंकारविभूषिता पितुः सकाशमुपसंक्रान्ता। तया पिता शोकार्तो दृष्टः पृष्टश्च—तात किमर्थं शोकः क्रियत इति। पित्रा अस्या यथाभूतं समाख्यातम्। ततः काशिसुन्दरी पितरमुवाच—क्रियतां तात प्रतिसीमानां राज्ञां दूतसंप्रेषणम्। सप्तमे दिवसे काशिसुन्दरी दारिका स्वयंवरमवतरिष्यति। येन वो यत्करणीयं स तत्करोत्विति। यावत्सप्तमे दिवसे षट् प्रातिसीमा राजानः संनिपतिताः। काशिसुन्दर्यपि रथमभिरुह्य काषायं ध्वजमुच्छ्राप्य बुद्धपटं हस्तेन गृहीत्वा राजसभां गत्वोवाच—शृण्वन्तु भवन्तः प्रातिसीमा B 33 राजानः। नाहं भवतां रूपयौवनकुलभोगैश्वर्यं तुलयामि, अपि तु नाहं कामैरर्थिनी। य एष एव मे भगवान् बुद्धः पटे लिखितस्तस्याहं श्राविका। अस्य शासने प्रव्रजिष्यामीति॥

यावदृषिपतनं गत्वा भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा भगवन्तमिदमवोचत्—लभेयाहं भदन्त स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावम्। चरेयमहं भगवतोऽन्तिके ब्रह्मचर्यमिति। ततो भगवता महाप्रजापत्याः संन्यस्ता। ततस्तया प्रव्राजिता उपसंपादिता च। तया युज्यमानया घटमानया व्यायच्छमानया इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं

विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन्ती संवृत्ता त्रैधातुकवीतरागा समलोष्टकाञ्चना आकाशपाणितलसमचित्ता वासीचन्दनकल्पा विद्याविदारिताण्डकोशा विद्याभिज्ञाप्रतिसंविप्राप्ता भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखा। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्या मान्याभिवाद्या च संवृत्ता। ततस्ते राजपुत्रास्तस्या रूपयौवनशोभां समनुस्मृत्य रागमदमत्ताः प्रव्रजितामपि प्रार्थयितुं प्रवृत्ताः। सा तैः प्रार्थ्यमाना विततपक्ष इव हंसराजो गगनतलमभ्युद्गम्य विचित्राणि प्रातिहार्याणि विदर्शयितुमारब्धा। आशु पृथग्जनस्य ऋद्धिरावर्जनकरी। ततस्ते राजपुत्रा अत्यद्भुतं देवमनुष्यावर्जनकरं प्रातिहार्यं दृष्ट्वा आहृष्टरोमकूपाः पादयोर्निपत्य क्षमापयितुमारब्धाः—मर्षय भगिनि। यथैते त्वया धर्माः साक्षात्कृताः, अस्थानमेतद् यत्त्वं कामान् परिभुञ्जीथा इति। ततः काशिकासुन्दरी गगनतलादवतीर्य जनकायस्य पुरस्तात्स्थित्वा तथाविधां धर्मदेशनां कृतवती, यां श्रुत्वानेकैः प्राणिशतसहस्रैर्महान् विशेषोऽधिगतः॥ B 34

ततो भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त काशिसुन्दर्या कर्माणि कृतानि, येनैवमभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका। प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति। भगवानाह—काशिसुन्दर्यैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। काशिसुन्दर्या कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे त्रिंशद्वर्षसहस्रायुषि प्रजायां कनकमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। [1]* * * * *। यावत्तत्रान्यतरा राजदुहिता श्राद्धा भद्रा कल्याणाशया आत्महितपरहितप्रतिपन्ना। तया विहारं कारयित्वा सर्वोपकरणैः परिपूर्य भगवते सश्रावकसंघाय प्रतिपादितः। कनकमुनौ च सम्यक्संबुद्धे प्रव्रज्य दशवर्षसहस्राणि मैत्री भविता॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो या सा राजदुहिता, इयं सा काशिसुन्दरी दारिका। यदनया B 35 विहारः प्रतिपादितस्तेनाभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका संवृत्ता। यत्कनकमुनौ भगवति प्रव्रज्य दशवर्षसहस्राणि मैत्री भाविता तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

1 A sentence is wanting indicating the name of the place.

७७ मुक्ता।

B 36 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। श्रावस्त्यां पुष्यो नाम श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः कालान्तरेण पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारिका जाता अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका मुक्तामालया शिरसि बद्धया। तस्या जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारिकाया नामेति। ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्या जातमात्राया मुक्तामाला शिरसि प्रादुर्भूता, तस्माद्भवतु दारिकाया मुक्तेति नाम। मुक्ता दारिका अष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्ता द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सा अष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्॥

B 37 यावन्मुक्ता दारिका क्रमेण महती संवृत्ता। तस्याः सा मुक्तामाला अवतारिता पुनः प्रादुर्भवति। ततः सा दारिका कृपणवनीपकान् दृष्ट्वा भागसंविभागं करोति। यदा च प्रदेया संवृत्ता, तदा तस्या बहवो याचनका आगच्छन्ति राजपुत्रा अमात्यपुत्राः श्रेष्ठिपुत्राश्च। ततोऽस्याः पिता शोकागारं प्रविश्य करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितश्चिन्तयति—यद्येकस्मै दास्यामि, अन्ये मेऽमित्रा भविष्यन्तीति। ततोऽसौ दारिका पितरं विज्ञापयामास—तात किमर्थं शोकः क्रियत इति। तेन यथावृत्तं सर्वं तत्समाख्यातम्। ततो दारिका कथयति—तात नाहं कामैरर्थिनी। भगवच्छासने प्रव्रजिष्यामीति। यावदनाथपिण्डदस्य सुप्रियो नाम कनीयः पुत्रस्तेन पिता विज्ञप्तः। ममार्थायैतां दारिकां याचस्वेति। ततोऽनाथपिण्डदेन पुष्यस्य गृहपतेर्दूतसंप्रेषणं कृतम्—दीयतां मुक्ता दारिका मम पुत्राय। एवं कृतं सांबन्धिकं यावज्जीवसुखं कृतं च भविष्यतीति। ततः पुष्येण गृहपतिना स्वस्यां दुहितरि सोऽर्थो निवेदितः। सा कथयति—समयतो यदीन्द्रियाणां परिपाकान्मया सह भगवच्छासने प्रव्रजति, एवमहं तं भर्तारं वरयामीति। तेन तथैव कृतम्। यावदुभावेव गृहान्निष्क्रम्य भगवच्छासने प्रव्रजितौ। ताभ्यां युज्यमानाभ्यां घटमानाभ्यां व्यायच्छमानाभ्यामिद-
B 39 मेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन्तौ संवृत्तौ त्रैधातुकवीतरागौ समलोष्टकाञ्चनावाकाशपाणितलसमचित्तौ वासीचन्दनकल्पौ विद्याविदारिताण्डकोशौ विद्याभिज्ञाप्रतिसंविद्प्राप्तौ भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखौ। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यौ मान्यावभिवाद्यौ च संवृत्तौ॥

भिक्षव सशयजाता सर्वसशयच्छेत्तार बुद्ध भगवन्त पप्रच्छु—कानि भदन्त मुक्तया कर्माणि कृतानि येन मुक्तामालया शिरस्यावद्धया, प्रव्रज्य चार्हत्व साक्षात्कृतमिति । भगवानाह—मुक्तयैव भिक्षव पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यभावीनि । मुक्तया कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्य प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षव कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य काल च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजाया काश्यपो नाम सम्यक्सबुद्धो लोके उदपादि विद्याचरणसपन्न सुगतो लोकविदनुत्तर पुरुषदम्यसारथि शास्ता देवमनुष्याणा बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । यावदन्यतम सार्थवाह स महासमुद्रमवतीर्ण । तत स्वस्ति B 39
सुसिद्धयानपात्र आगत । ततस्तेन मुक्ताहार परमशोभन आनीत । तस्य च भार्या अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका । तेन तस्या शिरसि बद्ध ॥

वाराणस्यामन्यतमो गृहपति श्राद्धो भद्र कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्न कारुणिको महात्मा धर्मकाम । तस्य बुद्धिरुत्पन्ना—यन्वह छन्दकभिक्षण कृत्वा भगवत काश्यपस्य शासने पञ्चवार्षिक कुर्यामिति । तेन राज्ञ कृकिणो निवेदितम्—इच्छाम्यह छन्दकभिक्षण समादाय भगवत पञ्चवार्षिक कर्तुमिति । राज्ञा एवमस्त्विति समनुज्ञात । अथासौ गृहपतिर्हस्तिस्कन्धारूढो वाराणस्या नगर्यां रथ्यावीथीचत्वरशृङ्गाटकेषु च्छन्दकभिक्षण याचितु प्रवृत्त । यावत्सार्थवाहभार्या मुक्ताहार शिरसोऽवमुच्य तस्मिंश्छन्दकभिक्षणे दत्तवती । यावत्सार्थवाह आगतस्त मुक्ताहार शिरसोऽपनीत दृष्ट्वा पृष्टवान्—भद्रे क्वासौ मुक्ताहार इति । ततस्तयोक्तम्—आर्यपुत्र प्रीतिं जनय, प्रसादमुत्पादय, भगवच्छासने छन्दकभिक्षणे दत्त इति । यावत्सार्थवाहेन पुष्कलेन मूल्येन निष्क्रीय तस्यै पत्न्यै दत्त । सा नेच्छति पुनस्त ग्रहीतुम्, परित्यक्तो मे इति । स्वामिनोच्यते—भद्रे मया प्रभूतेन हिरण्यसुवर्णेनाय क्रीत । कस्मान्नेच्छसीति । ततोऽसौ दारिका त गृहीत्वा प्रभूत पुष्पसग्रह कृत्वा B 40
गन्धमाल्यानि च गृहीत्वा ऋषिपतन गता । ततो गन्धकुट्या गन्धप्रलेप कृत्वा पुष्पैरवकीर्य मुक्ताहार भगवतो मूर्ध्नि क्षिप्तवती । स सहसा भगवत काश्यपस्य मूर्धनि स्थित । तत. प्रसादजातया प्रणिधान कृतम्—अहमप्येवविधाना गुणाना लाभिनी स्याम्, एवविधमेव शास्तारमारागयेय मा विरागयेयमिति ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो यासौ तेन कालेन तेन समयेन सार्थवाहभार्या, इय सा मुक्ता। यदनया भगवति काश्यपे कारा कृतास्तेनाभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका । मुक्ताहारश्चास्या.

शिरसि प्रादुर्भूतः। तेनैव हेतुनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

७८ कचङ्गला।

B 41 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसङ्घः कचङ्गलायां विहरति काचङ्गलीये वनषण्डे। तस्यां कचङ्गलायां कचङ्गला नाम वृद्धा। सा घटमादाय उदकार्थिनी कूपमुपसृता। तत्र भगवानायुष्मन्तमानन्दमामन्त्रयते—गच्छ आनन्द, एतस्यां वृद्धायां कथय—भगवांस्तृषितः, पानीयमनुप्रयच्छस्वेति। सा आनन्देनोक्ता कथयति—अहं स्वयमेवानेष्यामीति। यावत्कचङ्गला पानीयघटं पूरयित्वा भगवतः सकाशं गता। ददर्श कचङ्गला बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनादस्याः पुत्रस्नेहः समुत्पन्नः, स्तनाभ्यां क्षीरधाराः प्रसृताः। सा ऊर्ध्वबाहुः पुत्र पुत्रेति भगवन्तं परिष्वक्तुमारब्धा। भिक्षवस्तां वारयन्ति। भगवानाह—मा यूयं भिक्षव इमां वृद्धां वारयत। तत्कस्य हेतोः?

B 42 पञ्चजन्मशतान्येषा [मम][1] माता आसीन्निरन्तरम्।
इयं मे पुत्रस्नेहेन गात्रेषु समश्लिक्षत॥ १॥
स चेदेषा निवार्येत मम गात्रेषु श्लेषणात्।
इदानीं रुधिरं क्षुण्णं कण्ठादस्याः स्रवेत्क्षणात्॥ २॥
कृतज्ञतामनुस्मृत्य दृष्ट्वेमां पुत्रलालसाम्।
कारुण्याद्गात्रसंश्लेषं ददामि अनुकम्पया॥ ३॥

यावदसौ पुत्रस्नेहं विनोद्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णा धर्मश्रवणाय। भगवता चास्या आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा कचङ्गलया विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम्। सा दृष्टसत्या गाथां भाषते—

यत्कर्तव्यं हि पुत्रेण मातुर्दुष्करकारिणा।
तत्कृतं भवता मह्यं चित्तं मोक्षपरायणम्॥ ४॥

---

[1] Speyer proposes ममाभवासीन्निरन्तरम् as the reading, to put the line in correct metrical form.

दुर्गतिभ्य समुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च ते अहम् ।
स्थापिता सर्वयत्नेन विशेष सुमहान् कृत ॥ ५ ॥

यावदसौ स्वामिनमनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजिता । तया युज्यमानया घटमानया B 43
व्यायच्छमानया इदमेव पञ्चगण्डक ससारचक्र चलाचल विदित्वा सर्वसस्कारगती शतन पतनविकिरणविध्वसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्व साक्षात्कृतम् । अर्हन्ती सवृत्ता त्रैधातुकवीतरागा समलोष्टकाञ्चना आकाशपाणितलसमचित्ता वासीचन्दनकल्पा विद्याविदारिताण्डकोशा विद्याभिज्ञाप्रतिसवित्प्राप्ता भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखा । सेन्द्रोपेन्द्राणा देवाना पूज्या मान्याभिवाद्या च सवृत्ता । यदा भगवान् भिक्षुणीना सक्षेपेणोद्दिश्य प्रतिसलयनाय प्रविशति, तदा कचङ्गला भिक्षुणीना व्याकरोति । तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म—एषाग्रा मे भिक्षवो भिक्षुणीना मम श्राविकाणा सूत्रान्तविभागकर्त्रीणा यदुत कचङ्गला भिक्षुणीति ॥

भिक्षव सशयजाता सर्वसशयच्छेत्तार बुद्ध भगवन्त पप्रच्छु —किं भदन्त कचङ्गल्या कर्म कृत येन वृद्धा प्रव्रजिता, किं कर्म कृत येन भगवान् पश्चिमगर्भवासेन धारित, प्रव्रज्य चार्हत्व साक्षात्कृतम्, सूत्रान्तविभागकर्त्रीणा चाग्रा निर्दिष्टा इति । भगवानाह—कचङ्गल्यैव भिक्षव पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यभावीनि । कचङ्गल्या कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्य प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षव कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि । B 44
सामग्रीं प्राप्य काल च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ ६ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि बोधिसत्त्वचर्यायां वर्तमानस्यैषा मे पञ्च जन्मशतानि माता आसीत् । निरन्तर यदाह प्रव्रजितुमिच्छामि, तदा मामेषा वारयति । तस्य कर्मणो विपाकेन वृद्धा प्रव्रजिता । दान ददतो मे दानान्तरायोऽनया कृत । तेन दरिद्रा सवृत्ता । किं त्वनया नेत्रनिधानि महेशाख्यसवर्तनीयानि कर्माणि कृतानि, यथा महामाया कृतवती । तेनाहमनया पश्चिमे न धारित । भूय काश्यपे भगवति प्रव्रजिता आसीत् । तत्रानया शैक्षाशैक्षा भिक्षुण्यो दासीवादेन समुदाचीर्णा । तेन दासी सवृत्ता । यत्तत्रानया पठित स्वाध्यायित स्कन्धकौशल प्रतीत्यसमुत्पादकौशल स्थानास्थानकौशल च कृतम्, तेनेदानीमर्हत्त्व साक्षात्कृतम्, सूत्रान्तविभागकर्त्रीणा चाग्रतया निर्दिष्टा । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णाना कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाक, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्ल, व्यतिमिश्राणा व्यतिमिश्र । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोग करणीय । इत्येव वो भिक्षव शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

———

७९ क्षेमा।

B 45 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। तेन खलु समयेन राजा प्रसेनजित्कौशलो राजा च ब्रह्मदत्त उभावप्येतौ परस्परविरुद्धौ। यावद्राजा प्रसेनजित्कौशलः स्वविषयपर्यन्तं गत्वा कटकवाटं बद्ध्वावस्थितः, राजा ब्रह्मदत्तश्च चतुरङ्गबलकायं संनाह्य हस्तिकायमश्वकायं रथकायं पत्तिकायं नद्याः कूले कटकवाटं बद्ध्वावस्थितः। यावद्राज्ञा प्रसेनजित्कौशलेन तत्रैवाग्रमहिषी नीता। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। ब्रह्मदत्तोऽपि देव्या सह क्रीडति रमते परिचारयति। येनैकदिवस एव राज्ञः प्रसेनजित्कौशलस्य दुहिता जाता, ब्रह्मदत्तस्य पुत्रः॥ यावदुभयोरपि राज्ञोः स्कन्धावारे[1] ....
B 46 ....ब्रह्मदत्तस्य स्कन्धावारे प्रवर्तते येनायमेवंविध उत्सव इति। तैराख्यातम्—राज्ञो ब्रह्मदत्तस्य पुत्रो जात इति। ब्रह्मदत्तेनापि तथैव पृष्टम्। कथयन्ति—राज्ञः प्रसेनजितो दुहिता जातेति। ततो राज्ञा ब्रह्मदत्तेन राज्ञः प्रसेनजितो दूतसंप्रेषणं कृतम्—श्रुतं मया यथा तव दुहिता जातेति। दिष्ट्या वर्धसे। अस्माकमपि पुत्रो जातः। किं तु दीयतामेषा दारिका मम पुत्राय। एवं कृते सांबन्धिके यावज्जीवं वैरोत्सर्गः कृतो भविष्यतीति। राज्ञा प्रसेनजिता प्रतिज्ञातम्—एवं भवत्विति। ततस्ताभ्यां परस्परं प्रीतौ कृतायां क्षेमे जाते राज्ञा ब्रह्मदत्तेन दारकस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थापितं क्षेमंकर इति। राज्ञा प्रसेनजिता कौशलेन दारिकाया जाताया जातिमहं कृत्वा क्षेमेति नामधेयं कृतम्। तावुभावप्युन्नीतौ वर्धितौ। यावत्कालेन महान्तौ संवृत्तौ॥

अथ स दारको दारिकाया हारार्धहारमाल्यं बध्नन् कण्ठेनगीन् प्रेषयति। यदासौ
B 47 दारिका महती संवृत्ता, तया ते पृष्टाः—कुत एतानि प्राभृतान्यागच्छन्ति? प्रेष्यैर्विस्तरेण स वृत्तान्त आवेदितः। श्रुत्वा च पितरं विज्ञापयामास—तात नाहं कामैरर्थिनी, भगवच्छासने प्रव्रजिष्यामि, अनुजानीहि मां तातेति। राजा कथयति—नैतद्दारिके शक्यं मया कर्तुम्, यस्मात्तव जन्मनि मम क्षेमं जातमिति। ततो राज्ञा प्रसेनजिता कौशलेन राज्ञो ब्रह्मदत्तस्य दूतसंप्रेषणं कृतम्—एषा मे दारिका प्रव्रजितुमिच्छति। आगत्यैनां गृहाणेति। यावद्राज्ञा ब्रह्मदत्तेन दिवसः प्रतिगृहीतः—सप्तमेऽहनि आगच्छामीति। यत्ते कृत्यं वा करणीयं वा तत्कुरुष्वेति। एष वृत्तान्तः क्षेमया दारिकया श्रुतः—सप्तमे दिवसे विवाहो भविष्यतीति। ततः क्षेमा भीता त्रस्ता संविग्ना आहृष्टरोमकूपा हर्म्यतलमभिरुह्य जेतवनाभिमुखी बुद्धं भगवन्तमायाचितुं प्रवृत्ता। आह च—

---

1 The gap does not seem to exist in the Tibetan translation. [illegible] is the portion wanted for the birth of a girl as well as of a son.

कृपकरुणविहारो व्यायमानो महर्षि
प्रशमदमविधिज्ञ पापह शान्तचित्त ।
मम विधिवदपायान्मोचय त्व हि नाथ B 48
शरणमुपगताह लोकनाथ ह्यनाथा ॥ १ ॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धाना भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम्। धर्मता खलु बुद्धाना भगवता महाकारुणिकाना लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणामेकवीराणामद्वितीयाना मद्वयवादिना शमथविपश्यनाविहारिणा त्रिदमथवस्तुकुशलाना चतुरोघोत्तीर्णाना चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठिताना पञ्चाङ्गविप्रहीणाना पञ्चगतिसमतिक्रान्ताना षडङ्गसमन्वागताना षट्पारमितापरिपूर्णाना सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकाना नवानुपूर्वसमापत्तिकुशलाना दशदिक्समापूर्णयशसा दशशतवशवर्तिविशिष्टाना त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोक व्यवलोक्य ज्ञानदर्शन प्रवर्तते–को हीयते, को वर्धते, क कृच्छ्रप्राप्त, क सकटप्राप्त, क सबाधप्राप्त, कोऽपायनिम्न, कोऽपायप्रवण कोऽपायप्राग्भार। कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम्। आह च–

अप्येवातिक्रमेद्वेला सागरो मकरालय ।
न तु वैनेयवत्साना बुद्धो वेलामतिक्रमेत् ॥ २ ॥

अथ भगवान् क्षेमाया विनयकालमवेक्ष्य ऋद्ध्या उपसक्रान्त । उपसक्रम्य तादृशी B 49 चतुरार्यसत्यसप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, या श्रुत्वा क्षेमया अनागामिफल प्राप्तमभिज्ञानिर्हारश्च। अथ क्षेमा अतिक्रान्तकामधातौ लब्धप्रतिष्ठा ॥

यावत् सप्तमे दिवसे विवाहकाले सप्राप्ते प्रत्युपस्थिते राजकुमारे अनेकजनशतसहाये वेदीमध्यगताया ब्राह्मणेन पुरोहितेन लाजा घृतसर्पिषानुप्रदत्ता । ततो दारकदारिकाहस्तसक्षेपणे क्रियमाणे क्षेमा पश्यतामनेकेषा प्राणिशतसहस्राणा विततपक्ष इव हसराजो गगनतलमभिरुह्य विचित्राणि प्रातिहार्याणि विदर्शयितुमारब्धा। ततो राजा प्रसेनजित्कौशलो राजा च ब्रह्मदत्त क्षेमकरश्च राजकुमारोऽन्ये च कुतूहलाभ्यागता सत्त्वा विस्मयमुपगता पादयोर्निपत्य विज्ञापयितुमारब्धा–मर्षय भगिनि, य एते त्वया धर्मा साक्षात्कृता, अस्थानमेतद्यत्त्व कामान् परिभुञ्जीथा इति । अथ क्षेमा गगनतलादवतीर्य जनकायस्य पुर स्थित्वा तथाविधा धर्मदेशना कृतवती, या श्रुत्वा अनेकै प्राणिशतसहस्रै सत्यदर्शन B 50 कृतम् । तत क्षेमा दारिका पितरमनुज्ञाप्य भगवत्सकाशमुपसक्रान्ता । भगवता च महाप्रजापत्या सन्यस्ता । ततस्तया प्रव्राजिता उपसपादिता च । तया युज्यमानया घटमानया व्यायच्छमानया इदमेव पञ्चगण्डक ससारचक्र चलाचल विदित्वा सर्वसस्कारगती शतनपतनविकिरणविध्वसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्व साक्षात्कृतम् । अर्हन्ती

७९ क्षेमा।

B 45 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। तेन खलु समयेन राजा प्रसेनजित्कौशल्यो राजा च ब्रह्मदत्त उभावप्येतौ परस्परविरुद्धौ। यावद्राजा प्रसेनजित्कौशल्यः स्वविषयपर्यन्तं गत्वा काष्ठवाटं बद्ध्वावस्थितः, राजा ब्रह्मदत्तश्च चतुरङ्गबलकायं संनाह्य हस्तिकायमश्वकायं रथकायं पत्तिकायं नद्याः कूले काष्ठवाटं बद्ध्वावस्थितः। यावद्राज्ञा प्रसेनजित्कौशल्येन तत्रैवाग्रमहिषी नीता। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। ब्रह्मदत्तोऽपि देव्या सह क्रीडति रमते परिचारयति। येनैकदिवस एव राज्ञः प्रसेनजित्कौशल्यस्य दुहिता जाता, ब्रह्मदत्तस्य पुत्रः॥ यावदुभयोरपि राज्ञोः स्कन्धावारे[1]........ B 46 ....ब्रह्मदत्तस्य स्कन्धावारे प्रवर्तते येनायमेवंविध उत्सव इति। तैराख्यातम्—राज्ञो ब्रह्मदत्तस्य पुत्रो जात इति। ब्रह्मदत्तेनापि तथैव पृष्टम्। कथयन्ति—राज्ञः प्रसेनजितो दुहिता जातेति। ततो राज्ञा ब्रह्मदत्तेन राज्ञः प्रसेनजितो दूतसंप्रेषणं कृतम्—श्रुतं मया यथा तव दुहिता जातेति। दिष्ट्या वर्धसे। अस्माकमपि पुत्रो जातः। किं तु दीयतामेषा दारिका मम पुत्राय। एवं कृते सांबन्धिके यावज्जीवं वैरोत्सर्गः कृतो भविष्यतीति। राज्ञा प्रसेनजिता प्रतिज्ञातम्—एवं भवत्विति। ततस्ताभ्यां परस्परं प्रीतौ कृतायां क्षेमे जाते राज्ञा ब्रह्मदत्तेन दारकस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थापितं क्षेमंकर इति। राज्ञा प्रसेनजिता कौशल्येन दारिकाया जाताया जातिमहं कृत्वा क्षेमेति नामधेयं कृतम्। तावुभावप्युन्नीतौ वर्धितौ। यावत्क्रमेण महान्तौ संवृत्तौ॥

अथ स दारको दारिकाया हारार्धहारमाल्यं बध्नन् कण्ठेमणीन् प्रेषयति। यदासौ B 47 दारिका महती संवृत्ता, तया ते पृष्टाः—कुत एतानि प्राभृतान्यागच्छन्ति? प्रेष्यैर्विस्तरेण स वृत्तान्त आवेदितः। श्रुत्वा च पितरं विज्ञापयामास—तात नाहं कामैरर्थिनी, भगवच्छासने प्रव्रजिष्यामि, अनुजानीहि मां तातेति। राजा कथयति—नैतद्दारिके शक्यं मया कर्तुम्, यस्मात्तव जन्मनि मम क्षेमं जातमिति। ततो राज्ञा प्रसेनजिता कौशल्येन राज्ञो ब्रह्मदत्तस्य दूतसंप्रेषणं कृतम्—एषा दारिका प्रव्रजितुमिच्छति। आगत्यैनां गृहाणेति। यावद्राज्ञा ब्रह्मदत्तेन दिवसः प्रतिगृहीतः—सप्तमेऽहनि आगच्छामीति। यत्ते कृत्यं वा करणीयं वा तत्कुरुष्वेति। एष वृत्तान्तः क्षेमया दारिकया श्रुतः—सप्तमे दिवसे विवाहो भविष्यतीति। ततः क्षेमा भीता त्रस्ता संविग्ना आहृष्टरोमकूपा शरणपृष्ठमभिरुह्य जेतवनाभिमुखी बुद्धं भगवन्तमायाचितुं प्रवृत्ता। आह च—

1 The gap does not seem to exist in the Tibetan translation. उत्सवः प्रवर्तते is the portion wanted for the birth of a girl as well as of a son.

कृपकरुणविहारो व्यायमानो महर्षिः
प्रशमदमविधिज्ञः पापहः शान्तचित्तः।
मम विधिवदपायान्मोचय त्वं हि नाथः B 48
शरणमुपगताहं लोकनाथं ह्यनाथा ॥ १ ॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम्। धर्मता खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणामेकवीराणामद्वितीयानामद्वयवादिनां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वसमापत्तिकुशलानां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते–को हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः कोऽपायप्राग्भारः। कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम्। आह च–

अप्येवातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत् ॥ २ ॥

अथ भगवान् क्षेमाया विनयकालमवेक्ष्य ऋद्ध्या उपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य तादृशी B 49 चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा क्षेमया अनागामिफलं प्राप्तमभिज्ञानिर्हारश्च। अथ क्षेमा अतिक्रान्तकामधातौ लब्धप्रतिष्ठा ॥

यावत्सप्तमे दिवसे विवाहकाले संप्राप्ते प्रत्युपस्थिते राजकुमारे अनेकजनशतसहाये वेदीमध्यगतायां ब्राह्मणेन पुरोहितेन लाजा घृतसर्पिषानुप्रदत्ताः। ततो दारकदारिकाहस्तसंश्लेषणे क्रियमाणे क्षेमा पश्यतामनेकेषां प्राणिशतसहस्राणां वितितपक्ष इव हंसराजो गगनतलमभिरुह्य विचित्राणि प्रातिहार्याणि विदर्शयितुमारब्धा। ततो राजा प्रसेनजित्कौशलो राजा च ब्रह्मदत्तः क्षेमंकरश्च राजकुमारोऽन्ये च कुतूहलाभ्यागताः सत्त्वा विस्मयमुपगताः पादयोर्निपत्य विज्ञापयितुमारब्धाः–मर्षय भगिनि, य एते त्वया धर्माः साक्षात्कृताः, अस्थानमेतद्यत्त्वं कामान् परिभुञ्जीथा इति। अथ क्षेमा गगनतलादवतीर्य जनकायस्य पुरः स्थित्वा तथाविधां धर्मदेशनां कृतवती, यां श्रुत्वा अनेकैः प्राणिशतसहस्रैः सत्यदर्शनं B 50 कृतम्। ततः क्षेमा दारिका पितरमनुज्ञाप्य भगवत्सकाशमुपसंक्रान्ता। भगवता च महाप्रजापत्याः सन्यस्ता। ततस्तया प्रव्राजिता उपसंपादिता च। तया युज्यमानया घटमानया व्यायच्छमानया इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं भित्त्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन्ती

संवृत्ता त्रैधातुकवीतरागा समलोष्टकाञ्चना आकाशपाणितलसमचित्ता वासीचन्दनकल्पा विद्याविदारिताण्डकोशा विद्याभिज्ञाप्रतिसंविल्प्राप्ता भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखा । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्या मान्याभिवाद्या च संवृत्ता । तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म–एषा अग्रा मे भिक्षवो भिक्षुणीनां मम श्राविकाणां महाप्राज्ञानां महाप्रतिभानां यदुत क्षेमा भिक्षुणी ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः–कानि भदन्त क्षेमया कर्माणि कृतानि येन महाप्राज्ञानां महाप्रतिभानामग्रा निर्दिष्टा ? भगवानाह–क्षेमयैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । क्षेमया कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति च खलु देहिनाम् ॥ ३ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां
B 51 काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । यावत्तत्रान्यतरा श्रेष्ठिदुहिता भगवतः काश्यपस्य शासने प्रव्रजिता । तया भगवतः काश्यपस्य शासने दानप्रदानानि दत्तानि, द्वादशवर्षसहस्राणि च ब्रह्मचर्यवासः परिपालितः, न च कश्चिद्गुणगणोऽधिगतः, यस्यास्तूपाध्यायिकायाः सकाशे प्रव्रजिता आसीत्, सा भगवता काश्यपेन प्रज्ञावतीनामग्रा निर्दिष्टा । ततस्तया प्रणिधानं कृतम्–यथैषा उपाध्यायिका प्रज्ञावतीनामग्रा निर्दिष्टा, एवमहमप्यनागतेऽध्वनि योऽसौ भगवता काश्यपेन उत्तरो नाम माणवो व्याकृतः–भविष्यसि त्वं माणव वर्षशतायुषि प्रजायां शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इति, तस्याहं शासने प्रव्रजित्वा प्रज्ञावतीनामग्रा भवेयमिति ॥

भगवानाह–किं मन्यध्वे भिक्षवो यासौ तेन कालेन तेन समयेन श्रेष्ठिदुहिता, इयं सा क्षेमा भिक्षुणी । यत्तया दानानि प्रदत्तानि, तेनाढ्ये कुले प्रत्याजाता । यत्तया द्वादशवर्षसहस्राणि ब्रह्मचर्यवासः परिपालितः, तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

८० विरूपा।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः II 52
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। तेन खलु समयेन प्रसेनजित्कौशलो राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नम्। प्रियमिवैकपुत्रकं राज्यं पालयति। यावत्स राजा अन्यतमया देव्या सह क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारिका जाता अष्टादशभिर्दौर्वर्णिकैरङ्गैः[1] समन्वागता। तस्या जातौ जातिमहं कृत्वा विरूपेति नामधेयं व्यवस्थाप्यते। यदा क्रमेण महती संवृत्ता, तदा यस्मै प्रदीयते, स तां विरूपेति कृत्वा न प्रतिगृह्णाति॥ B 53

यावद्दक्षिणापथाद्गङ्गो नाम सार्थवाहोऽभ्यागतो निस्तीर्णनिभयः। ततो राज्ञः प्रसेनजितो बुद्धिरुत्पन्ना—अयं गङ्गसार्थवाहः एतस्या दोषेष्वनभिज्ञः। यत्न्वहमस्मै दास्यामीति। ततो राज्ञा रात्रौ संप्राप्तायां भग्नचक्षुष्पथे गङ्गं दूतेनाहाप्य सा दारिका सर्वालंकारविभूषिता भार्यार्थे दत्ता गङ्गाय। ※ ※ गङ्गरस्था गङ्गरस्थेति संज्ञा प्रादुर्भूता[2]॥

यावद्गङ्गेन सार्थवाहेन द्वितीये दिवसे प्रभातायां रजन्यां सा दारिका दृष्टा परमबीभत्सा। या दृष्ट्वा राजापेक्षया न शक्नोत्यवमोक्तुम्। स्वगृहे धारयति॥

यावद्गङ्गः सार्थवाहः कस्मिंश्चित्पर्वण्युपस्थिते गोष्ठिकानां मध्यं गतः। गोष्ठिकैश्च क्रियाकारः कृतः—सह भार्यया अमुकमुद्यानं यो न यास्यति, स गोष्ठिकानां पञ्च पुराणशतानि दण्डमनुप्रदास्यतीति। ततो गङ्गः स्वगृहमागत्य शोकागारं प्रविश्य करे कपोलं B 54
कृत्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः। तस्य बुद्धिरुत्पन्ना—वरमहं दण्डं दद्याम्, न चाहमेतामेतेषां दर्शयेयम्। सहदर्शनाच्चावगीतो भविष्यामीति। अथ गङ्गो द्वारं बद्ध्वा पञ्च पुराणशतानि

---

1 Speyer cites a gloss from the version of विरूपा as found in अशोकावदानमाला-३०, which gives the list of eighteen signs of ugliness पिङ्गलाक्ष, कूपगण्ड, लम्बोष्ठ, ऊर्ध्वकेश, ह्रस्वललाट, सितभ्रू, पुष्पितनख, प्रविरलदन्त, दन्तुर, अतिदीर्घ, अतिह्रस्वबाहु, सवगपल (?), अतिकृष्ण, बहाशी, विकटपाद, अतिगौर, खराङ्ग, अतिकर्कशाङ्ग—एतान्यष्टादश लक्षणानि

2 The explanation of the nickname गङ्गरस्था is found in अशोकावदान.—

गङ्गस्य रतिभोगार्थं केवलं स्थीयते यतः।
तेन सा गङ्गरस्थेति नाम्ना मंप्रथिता भव॥

गण्डं गृहीत्वा गोष्ठिकानां मध्यं गतः। ततो दारिकाया महद्दौर्मनस्यमुत्पन्नम्—किं ममानेनैवंविधेन जीवितेन, यत्र मे न च स्वामिचित्तं सुखितम्, न चाहम्। किमत्र प्राप्तकालम्? आत्मानं घातयिष्यामीति। ततो रज्जुं गृहीत्वा अवरकं प्रविष्टा उद्बन्धनहेतोः॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम्। धर्मता खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः। कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम्।

आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत्॥ १॥

B 55 ततो भगवता जेतवनावस्थितेन कनकवर्णा प्रभा उत्सृष्टा, यया तद्गृहं सूर्यसहस्रेणेवावभासितम्। ऋद्ध्या चोपसंक्रम्य तद्गलादुद्बन्धनमवमुच्य दारिकां समाश्वासितवान्। षण्णां स्थानानामाश्चर्याद्भुतो लोके प्रादुर्भावः। तथागतस्य तथागतप्रवेदितस्य धर्मविनयस्य मनुष्यत्वस्य आर्यायतने प्रत्याजातत्वस्य इन्द्रियैरविकलत्वस्य कुशलधर्मच्छन्दकस्य आश्चर्याद्भुतो लोके प्रादुर्भावः। ततो भगवता तस्या दारिकायास्तथाविधा धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम्। ततो लब्धप्रसादया भगवान् भक्तेन प्रतिपादितः, पटेन चाच्छादितः। ततो दारिकाया अपगता अलक्ष्मीः। लक्ष्मीः प्रादुर्भूता। देवकन्येव चावरकमवभासमाना स्थिता। भगवानपि प्रक्रान्तः॥

B 56 ततो गोष्ठिकानां बुद्धिरुत्पन्ना—नूनमस्य भार्या परमदर्शनीया संवृत्ता। स एष ईर्ष्याप्रकृतिर्दण्डमुत्सहते दातुम्, न च तां दर्शयितुमिच्छति। यन्नु वयमेनं विदग्धैर्मधैः पाययित्वा ताडमादाय गृहमस्य गत्वा भार्यां पश्येमेति। ततस्तैस्तं घनघनेन विदग्धमधेन पानेन क्षीबं कृत्वा ताडमपहृत्य गृहं गत्वा द्वारमवमुच्य दारिका दृष्टा। ततो दृष्ट्वा परं विस्मयमुपगताश्चिन्तयन्ति—स्थानेऽसौ न दर्शयत्यस्माकमिति। ततस्ते पुनरागत्य मधवशात्सुप्तमुत्थाप्य

1 ताड means lock and key. Compare ताला and ताली in Hindi.

ऊचु—लाभास्ते गङ्ग सुलब्धा, यस्य ते एवंविधा दर्शनीया दारिकेति। ततो गङ्गो भूयस्या मात्रया दु खी दुर्मना संवृत्त । दण्ड स्वय मया दत्त, अह चावगीतो जात इति। ततो दुर्मना· स्वगृहमागत । द्वारमवमुच्य ता भार्यां दृष्टवान् वनदेवतामिव कुसुमितमध्येऽतीव विभ्राजमानाम्। तत पृच्छति—भद्रे किमेतत् ? किंकृतो रूपविशेष इति। ततस्तया यथावृत्त स्वामिने समाख्यातम्। श्रुत्वा तेनापि भगवति श्रद्धा प्रतिलब्धा॥

यावदसौ दारिका क्रमेण भर्तारमनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजिता। तया युज्यमानया घटमानया व्यायच्छमानया इदमेव पञ्चगण्डक संसारचक्र चलाचल विदित्वा सर्वसंस्कारगती शतनपतनविकिरणविध्वसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्व साक्षात्कृतम्। II 57
अर्हन्ती संवृत्ता त्रैधातुकवीतरागा समलोष्टकाञ्चना आकाशपाणितलसमचित्ता वासीचन्दनकल्पा विद्याविदारिताण्डकोशा विद्याभिज्ञाप्रतिसंविन्प्राप्ता भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखा। सेन्द्रोपेन्द्राणा देवाना पूज्या मान्याभिवाद्या च संवृत्ता॥

भिक्षव संशयजाता सर्वसंशयच्छेत्तार बुद्ध भगवन्त पप्रच्छु—किं भदन्त गङ्गरस्थया कर्म कृतम्, येनाढ्ये जाता। किं कर्म कृत येन विरूपा संवृत्ता, प्रव्रज्य चार्हत्त्व साक्षात्कृतमिति। भगवानाह—गङ्गरस्थयैव भिक्षव पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। गङ्गरस्थया कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्य प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षव कर्माणि कृतानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य काल च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ २॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्या नगर्यामन्यतमा श्रेष्ठिभार्या चण्डा रभसा कर्कशा। असति बुद्धानामुत्पादे प्रत्येकबुद्धा लोक उत्पद्यन्ते हीनदीनानुकम्पका प्रान्तशयनासनभक्ता एकदक्षिणीया लोकस्य। यावदन्यतर प्रत्येकबुद्धस्तद्गृह प्रविष्टो विरूप। स तया बहु परिभाष्य गृहान्निष्कासित—केनाय विरूपो मम गृहे प्रवेशित इति। तत B 811
प्रत्येकबुद्धस्तस्या अनुग्रहार्थं विततपक्ष इव हंसराजो गगनतलमभ्युद्गम्य विचित्राणि प्रातिहार्याणि विदर्शयितुमारब्ध। तत श्रेष्ठिभार्यया विप्रतिसारजातया [1]* * * *। यावदसौ क्षमित पिण्डकेन प्रतिपादितश्च। प्रणिधान च कृतम्—यन्मया प्रत्येकबुद्ध परिभाषित, मा अस्य कर्मणो विपाकमनुभवेयम्, एवंविधाना च धर्माणा लाभिनी स्याम्, प्रतिविशिष्टतर च शास्तारमारागयेयमिति॥

---

१ The gap can be filled by क्षमस्वेत्युक्त which is confirmed by अशोकावदान

किं मन्यध्वे भिक्षवो यासौ श्रेष्ठिभार्या, इयमसौ गङ्गरस्था । यदनया प्रत्येकबुद्धः B 59 पिण्डकेन प्रतिपादितः, तस्य कर्मणो विपाकेनाढ्ये राजकुले प्रत्याजाता । यद्विरूपाववादेन समुदाचर्य गृहान्निष्कासितः, तेन विरूपा संवृत्ता । भूयः काश्यपे भगवति प्रव्रजिता आसीत् । तत्रानया पठितं स्वाध्यायितं स्कन्धकौशलमायतनकौशलं प्रतीत्यसमुत्पादकौशलं स्थानास्थानकौशलं कृतम्, ब्रह्मचर्यवासश्च परिपालितः, तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ।

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥



नवमो वर्गः ।

तस्योदानम्—

समुद्रः सुमनाश्चैव हिरण्यपाणिस्त्रिपिटेन च ।
यशोमित्रोपपादौ च शोभितः कप्फिणस्तथा ।
भद्रिको राष्ट्रपालश्च वर्गो भवति समुद्दितः ॥

८१ समुद्रः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 60 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । श्रावस्त्यामन्यतमः सार्थवाहः । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतो बुद्धिरुत्पन्ना—यावदहं युवा, तावद्धनसंचयं करोमि । पश्चाद्वृद्धावस्थायां सुखं परिभोक्ष्ये इति । ततः सार्थवाहः पञ्चवणिक्शतपरिवारो B 61 यानपात्रमादाय भार्यासहायो महासमुद्रमवतीर्णः । यावदस्य प्रजापती आपन्नसत्त्वा जाता । यावत्तत्रैव समुद्रमध्ये प्रसूता । दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थापितम्—यस्मात्समुद्रमध्ये जातस्तस्मात्समुद्र इति नाम । यावदसौ सार्थवाहः स्वस्तिक्षेमाभ्यां संसिद्धयानपात्रो महासमुद्रात्प्रत्यागतः ॥

यदा समुद्रो दारको महान् संवृत्तस्तदा पित्रा सार्थवाहत्वे प्रतिष्ठाप्य पञ्चवणिक्शतपरिवारो महासमुद्रं संप्रेषितः । सोऽनुपूर्वेण चञ्चूर्यमाणो ग्रामनगरनिगमराष्ट्रराजधानीपट्टनान्यवलोकयन् समुद्रतीरमनुप्राप्तः । स पञ्चभिः पुराणशतैर्वहनं भृत्वा पञ्च पौरुषेयान् गृहीत्वा आहारं नाविकं कैवर्तं कर्णधारं च त्रिरपि घण्टावघोषणं कृत्वा महासमुद्रमवतीर्णः । ततस्तेषां B 62 समुद्रमध्यगतानां कालिकावातेन तद्वहनमितश्चामुतश्च परिभ्राम्यते । समुद्रश्च सार्थवाहस्तीर्थिकाभिप्रसन्नः । सोऽकालमृत्युभयभीतः षट् शास्तॄनायाचितुं प्रवृत्तः । तथापि तद्वहनं वायुना भ्राम्यत एव । यावदन्ये वणिजो देवतासहस्राण्यायाचितुं प्रवृत्ताः । आहुश्च—

शिववरुणकुबेरा वायुरग्निर्महेन्द्रो
भुवि च [1]तुविमघो यो विश्वदेवो महर्षिः ।
वयमिह मरणार्ता वः प्रपन्नाः स्म शीघ्रं B 63
व्यसनमिदमुपेतं त्रातुमिच्छन्तु[2] सार्थम् ॥

१ तुविमघ is Vedic, and rarely used in Buddhist Sanskrit. It means, one whose wealth consists of strength (तुवि). Compare तविषी, तुविष्मान and several other formations from तु, to be strong. २ The right phrase would be अर्हन्तु rather than इच्छन्तु.

ततस्तेषामेवमपि परिदेवमानानां नास्ति कश्चित्त्राता । यावत्तत्रान्यतम उपासकः समारूढः । स उवाच—किं वो भवन्तः षट् शास्तार अन्ये च देवताः करिष्यन्ति ? बुद्धं भगवन्तं प्रत्यक्षदेवतं भावेन शरणं प्रपद्यध्वम् । स वस्त्राता भविष्यतीति । ततः समुद्रप्रमुखानि पञ्च वणिक्शतानि एकस्वरेण भगवन्तं शरणं प्रपन्नानि ॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम् । धर्मता B 64 खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः । कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम् । आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः ।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत् ॥ १ ॥

यावद्भगवता जेतवनावस्थितेन सूर्यसहस्रातिरेकप्रभाः कनकवर्णा मरीचय उत्सृष्टाः, यैस्ते वणिजः समन्तादवभासिताः । कल्पसहस्रपरिभाविताश्चांशव उत्सृष्टाः, यैः प्रह्लादिताः । कालिकावातश्च प्रत्यागतः ॥

यावत्समुद्रः स्वस्तिक्षेमाभ्यां संसिद्धयानपात्रः प्रत्यागतस्तेनैव मरणसंवेगेन दानB 65 प्रदानानि दत्त्वा बन्धुजनं समाश्वास्य श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकान् संतर्प्य पञ्चवणिक्शतपरिवारो भगवच्छासने प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—आश्चर्यं भदन्त यद्भगवता इमानि समुद्रप्रमुखानि पञ्च वणिक्शतानि इष्टेन जीवितेनाच्छादितानि, व्यसनात्परित्रातानि, अत्यन्तनिष्ठे च निर्वाणे प्रतिष्ठापितानीति । भगवानाह—किमत्र भिक्षव आश्चर्यं यदिदानीं मया विगतरागेण विगतद्वेषेण विगतमोहेन परिमुक्तेन जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैः इमानि समुद्रप्रमुखानि पञ्च वणिक्शतानि इष्टेन जीविते-

नाच्छादितानि, व्यसनात्परित्रातानि, अत्यन्तनिष्ठे च निर्वाणे प्रतिष्ठापितानि । यत्तु मया अतीतेऽध्वनि सरागेण सद्वेषेण समोहेनापरिमुक्तेन जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैः इमे वणिजः परित्राताः । तच्छृणुत, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरुत, भाषिष्ये ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यन्यतमस्मिन् समुद्रतीरे पञ्चाभिज्ञ ऋषिः प्रतिवसति, काश्यपतया मूलफलाम्बुभक्तोऽजिनवल्कलवासी अग्निहोत्रिकः । स च कारुणिको महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलो व्यसनगतानां परित्राता । यावद्वाराणस्यां पञ्चवणिक्शतानि समुद्रमवतर्तुकामानि । B 66 तान्यनुपूर्वेण चङ्क्रम्यमाणानि समुद्रतीरमनुप्राप्तानि । तमृषिं दृष्ट्वा प्रसादजातानि पादयोर्निपत्य विज्ञापयितुमारब्धानि—यदस्माकं भगवन् समुद्रमध्यगतानां किंचिद्व्यसनमुत्पद्येत, भगवता तावदेते परित्रातव्या इति । तेनाधिवासितम्—एवं भवत्विति । ततस्ते वणिजो रत्नान्यादाय जम्बुद्वीपाभिमुखाः संप्रस्थिताः । यावत्कालिकया राक्षस्या संत्रासितुमारब्धाः । ततस्तेन ऋषिणा परित्राताः । ततः संसिद्धयानपात्राः प्रत्यागता ऋषिसमीपमुपगम्योचुः—भो महर्षे अनेन दुष्करेण व्यवसायेन कारुण्यभावाच्च किं प्रार्थयस इति । तेनोक्तम्—अन्धे लोकेऽनायके बुद्धो भूयासमतीर्णानां सत्त्वानां तारयिता, अमुक्तानां मोचयिता, अनाश्वस्तानामाश्वासयिता, अपरिनिर्वृतानां परिनिर्वापयितेति । तैरुक्तम्—यदा त्वं बुद्धो भवेस्तदा अस्मानपि समन्वाहरेथा इति । ऋषिराह—एवमस्त्विति ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन ऋषिरासीत्, अहं सः । ये ते वणिजः, इमे ते समुद्रप्रमुखास्तदाप्येते मया परित्राताः । भूयः काश्यपे भगवति प्रव्रजिता बभूवुः । तत्रैभिरिन्द्रियपरिपाकः कृतः । तेनेदानीमर्हत्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

८२ सुमनाः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 67 श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । श्रावस्त्यामन्यतमो गृहपतिराढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति

रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्राः प्रजायन्ते च म्रियन्ते च । तस्मिंश्च गृहे स्थविरोऽनिरुद्धः कुलोपगतः[1] । ततो गृहपतेरियं बुद्धिरुत्पन्ना—अयं स्थविरानिरुद्धो विपाकमहेशाख्यः[2], एतं तावदायाचिष्ये—यदि मे पुत्रो जायते, अस्य पश्चाच्छ्रमणं दास्यामीति । ततो गृहपतिना स्थविरानिरुद्धोऽन्तर्गृहे भक्तेनोपनिमन्त्रितः । ततः पिण्डकेन
B 69 प्रतिपाद्यायाचितः—स्थविर, यदि मे पुत्रो जातो जीवति, स्थविरस्य पश्चाच्छ्रमणं दास्यामीति । स्थविरानिरुद्धेनोक्तम्—एवमस्तु, किं तु स्मर्तव्या ते प्रतिज्ञेति ॥

यावदपरेण समयेन पत्न्या सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । तस्याः कायात्सुरभिर्गन्धः प्रवाति । यावन्नवानां मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातः अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको दिव्यसुमनः-कञ्चिकया[3] प्रावृतः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा सुमना इति नामधेयं व्यवस्थापितम् । ततः स्थविरानिरुद्धमन्तर्गृहे भक्तेनोपनिमन्त्र्य स दारको निर्यातितः । ततः स्थविरानिरुद्धेनास्मै काषायाणि दत्तानि, आशीर्वादश्च—दीर्घायुर्भवत्विति ॥

यदा सप्तवर्षो जातस्तदा मातापितृभ्यां स्थविराय दत्तः । ततः स्थविरानिरुद्धेन प्रव्राज्य मनसिकारो दत्तः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः । स च
II 80 तीक्ष्णेन्द्रियः । यदा पांसुकूलं प्रतिसंस्करोति, तदा एकैकस्मिन् सूचीप्रदेशे अष्टौ विमोक्षान् समापद्यते च व्युत्तिष्ठते च ॥

यावदपरेण समयेन स्थविरानिरुद्धेनोक्तः—गच्छ पुत्रक, नद्या अजिरवत्या उदकमानयेति । ततः सुमनाः श्रमणोद्देशो घटमादायाजिरवतीमवतीर्णः । तत्र स्नात्वा उदकस्य घटं पूरयित्वा विहायसं प्रस्थितः । अग्रतो घटो गच्छति, ततः सुमनाः श्रमणोद्देशः । तस्मिंश्च समये भगवान् प्रतिसंल्यनाद्व्युत्थाय चतसृणां पर्षदां धर्मं देशयति । तत्र भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमामन्त्रयते—इमं पश्य शारिपुत्र श्रमणोद्देशमागच्छन्तमुदकस्य घटं पूरयित्वा स्मृतिमन्तं सुसमाहितेन्द्रियम् ।

हित्वा रागं च द्वेषं च अभिध्यां च विरागयन् ।
संधारयन्निमं देहं शोभने उदहारकः ॥ १ ॥

---

१ कुलोपगतः, a daily visitor to the family. २ विपाकमहेशाख्यः, one who has obtained high powers as a result of maturity of his acts. ३ कञ्चिका or कञ्चुक, a garment of celestial flowers.

यदा भगवता सुमनाः श्रमणोद्देशो भिक्षुसंघस्य पुरस्तात्स्तुतः प्रशस्तश्च, तदा भिक्षूणां संदेहो जातः । कानि भदन्त सुमनसा कर्माणि कृतान्युपचितानि येनाभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको दिव्यया च सुमनसां कञ्चुकया प्रावृतो जातः, तीक्ष्णेन्द्रियः, अर्हत्त्वं च प्राप्तमिति ? सुमनसैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययान्योघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । सुमनसा तानि कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च । B 70

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ २ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि एकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । यावदन्यतमः सार्थवाहः । तस्य तरुणावस्थायां प्रव्रज्याचित्तमुत्पन्नम् । तेन न शकितं प्रव्रजितुम् । यदा वृद्धो भूतस्तदा तस्य विप्रतिसारो जातः—न मे शोभनं कृतं यदहं भगवच्छासने न प्रव्रजित इति । ततस्तेन केशनखस्तूपे सुमनःपुष्पारोपणं कृतम्, विपश्यी च सम्यक्संबुद्धः सश्रावकसंघः पिण्डकेन प्रतिपादितः । ततस्तेन पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कृतम्—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अनागतान् सम्यक्संबुद्धानारागयेयम् । यस्य च शासने प्रव्रजेयम्, तत्र दहरावस्थायामार्यधर्मानधिगच्छेयमिति । भूयः काश्यपे भगवति प्रव्रजितो बभूव । तत्रानेन दशवर्षसहस्राणि ब्रह्मचर्यावासः परिपालितः । तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥ B 71

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

८३ हिरण्यपाणिः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः[1] श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । श्रावस्त्यामन्यतमो गृहपतिराढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधन- B 72

[1] The usual phrase: भगवान् is wanting in Mss. and Tibetan translation.

समुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। न चास्य पुत्रो न दुहिता। स करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः—अनेकधनसमुदितं मे गृहम्, न मे पुत्रो न दुहिता। ममात्ययात्सर्वस्वापतेयमपुत्रकमिति कृत्वा राजविधेयं भविष्यतीति। स श्रमणब्राह्मणसुहृत्संबन्धिबान्धवैरुच्यते—देवताराधनं कुरुष्वेति। अस्ति चैष लोके प्रवादो यदायाचनहेतोः पुत्रा जायन्ते दुहितरश्चेति। तच्च नैवम्। यद्येवमभविष्यत्, एकैकस्य पुत्रसहस्रमभविष्यत्तद्यथा राज्ञश्चक्रवर्तिनः। अपि तु त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च। कतमेषां त्रयाणाम्? मातापितरौ रक्तौ भवतः संनिपतितौ, माता कल्या भवति ऋतुमती, गन्धर्वश्च प्रत्युपस्थितो भवति। B 73 एतेषां त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च। स चैवमायाचनपरस्तिष्ठति॥

अन्यतमश्च सत्त्वोऽन्यतमस्माद्देवनिकायाच्च्युत्वा तस्य प्रजापत्याः कुक्षिमवक्रान्तः। पञ्चावेणिका धर्मा एकत्ये पण्डितजातीये मातृग्रामे। कतमे पञ्च? रक्तं पुरुषं जानाति, विरक्तं पुरुषं जानाति। कालं जानाति, ऋतुं जानाति। गर्भमवक्रान्तं जानाति। यस्य सकाशाद्गर्भोऽवक्रामति तं जानाति। दारकं जानाति, दारिकां जानाति। स चेद्दारको भवति, दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति। सा आत्तमनाः स्वामिन आरोचयति—दिष्ट्या आर्यपुत्र वर्धसे—आपन्नसत्त्वास्मि संवृत्ता। यथा च मे दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति, नियतं दारको भविष्यतीति। सोऽप्यात्तमनाः पूर्वकायमभ्युन्नमय्य दक्षिणं बाहुमभिप्रसार्य उदानमुदानयति—अप्येवाहं चिरकालाभिलषितं पुत्रमुखं पश्येयम्। जातो मे स्यान्नावजातः। कृत्यानि मे कुर्वीत। भृतः प्रतिबिभृयात्। दायाद्यं प्रतिपद्येत। कुलवंशो मे चिरस्थितिकः स्यात्। अस्माकं चाप्यतीतकालगतानामल्पं वा प्रभूतं वा दानानि दत्त्वा पुण्यानि कृत्वा अस्माकं नाम्ना दक्षिणामादेक्ष्यते—इदं तयोर्यत्रतत्रोपपन्नयोर्गच्छतोरनुगच्छत्विति। आपन्नसत्त्वां चैनां विदित्वोपरिप्रासादतलगतामयन्त्रितां धारयति, शीते शीतोपकरणैरुष्णे उष्णोपकरणैर्वैद्यप्रज्ञप्तैराहारैर्नातितिक्तैर्नात्यम्लैर्नातिलवणैर्नातिमधुरैर्नातिकटुकैर्नातिकषायैस्तिक्ताम्ललवणमधुरकटुकषायविवर्जितैराहारैः। B 74 हारार्धहारविभूषितगात्रीमप्सरसमिव नन्दनवनविचारिणीं मञ्चान्मञ्चं पीठात्पीठमनवतरन्तीमधरां भूमिम्। न चास्याः किंचिदमनोज्ञशब्दश्रवणं यावदेव गर्भस्य परिपाकाय॥

सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेतः। पाणिद्वये चास्य लक्षणाहतं कर्मविपाकजं दीनारद्वयम्। यदा तदपनीतं भवति तदा अन्यत्प्रादुर्भवति। तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति। ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य जातमात्रस्य पाणिद्वये लक्षणाहतं कर्मविपाकजं दीनारद्वयं प्रादुर्भूतम्, तस्माद्भवतु दारकस्य हिरण्यपाणिरिति नामेति। हिरण्यपाणिर्दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्। स श्राद्धो भद्रः कल्याणाशय आत्महितपरहितप्रतिपन्नः कारुणिको

महात्मा धर्मकामः प्रजावत्सलः। स यदा वीथीमवतीर्णो भवति, तदा श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकान् दृष्ट्वा पाणिद्वयं प्रसारयति। ततो लक्षणाहतस्य हिरण्यसुवर्णस्य राशिः प्रादुर्भवति, येन तान् संतर्पयति। तस्य यशसा सर्वा श्रावस्ती आपूर्णा॥

यावद्धिरण्यपाणिर्दारकोऽपरेण समयेन जेतवनं निर्गतः। अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं B 75
द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाचानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम्। प्रसादजातश्च भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। ततोऽस्य भगवता धर्मो देशितः। स आयुष्मन्तमानन्दमिदमवोचत्—इच्छाम्यहमाचार्य भगवतः सश्रावकसंघस्य भक्तं कर्तुमिति। स्थविरानन्देनोक्तः—वत्स कार्षापणैः प्रयोजनमिति। ततो हिरण्यपाणिना बुद्धप्रमुखस्य भिक्षुसंघस्य पुरस्तात्स्थित्वा पाणिद्वयं प्रसार्य हिरण्यसुवर्णस्य महान् राशिः स्थापितः, यं दृष्ट्वा संघस्थविरोऽन्ये च भिक्षवः स्थविरानन्दश्च परं विस्मयमापन्नाः। ततो हिरण्यपाणिर्दारको बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं भोजयित्वा भगवतः पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। तस्य भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा हिरण्यपाणिदारकेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतापत्तिफलं साक्षात्कृतम्। दृष्टसत्यो ज्ञातीनां भागसंविभागं कृत्वा श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकान् संतर्प्य मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः। तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त B 76
हिरण्यपाणिना कर्माणि कृतानि, येनास्य पाणिद्वये लक्षणाहतं दीनारद्वयं जातम्, प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति। भगवानाह—हिरण्यपाणिनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। हिरण्यपाणिना कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः

भगवन्त स्मरति, महाश्रमणकाश्चेति । ततो भगवास्त कुमारमामन्त्रयते—आरोग्य ते त्रिपिटेति । स कथयति—वन्दे तथागतमर्हन्त सम्यक्सबुद्धमिति । ततो राजा प्रसेनजित्पर विस्मयमापन्न ॥

यदा सप्तवर्षो जातस्तदा भगवच्छासने प्रव्रजितस्तैरेव काषायै प्रावृत । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डक ससारचक्र चलाचल विदित्वा सर्वसस्कारगती शतनपतनविकिरणविध्वसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्व साक्षात्कृतम् । अर्हन् सवृत्त त्रैधातुकवीतराग समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसविप्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुख । सेन्द्रोपेन्द्राणा देवाना पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च सवृत्त ॥

भिक्षव सशयजाता सर्वसशयच्छेत्तार बुद्ध भगवन्त पप्रच्छु—कानि भदन्त त्रिपिटेन कर्माणि कृतानि येन काषायवस्त्रप्रावृतो जात श्रमणवेषधारी जातिस्मर । प्रव्रज्य चार्हत्त्व साक्षात्कृतमिति । भगवानाह—त्रिपिटेनैव भिक्षव पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यभावीनि । त्रिपिटेन कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्य प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षव कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि । B 80
सामग्रीं प्राप्य काल च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्व भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि अस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजाया काश्यपो नाम सम्यक्सबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसपन्न सुगतो लोकविदनुत्तर पुरुषदम्यसारथि शास्ता देवमनुष्याणा बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । यावद्राज्ञ कृकिण पुत्र ऋषिपतन गत । अथासौ ददर्श बुद्ध भगवन्त द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणै समलकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्र व्यामप्रभालकृत सूर्यसहस्रातिरेकप्रभ जङ्गममिव रत्नपर्वत समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्चास्य प्रसादो जात । स प्रसादजातो भगवत पादाभिवन्दन कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । तस्य भगवता आशयानुशय धातु प्रकृति च ज्ञात्वा तादृशी ससारवैराग्यिकी धर्मदेशना कृता, या श्रुत्वा ससारे दोषदर्शी निर्वाणे गुणदर्शी भूत्वा राजान विज्ञापयामास—अनुजानीहि मा तात, भगवच्छासने प्रव्रजिष्यामीति । राजोवाच—न शक्यमेतन्मया कर्तुम् । यस्मात्ते युवराजाभिषेको नचिरेण भविष्यतीति । कुमार कथयति—अल मे राज्येन बहुदोषदुष्टधर्मसपन्नेन । अवश्यमेवाह भगवच्छासने प्रव्रजिष्यामीति । स पित्रा नानुज्ञात । तेनैको भक्तच्छेद कृत, द्वौ त्रयो वा यावत्षड् भक्तच्छेदा कृता । ततोऽस्य वयस्यकै राजा विज्ञप्त । देव अनुजानीहि कुमार प्रव्रजितुम् । मा हैव काल करिष्यतीति । ततो राज्ञा पुत्र प्रतिज्ञा

कारितः—तावत्तेऽस्माकं दर्शनं न देयम्, यावत्त्रयः पिटका अधीता इति । यावदसौ पितरमनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः ।

B 81 तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन नचिरेण त्रयः पिटका अधीताः । युक्तमुक्तप्रतिभानी[1] धार्मकथिकः संवृत्तः । तस्यैतदभवत्—यन्न्वहं पूर्विकां प्रतिज्ञां निर्यातयेयमिति । स पितुः सकाशं गतः । स पृष्टश्च—किं पुत्र अस्ति किंचिदधीतमिति ? तेनोक्तम्—त्रयः पिटका इति । ततस्तेन पितुस्तादृशी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा राजा आत्तमनाः संवृत्तः । ततः प्रसादजातः कथयति— पुत्र केन ते प्रयोजनमिति । तेनोक्तम्—इच्छाम्यहं भगवन्तं सश्रावकसंघमुपनिमन्त्र्य षड्भिः परिष्कारैराच्छादयितुमिति । राजा कथयति—यथेष्टं कुरुष्व, विस्तीर्णं राजकुलमिति । ततस्त्रिपिटेन भगवान् विंशतिसहस्रपरिवारः प्रणीतेनाहारेण संतर्पितः । एकैकश्च भिक्षुः षड्भिः परिष्कारैराच्छादितः । ततः पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कृतम्—यन्मया इदानीं कृच्छ्रेण प्रव्रज्या प्रतिलब्धा, तथागते च सश्रावकसंघे काराः कृताः, अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च यत्र यत्र जायेय तत्र तत्र काषायवस्त्रप्रावृत एव श्रमणवेषधारी जातिस्मरश्च स्यामिति ॥

B 82 भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन कृकिणः पुत्रः, अयं त्रिपिटः । तेनैव हेतुना आढ्ये राजकुले पुत्रो जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको जातिस्मरश्च संवृत्तः । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

८५ यशोमित्रः ।

B 83 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । श्रावस्त्यामन्यतमः सार्थवाह आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तेन खलु समयेन दुर्भिक्षमभूत्कृच्छ्रम् । कान्तारदुर्लभः पिण्डको याचनकेन ।

1 Mss. युक्तमुक्त अभिलापी. Speyer has corrected it on the strength of similar passages in दिव्यावदान and शिक्षासमुच्चय.

नैमित्तिकैश्च निर्दिष्ट देवो न वर्षिष्यतीति। यावत्सार्थवाहपत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता।
सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीय
प्रासादिक सर्वाङ्गोपेत। यत्र च दिवसे दारको जातस्तत्रैव दिवसेऽनावृष्टिर्भग्ना। तस्य B 84
यशसा सर्वा श्रावस्ती आपूरिता। तस्य जातौ जातिमह कृत्वा नामधेय व्यवस्थाप्यते—किं
भवतु दारकस्य नामेति। ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य समन्ताद्यशो विसृतम्, तस्माद्भवतु
दारकस्य यशोमित्र इति नामेति। यशोमित्रो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंस-
धात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्।
सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तो-
त्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्॥

यदा यशोमित्रो महान् संवृत्तस्तदा जेतवन निर्गत केनचिदेव करणीयेन।
अथासौ ददर्श बुद्ध भगवन्त द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलङ्कृतमशीत्या चानुव्यञ्जनै-
र्विराजितगात्र व्यामप्रभालङ्कृत सूर्यसहस्रातिरेकप्रभ जङ्गममिव रत्नपर्वत समन्ततो भद्रकम्।
सहदर्शनाच्चास्य प्रसादो जात। प्रसादजातो भगवत पादाभिवन्दन कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो
धर्मश्रवणाय। तस्य भगवता तादृशी ससारवैराग्यिकी धर्मदेशना कृता, या श्रुत्वा ससार-
दोषदर्शी निर्वाणगुणदर्शी भूत्वा मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजित। तेन युज्य-
मानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डक ससारचक्र चलाचल विदित्वा सर्वसंस्कार-
गती शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्व साक्षात्कृतम्।
अर्हन् संवृत्त त्रैधातुकवीतराग समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दन-
कल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविद्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुख।
सेन्द्रोपेन्द्राणा देवाना पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्त। तस्य दंष्ट्राभ्यामष्टाङ्गोपेत पानीय
प्रस्रवति, येनास्य तृषा न बाधते। यदा निदाघकाले भिक्षवस्तृषार्ता पानकस्यार्थे संघ-
मवतरन्ति, तदाप्यसौ नावतरति। ततोऽस्य सुप्रेमका भिक्षवः पृच्छन्ति—केन हेतुना भवत-
स्तृषा न बाधत इति। स कथयति—ममैताभ्या दंष्ट्राभ्यामष्टाङ्गोपेत पानीय प्रस्रवति, येन
न मे तृषा बाधत इति॥

भिक्षव संशयजाता सर्वसंशयच्छेत्तार बुद्ध भगवन्त पप्रच्छुः—कानि भदन्त
यशोमित्रेण कर्माणि कृतानि येनाभिरूपो दर्शनीय प्रासादिक, दंष्ट्रान्तराच्चाष्टाङ्गोपेत पानीय B 85
प्रस्रवति, प्रव्रज्य चार्हत्त्व साक्षात्कृतमिति। भगवानाह—यशोमित्रेणैव भिक्षव पूर्वमन्यासु
जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्य-
भावीनि। यशोमित्रेण कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्य प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षव
कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न
वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतान्युपचितानि विपच्यन्ते
शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । यावदन्यतरः श्रेष्ठिपुत्रोऽन्यतरस्य वृद्धभिक्षोः सकाशे प्रव्रजितः । सोऽलसो नेच्छति समयाचारिकां चरितुम् । ततः स ब्रह्मचारिभिः स्थविरस्योपस्थायको दत्तः । स उपस्थायकमात्मानं मत्वा वृद्धतराणां भिक्षूणां सकाशादुपस्थानं स्वीकरोति । तस्याकुशलमूलान्यपर्यन्तानि ॥

B 86 यावदपरेण समयेन ग्लान्यं पतितः । स्थविरेणास्य वैद्योपदेशाद् घृतं पानाय दत्तम् । स रात्रौ तृपात्रासितः स्वकं कमण्डलुकमुपगृह्य पानीयं पास्यामीति पश्यति निरुदकम् । एवमाचार्योपाध्यायानाम् । यावत्सांघिकं पानीयमण्डपमवतीर्णः । तदपि निरुदकं पश्यति । यावन्नदीचारिकामवतीर्णः । सापि निरुदका संवृत्ता । स उद्विग्नः स्वकानां सब्रह्मचारिणामुद्वेजनार्थं श्रद्धादेयस्य च गुरुत्वसंदर्शनार्थम्, नदीचारिकायाः परिवृक्षः, तत्र शाटकं बद्ध्वा समभिरूढः, स्वकर्माणि ममेत्यवेत्य कर्मप्रतिशरणावस्थितः । यावद् द्वितीये दिवसे प्रभातायां रजन्यामेतद्वृत्तान्तं सब्रह्मचारिणामारोचयति । ततोऽस्य सब्रह्मचारिणः प्रेतकरणं श्रुत्वोद्विग्नाः, इतश्चामुतश्चारोचयितुमारब्धाः । ततोऽस्य उपाध्यायेन पानीयमुपनामितम् ।
B 87 तदपि न पश्यति । तेनापि संविग्नेन भगवतः काश्यपस्य निवेदितम् । भगवता काश्यपेनोक्तः—गण्डीराकोट्यतामिति । तत उपधिवारिकेण गण्डीराकोटिता । बुद्धप्रमुखो भिक्षुसंघः संनिपतितः ॥

एष वृत्तान्तो वाराणस्यां नगर्यां समन्ततो विसृतः । ततोऽनेकानि प्राणिशतसहस्राणि संनिपतितानि । यावदुपाध्यायेन वृद्धान्ते निषादयित्वा उदकपूर्णा कुण्डिका दत्ता । वत्स एतत्पानीयं संघे चारयेति । स प्रत्यक्षफलदर्शी तेनैव संवेगेन बुद्धे भगवति श्रावकेषु च प्रसादमुत्पाद्य तीव्रेणाशयेन तदुदकं संघे चारितवान् । ततो भगवता तस्यानुग्रहार्थं गजभुजसदृशं बाहुमभिप्रसार्य भीतानामाश्वासनकरेण करेण तदुदकं गृहीतं महाश्रावकैश्च । न च क्षीयते । यावत्सर्वसंघे चारितम्, तदापि न क्षीयते । तदत्यद्भुतं देवमनुष्यावर्जनकरं प्रातिहार्यं दृष्ट्वा अनेकैः प्राणिशतसहस्रैः सत्यदर्शनं कृतम् । तस्यापि संतानेऽकुशलमूलानि प्रतिसंह्रतानि । यदा तस्माद् ग्लान्याद्व्युत्थितः, तदा तेन बुद्धप्रमुखो भिक्षुसंघः पानीयेनात्योत्सुकः कृतः । द्वादशवर्षसहस्राणि तेन संघे पानीयं चारितम् । यावन्मरणकाल-
B 88 समये प्रणिधानं कृतवान्—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च योऽसौ भगवता काश्यपेन उत्तरो नाम माणवो व्याकृतः—भविष्यसि त्वं माणव वर्षशतायुषि प्रजायां शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः, तमहमारागयेयं मा विरागयेयम्, दंष्ट्रान्तराच्च मेऽव्याहतोपेनं पानीयं निर्गच्छेदिति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन भिक्षुरासीत्, अय स । यत्तेन द्वादशवर्षसहस्राणि सघे पानीय चारितम्, प्रणिधान च कृतम्, तेनेह जन्मनि दष्ट्रान्तरादष्टाङ्गोपेत पानीय निर्गच्छति । तेनैव हेतुनार्हत्त्व साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णाना कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाक, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्ल, व्यतिमिश्राणा व्यतिमिश्र । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मसाभोग करणीय । इत्येव वो भिक्षव शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

८६ औपपादुकः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानित पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभि पौरै II 89
श्रेष्ठिभि सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडै किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां देवेषु त्रायस्त्रिंशेषु वर्षा उपगत पाण्डुकम्बलशिलायां पारिजातस्य कोविदारस्य नातिदूरे । मातुर्जनित्र्या धर्मं देशयति, अन्येषा च देवानाम् । तेन खलु समयेनायुष्मान् महामौद्गल्यायन श्रावस्त्या वर्षा उपगतो जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । अथ चतस्र पर्षदो येनायुष्मान् महामौद्गल्यायन तेनोपसक्रान्ता, महामौद्गल्यायनपादौ शिरसा वन्दित्वा एकान्ते निषण्णा । चतस्र पर्षद आयुष्मान् महामौद्गल्यायनो धर्मकथया सदर्शयति समादापयति समुत्तेजयति सप्रहर्षयति । अनेकपर्यायेण धर्म्यया कथया सदर्श्य समादाप्य समुत्तेज्य सप्रहर्ष्य तूष्णीम् । अथ चतस्र पर्षद उत्थायासनादेकासमुत्तरासङ्ग कृत्वा येनायुष्मान् महामौद्गल्यायन तेनाञ्जलिं प्रणमय्य आयुष्मन्त महामौद्गल्यायनमिदमवोचन्—कथितं भदन्त महामौद्गल्यायन श्रुत कुत्र भगवानेतर्हि वर्षा उपगत इति । महामौद्गल्यायन आह—श्रुत मे भगवतो भगवान् देवेषु त्रायस्त्रिंशेषु वर्षा उपगत, पाण्डुकम्बलशिलायां पारिजातस्य कोविदारस्य नातिदूरे । मातुर्जनित्र्या धर्मं देशयति, अन्येषा च E 91
देवानां त्रायस्त्रिंशानामिति । अथ चतस्र पर्षद आयुष्मतो महामौद्गल्यायनस्य भाषितमभिनन्द्यानुमोद्य पादौ शिरसा वन्दित्वोत्थायासनेभ्य प्रक्रान्ता ॥

अथ चतस्र पर्षदस्तासां वार्षिकाणामत्ययाद्येनायुष्मान् महामौद्गल्यायन तेनोपसक्रान्ता । उपसक्रम्यायुष्मतो महामौद्गल्यायनस्य पादौ शिरसा वन्दित्वा एकान्ते निषण्णा । चतस्र पर्षद आयुष्मान् महामौद्गल्यायनो धर्म्यया कथया सदर्शयति समादापयति [illegible]

---

¹ The name of the hero of this अवदान is [illegible], possessed all needful provisions. It is only in the [illegible] Avadāna that it appears as औपपादुक

संप्रहर्षयति । अनेकपर्यायेण धर्म्यया कथया संदर्श्य समादाप्य समुत्तेज्य संप्रहर्ष्य तूष्णीम् । अथ चतस्रः पर्षद उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा येनायुष्मान् महामौद्गल्यायनस्तेनाञ्जलिं प्रणमय्य आयुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमिदमवोचन्—यत्खलु भदन्त महामौद्गल्यायनो जानीयात्—चिरदृष्टोऽस्माभिर्भगवान्, परितृपिताः स्मो वयं भगवतो दर्शनेन । इच्छामो वयं भगवन्तं द्रष्टुम् । सचेद्भदन्तमहामौद्गल्यायनस्यागुरु, साधु, भदन्तमहामौद्गल्यायनो येन भगवांस्तेनोपसंक्रामेत् । उपसंक्रम्यास्माकं वचनेन भगवतः पादौ शिरसा वन्दस्व, अल्पाबाधतां च पृच्छ, अल्पातङ्कतां च लघूत्थानतां च यात्रां च बलं च सुखं चानवद्यतां B 91 च स्पर्शविहारतां च । एवं च वद—जम्बूद्वीपे भदन्त चतस्रः पर्षद आकाङ्क्षन्ति भगवतो दर्शनम् । एवं चाहुः—नास्ति खलु भदन्त जम्बूद्वीपकानां मनुष्याणां तद्रूपा ऋद्धिर्वा अनुभावो वा येन जम्बूद्वीपका मनुष्या देवांस्त्रायस्त्रिंशानभिरोढुं भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रमणाय पर्युपासनाय । अस्ति खलु देवानां त्रायस्त्रिंशानां तद्रूपा ऋद्धिश्चानुभावश्च, येन देवास्त्रायस्त्रिंशा जम्बूद्वीपमवतरेयुर्भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रमणाय पर्युपासनाय । साधु भगवान् देवेभ्यस्त्रायस्त्रिंशेभ्यो जम्बूद्वीपमवतरेदनुकम्पामुपादायेति । अधिवासयत्यायुष्मान् महामौद्गल्यायनश्चतसृणां पर्षदां तूष्णीभावेन । अथ चतस्रः पर्षद आयुष्मतो महामौद्गल्यायनस्य तूष्णीभावेनाधिवासनां विदित्वा आयुष्मतो महामौद्गल्यायनस्य पादौ शिरसा वन्दित्वोत्थायासनेभ्यः प्रक्रान्ताः ॥

अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनोऽचिरप्रक्रान्ताश्चतस्रः पर्षदो विदित्वा तद्रूपं समाधिं समापन्नो यथा समाहिते चित्ते तद्यथा बलवान् पुरुषः संकुञ्चितं वा बाहुं प्रसारयेत्, प्रसारितं वा संकुञ्चयेत्, एवमेवायुष्मान् महामौद्गल्यायनः श्रावस्त्यामन्तर्हितो देवेषु त्रायस्त्रिंशेषु प्रत्यष्ठात् पाण्डुकम्बलशिलायां पारिजातस्य कोविदारस्य नातिदूरे । तेन खलु समयेन भगवान् अनेकशताया देवपर्षदो धर्मं देशयति । अद्राक्षीच्च महामौद्गल्यायनो भगवन्तमनेकशताया देवपर्षदः पुरस्तान्निषण्णं धर्मं देशयन्तम् । दृष्ट्वा च पुनः स्मितं प्राविरकार्षीत्—इहापि भगवानाकीर्णो विहरति तद्यथा जम्बूद्वीपे चतसृभिः पर्षद्भिरिति । अथ भगवानायुष्मतो महामौद्गल्यायनस्य चेतसा चित्तमाज्ञाय आयुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमिदमवोचत्—B 92 न खलु मौद्गल्यायन स्वैरत्वमेषाम्, अपि तु यदा मे एवं भवति—आगच्छन्त्विति, तदा आगच्छन्ति । यदा मे एवं भवति—गच्छन्त्विति, तदा गच्छन्ति । इति मे चेतसा चित्तमाज्ञाय आगच्छन्ति च गच्छन्ति च ॥

अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा एकान्ते निषण्णः । एकान्तनिषण्ण आयुष्मान् मौद्गल्यायनः सर्वां देवपर्षदमवलोक्य भगवन्तमिदमवोचत्—विचित्रा बतेयं देवपर्षत् संनिपण्णा संनिपतिता । सन्त्यस्यां देवपर्षदि देवता या बुद्धेऽवेत्य प्रसादेन समन्वागताः कायस्य भेदादिहोपपन्नाः । सन्ति धर्मे, सन्ति संघे, सन्ति आर्यकान्तैः शीलैः समन्वागताः, कायस्य भेदादिहोपपन्नाः ।

अथ भगवानायुष्मतो महामौद्गल्यायनस्य भाषितमनुवर्णयन्नायुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमिदमवोचत्—एवमेतन्मौद्गल्यायन, एवमेवमेतत्। विचित्रा बतेयं देवपर्षत् संनिपण्णा संनिपतिता। सन्त्यस्यां देवता या बुद्धेऽवेत्य प्रसादेन समन्वागताः, कायस्य भेदादिहोपपन्नाः। सन्ति धर्मे, सन्ति संघे, सन्ति आर्यकान्तैः शीलैः समन्वागताः, कायस्य भेदादिहोपपन्नाः ॥

अथ शक्रो देवानामिन्द्रो भगवत आयुष्मतश्च महामौद्गल्यायनस्य भाषितमनुवर्णय- B 93 न्नायुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमिदमवोचत्—एवमेतद्भदन्त महामौद्गल्यायन, एवमेतत्। विचित्रा बतेयं देवपर्षत् संनिपण्णा संनिपतिता। सन्त्यस्यां देवपर्षदि देवताः, या बुद्धेऽवेत्य प्रसादेन समन्वागताः, कायस्य भेदादिहोपपन्नाः। सन्ति धर्मे, सन्ति संघे, सन्त्यार्यकान्तैः शीलैः समन्वागताः, कायस्य भेदादिहोपपन्नाः ॥

अथान्यतमो देवपुत्रो भगवत आयुष्मतश्च महामौद्गल्यायनस्य शक्रस्य च देवानामिन्द्रस्य भाषितमनुवर्णयन् आयुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमिदमवोचत्—एवमेतद्भदन्त महामौद्गल्यायन, एवमेतत्। विचित्रा बतेयं देवपर्षत् संनिपण्णा संनिपतिता। सन्त्यस्यां देवपर्षदि देवताः, या बुद्धेऽवेत्य प्रसादेन समन्वागताः कायस्य भेदादिहोपपन्नाः। सन्ति धर्मे सन्ति संघे। [1]* * र्यकान्तैः शीलैः समन्वागताः कायस्य भेदादिहोपपन्ना इति ॥

तत्रानेकानि देवताशतानि अनेकानि देवतासहस्राण्यनेकानि देवताशतसहस्राणि भगवतः पुरस्तात्प्रत्येकं प्रत्येकं स्रोतापत्तिफलं साक्षात्कृत्य तत्रैवान्तर्हितानि ॥

अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनः प्रतिविनिर्त्य देवपर्षदं विदित्वा एकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणमय्य भगवन्तमिदमवोचत्—जम्बूद्वीपे भदन्त चतस्रः पर्षदो भगवतः पादौ शिरसा वन्दन्ते अल्पाबाधतां च पृच्छन्ति, अल्पातङ्कतां च लघूत्थानतां च यात्रां च बलं च सुखं चानवद्यतां च स्पर्शविहारतां च। भगवानाह—सुखिनो मौद्गल्यायन भवन्तु जम्बूद्वीपे चतस्रः पर्षदस्त्वं च। महामौद्गल्यायन आह—जम्बूद्वीपे भदन्त चतस्रः D 91 पर्षद आकाङ्क्षन्ति भगवतो दर्शनम्। एवं चाहुः—नास्ति भदन्त जाम्बूद्वीपकानां मनुष्याणां तद्रूपा ऋद्धिर्वा अनुभावो वा येन जाम्बूद्वीपका मनुष्या देवांस्त्रायस्त्रिंशानभिरोहेयुर्भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रमितुं पर्युपासनाय। अस्ति तु भदन्त देवानां त्रायस्त्रिंशानां तद्रूपा ऋद्धिश्चानुभावश्च, येन देवास्त्रायस्त्रिंशा जम्बूद्वीपमवतरेयुर्भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रमितुं पर्युपासनाय। साधु भगवान् देवेभ्यस्त्रायस्त्रिंशेभ्योऽवतरेदनुकम्पामुपादाय। भगवानाह—तेन हि त्वं गच्छ मौद्गल्यायन जम्बूद्वीपम्। गत्वा च चतसृणां पर्षदामारोचय—अवतरिष्यति भवन्तो भगवानितः सप्तमे दिवसे देवेभ्यस्त्रायस्त्रिंशेभ्यो जम्बूद्वीपं सांकाश्ये नगरे आयुर्ज्ञोर दावे उदुम्बरमूले इति ॥

अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनो भगवतः प्रतिश्रुत्य पादौ शिरसा वन्दित्वा तद्रूपं समाधिं समापन्नो यथा समाहिते चित्ते तद्यथा बलवान् पुरुषः संकुञ्चितं बाहुं प्रसारयेत्,

1 The gap can be filled by सन्ति आर्य° as in the para above.

प्रसारितं वा संकुञ्चयेत्, एवमेवायुष्मान् महामौद्गल्यायनो देवेषु त्रायस्त्रिंशेष्वन्तर्हितः, जम्बूद्वीपे प्रत्यष्टात् । अथायुष्मान् महामौद्गल्यायनो जम्बूद्वीपमागत्य चतसृणां पर्षदामारोचयति— अवतरिष्यति भवन्तो भगवान् इतः सप्तमे दिवसे देवेभ्यस्त्रायस्त्रिंशेभ्यो जम्बूद्वीपं सांकाश्ये नगरे आपञ्जुरे दावे उदुम्बरमूले इति ॥

अवतीर्णो भगवांस्ततः सप्तमे दिवसे देवेभ्यस्त्रायस्त्रिंशेभ्यः सांकाश्ये नगरे आपञ्जुरे दावे उदुम्बरमूले । यदा भगवान् सांकाश्यं नगरमवतीर्णः, तदा अनेकानि प्राणिशतसहस्राणि भगवतो दर्शनाय संनिपतितानि । तत्रोपपादुको भिक्षुः प्रादुर्भूतः । तेन भगवान्
B 95 सश्रावकसंघस्ते च देवासुरगरुडकिंनरमहोरगा भक्तेनोपनिमन्त्रिताः । यावद्गण्डीदेशनाकाले[1] सहचित्तोत्पादाद्दिव्यान्यासनान्युदारपटाच्छादितानि प्रादुर्भूतानि, दिव्यानि च भक्ष्यभोज्यानि । तत उपपादुकेन भगवान् दिव्येनाहारेण संतर्पितः । ते च देवासुरगरुडकिंनरमहोरगाः सम्यगुपस्थिताः । ततोऽस्य भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वोपपादुकेन भिक्षुणा इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविप्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त उपपादुकेन कर्माणि कृतानि, येनोपपादुकः संवृत्तः ? सहचित्तोत्पादाच्चास्य यच्चिन्तयति, यत्प्रार्थयते, तत्सर्वं समृध्यतीति । भगवानाह—उपपादुकेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । उपपादुकेनैव कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

B 96
न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्येकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । यावदन्यतरस्मिन् ग्रामकेऽरण्यायतने पञ्च भिक्षवो वर्षा उपगताः । तत्रैकेन भिक्षुणा चतुर्णां

[1] गण्डीदेशकाले is the reading of Mss. The expression means at the time of meals.

भिक्षूणां वैयावृत्यं कृतम्। तैर्युज्यमानैर्घटमानैर्व्यायच्छमानैः सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। पञ्चमेन पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कृतम्—यथैभिर्मामागम्य अर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्, अनेन मे कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च प्रव्रजितस्य उपकरणविशेषैरवैकल्यं स्यादिति॥

किं मन्यध्वे भिक्षवः योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन वैयावृत्यं कृतवान्, अयं स उपपादुक इति। भिक्षव ऊचुः—किं कर्म कृतं येनोपपादुकः संवृत्तः? भगवानाह—भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि अस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो ॥ 97
विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे। तत्रान्यतरः श्रेष्ठी। तस्य भार्या प्रसवकाले दुःखवेदनाभिभूता आर्तस्वरा क्रन्दति। स तं शब्दं श्रुत्वा परं संवेगमापन्नः। स शोकागारं प्रविश्य करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः। तस्य बुद्धिरुत्पन्ना—यन्वहं भगवच्छासने प्रव्रज्य प्रणिधानं कुर्याम्, येन न कदाचिद्गर्भशय्यां प्रत्यनुभवामीति। स तेनैव संवेगेन भगवतः काश्यपस्य प्रवचने प्रव्रजितः। तेन प्रणिधानं कृतम्—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च यत्र यत्र जायेय, तत्र तत्रोपपादुको भवेयम्, मा कदाचिद्गर्भशय्यां प्रत्यनुभवेयमिति॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन सार्थवाह आसीत्, अयं स उपपादुकः। यत्प्रणिधानं कृतम्, तेनोपपादुकः संवृत्तः। यत्तत्रानेनेन्द्रियाणि परिपाचितानि, तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

८७ शोभितः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः ॥ 98
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कपिलवस्तुनि विहरति न्यग्रोधारामे। कपिलवस्तुनि अन्यतमः शाक्य आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। सा

अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकोऽतिक्रान्तो मानुषवर्णमसंप्राप्तश्च दिव्यं वर्णम् । तस्य जन्मन्यनेकान्यद्भुतानि प्रादुर्भूतानि, यैः कपिलवस्तु नगरं समन्ततः शोभितम् । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते–किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः–यस्मादस्य जन्मनि कपिलवस्तु नगरं समन्ततः शोभितम्, तस्मादस्य भवतु शोभित इति नामेति । शोभितो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा
II 99 सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् ॥

स यदा महान् संवृत्तस्तदा न्यग्रोधारामं गतो भगवतो दर्शनाय । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम् । प्रसादजातो भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । तस्य भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा शोभितेन दारकेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम् । स दृष्टसत्यो मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः–कानि भदन्त
II 100 शोभितेन कर्माणि कृतानि येनाभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकोऽतिक्रान्तो मानुषवर्णमसंप्राप्तश्च दिव्यं वर्णम्, जन्मनि चास्यानेकानि अद्भुतानि प्रादुर्भूतानि, यैः कपिलवस्तु नगरं समन्ततः शोभितम् ? भगवानाह–शोभितेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । शोभितेनैव कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे चत्वारिंशद्वर्षसहस्रायुषि प्रजायां ऋकुच्छन्दो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स शोभावतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति। तस्य शोभेन राज्ञा केशनखस्तूपः प्रतिष्ठापितः। यावत्कस्मिंश्चित्पर्वणि प्रत्युपस्थिते गोष्ठिकाः स्तूपसमीपं गताः। तैस्तं स्तूपं दृष्ट्वा प्रसादजातैः पुष्पारोपणं कर्तुमारब्धम्। तत्रैको गोष्ठिकः कथयति—अहं न करोमि, मम विभवो नास्तीति। स तैश्च गोष्ठिकमध्यान्निष्कासितः। तस्य विप्रतिसारो जातः। तेन विचित्रपुष्पसंग्रहं कृत्वा तस्मिन्नेव स्तूपे पुष्पारोपणं कृतम्॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन गोष्ठिक आसीत्, येन विप्रतिसारजातेन ऋकुच्छन्दस्य केशनखस्तूपे पुष्पारोपणं कृतम्, अयमसौ शोभितः। अन्यान्यपि हि भिक्षवः शोभितेन कर्माणि कृतान्युपचितानि। भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि B 101
वाराणस्यां नगर्यामन्यतमः श्रेष्ठी। तेन ग्लानः प्रत्येकबुद्धो दृष्टः। ततः प्रसादजातेन पादयोर्निपत्य पिण्डकेन प्रतिपादितः, पटेन चाच्छादितः॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन श्रेष्ठी, अयं शोभितः। भूयः काश्यपे भगवति दरिद्रोऽभूत्काष्ठहारकः। स काष्ठानामर्थे पर्वतदरीं प्रविष्टः। तेन स्तूपो दृष्टः। तत्र च स्तूपाङ्गणे तृणानि जातानि। ततस्तेन प्रसादजातेन तृणान्युत्पाट्य संमार्जनीं गृहीत्वा स्तूपाङ्गणं च संमृष्टम्। ततः पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कर्तुमारब्धः—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अभिरूपः स्यां दर्शनीयः प्रासादिकः, अनागतांश्च बुद्धानारागयेयं मा विरागयेयमिति॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन काष्ठहारक आसीत्, अयमेवासौ शोभितः। यदनेन स्तूपाङ्गणं संमृष्टम्, तेन यत्र यत्र जातस्तत्र तत्राभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः संवृत्तः। तेनैव हेतुनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

८८ काप्फिणः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नर- B 102
महोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लान-

अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको-ऽतिक्रान्तो मानुषवर्णमसंप्राप्तश्च दिव्यं वर्णम्। तस्य जन्मन्यनेकान्यद्भुतानि प्रादुर्भूतानि, यैः कपिलवस्तु नगरं समन्ततः शोभितम्। तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति। ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य जन्मनि कपिलवस्तु नगरं समन्ततः शोभितम्, तस्मादस्य भवतु शोभित इति नामेति। शोभितो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा
B 99 सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्॥

स यदा महान् संवृत्तस्तदा न्यग्रोधारामं गतो भगवतो दर्शनाय। अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम्। प्रसादजातो भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। तस्य भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा शोभितेन दारकेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम्। स दृष्टसत्यो मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः। तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त
B 100 शोभितेन कर्माणि कृतानि येनाभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकोऽतिक्रान्तो मानुषवर्णमसंप्राप्तश्च दिव्यं वर्णम्, जन्मनि चास्यानेकानि अद्भुतानि प्रादुर्भूतानि, यैः कपिलवस्तु नगरं समन्ततः शोभितम्? भगवानाह—शोभितेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। शोभितेनैव कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे चत्वारिंशद्वर्षसहस्रायुषि प्रजायां क्रकुच्छन्दो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स शोभावतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति । तस्य शोभेन राज्ञा केशनखस्तूपः प्रतिष्ठापितः । यावत्कस्मिंश्चित्पर्वणि प्रत्युपस्थिते गोष्ठिकाः स्तूपसमीपं गताः । तैस्तं स्तूपं दृष्ट्वा प्रसादजातैः पुष्पारोपणं कर्तुमारब्धम् । तत्रैको गोष्ठिकः कथयति—अहं न करोमि, मम विभवो नास्तीति । स तैश्च गोष्ठिकमध्यान्निष्कासितः । तस्य विप्रतिसारो जातः । तेन विचित्रपुष्पसंग्रहं कृत्वा तस्मिन्नेव स्तूपे पुष्पारोपणं कृतम् ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन गोष्ठिक आसीत्, येन विप्रतिसारजातेन क्रकुच्छन्दस्य केशनखस्तूपे पुष्पारोपणं कृतम्, अयमसौ शोभितः । अन्यान्यपि हि भिक्षवः शोभितेन कर्माणि कृतान्युपचितानि । भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि B 101
वाराणस्यां नगर्यामन्यतमः श्रेष्ठी । तेन ग्लानः प्रत्येकबुद्धो दृष्टः । ततः प्रसादजातेन पादयोर्निपत्य पिण्डकेन प्रतिपादितः, पटेन चाच्छादितः ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन श्रेष्ठी, अयं शोभितः । भूयः काश्यपे भगवति दरिद्रोऽभूत्काष्ठहारकः । स काष्ठानामर्थे पर्वतदरीं प्रविष्टः । तेन स्तूपो दृष्टः । तत्र च स्तूपाङ्गणे तृणानि जातानि । ततस्तेन प्रसादजातेन तृणान्युत्पाट्य संमार्जनीं गृहीत्वा स्तूपाङ्गणं च संमृष्टम् । ततः पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कर्तुमारब्धः—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च अभिरूपः स्यां दर्शनीयः प्रासादिकः, अनागतांश्च बुद्धानारागयेयं मा विरागयेयमिति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन काष्ठहारक आसीत्, अयमेवासौ शोभितः । यदनेन स्तूपाङ्गणं संमृष्टम्, तेन यत्र यत्र जातस्तत्र तत्राभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः संवृत्तः । तेनैव हेतुनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

८८ कप्फिणः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 102
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लान-

प्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति स्म जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। तेन खलु समयेन दक्षिणापथे कल्पो नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नम्। प्रियमिवैकपुत्रकं राज्यं पालयति। सोऽपरेण समयेन देव्या सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेतः। तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा कप्फिण इति नामधेयं व्यवस्थापितम्। कप्फिणो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते हृदस्थमिव पङ्कजम्। यस्मिन्नेव दिवसे कप्फिणः कुमारो जातः, तस्मिन्नेव दिवसे अष्टादशानाममात्यसहस्राणां पुत्रा जाताः, सर्वे महानग्नाः। तेषां प्रतिरूपाणि नामानि व्यवस्थापितानि ॥

B 103 यद्[1]राजा कल्पः कालधर्मेण संयुक्तः, तस्यात्ययात्कप्फिणः कुमारो राज्ये प्रतिष्ठितः। तानि चाष्टादशामात्यपुत्रसहस्राणि सर्वाण्यमात्यत्वे नियुक्तानि। अथापरेण समयेन राजा महाकप्फिणोऽष्टादशामात्यसहस्रपरिवृतो मृगवधाय निर्गतः। पुरस्तात्पृष्ठतश्च सर्वबलौघमवलोक्यामात्यानामन्त्रयते—अस्ति भवन्तः कस्यचिदेवंरूपो बलौघः तद्यथा ममैवैतर्हीति? ततः प्रियवादिभिरमात्यैरभिहितम्—देव नान्यस्य कस्यचिदिति। अथ मध्यदेशाद्वणिजो दक्षिणापथं गताः। तै राज्ञो महाकप्फिणस्य प्राभृतमुपनीतम्। राज्ञा उक्ताः—भो वणिजः, कस्तत्र राजेति। वणिजः कथयन्ति—देव केचिद्देशा गणाधीनाः केचिद्राजाधीना इति। यावद्राज्ञा महाकप्फिणेन श्रावस्त्यादिषु षट्सु महानगरेषु दूतसंप्रेषणं कृतम्। यद्युत्थिता भवथ नोपवेष्टव्यम्, शीघ्रमागन्तव्यम्, अन्यथा व उत्तमेन दण्डेन समनुशासिष्यामीति। एतद्वचनमुपश्रुत्य षण्महानगरवासिनो राजानो भीतास्त्रस्ताः संविग्ना आहृष्टरोमकूपाः संगम्य समागम्य एकसमूहेन श्रावस्तीमनुप्राप्ताः। ततो भगवत्सकाशं गताः। तैः स वृत्तान्तो भगवतो विस्तरेण निवेदितः। भगवता ते समाश्वासिताः, उक्ताश्च—स दूतो मत्सकाशमानेतव्य इति। ततस्तैर्दूतस्य निवेदितम्। अस्त्यस्माकं राजाधिराजः, तं तावत्पश्येति ॥

B 104 ततो भगवता दूतागमनमवेत्य जेतवनं चतूरत्नमयं निर्मितं देवानामिव सुदर्शनं नगरम्। अत्र चत्वारो महाराजानो दौवारिकाः स्थापिताः, ऐरावतसदृशा हस्तिनः, वालाहकसदृशा अश्वाः, नन्दीघोषसदृशा रथाः, व्याडयक्षसदृशा मनुष्याः। स्वयं च भगवता चक्रवर्तिवेषो निर्मितः, सप्ततालोच्छ्रितं च सिंहासनं यत्र भगवान्निषण्णः। ततो दूतस्तथाविधां शोभां दृष्ट्वा परं विस्मयमापन्नः। ततो भगवता लेखं लेखयित्वा स दूतोऽभिहितः—कप्फिणो मद्वचनाद्वक्तव्यः—लेखवाचनसमकालमेव यद्युत्थितो भवसि, नोपवेष्टव्यम्, शीघ्रमागन्तव्यम्।

---

1 यद् here stands for यदा or यावत्.

भावीनि । कष्फिणेन कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि । B 109
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ ३ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्येकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति बन्धुमतीयके दावे । यावदन्यतमेन सार्थवाहेन महासमुद्रात्प्रभूतानि रत्नान्यानीतानि । विपश्यी सम्यक्संबुद्धः सश्रावकसंघस्त्रैमास्यं भक्तेनोपनिमन्त्रितः । विहारं च कारयित्वा चातुर्दिशाय भिक्षुसंघाय निर्यातितवान् ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ सार्थवाहः, एष एवासौ कष्फिणो राजा तेन कालेन तेन समयेन । यदनेन विपश्यी सम्यक्संबुद्धः सश्रावकसंघस्त्रैमास्यं स्वान्तर्गृहे भक्तेनोपनिमन्त्रितः, विहारं च कारयित्वा चातुर्दिशाय भिक्षुसंघाय निर्यातितः [1]* * * * । अपराण्यपि भिक्षवः कष्फिणेन कर्माणि कृतान्युपचितानि । भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां महानगर्यां ब्रह्मदत्तो नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नम् । धार्मिको धर्मराजो धर्मेण राज्यं कारयति । सोऽपरेण समयेन संप्राप्ते वसन्तकालसमये, संपुष्पितेषु पादपेषु, हंसक्रौञ्चमयूरशुकसारिकाकोकिलजीवंजीवकनिर्घोषिते वनषण्डे, अष्टादशामात्यगणसहस्रपरिवृत उद्यानं निर्गतः । तेन तत्रोद्याने ग्लानः प्रत्येकबुद्धो दृष्टः । स तेन साप्रेय[2]भोजनेन त्रैमास्यमुपस्थितः । परिनिर्वृतस्य च शरीरस्तूपं कारयित्वा अमात्यगणसहायेन तैलाभिषेको दत्तः । तेन सपरिवारो महानग्रबलाधानेन संवृत्तः । भूयः काश्यपे भगवति प्रव्रजितो बभूव । तत्रानेनेन्द्रियपरिपाकः कृतः । तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

(B 110, in the right margin beside the line ending "प्रत्येक-")

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥



---

१ The gap may be filled with: तेनेदानीमभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः संवृत्तः.
२ साप्रेय, wholesome food, comes from सप्पाय in Pali. It also occurs as सप्रेय associated with प्रणीत as in शिक्षासमुच्चय.

निरोधः। संस्कारनिरोधाद्विज्ञाननिरोधः। विज्ञाननिरोधान्नामरूपनिरोधः। नामरूपनिरोधात्षडायतननिरोधः। षडायतननिरोधात्स्पर्शनिरोधः। स्पर्शनिरोधाद्वेदनानिरोधः। वेदनानिरोधात्तृष्णानिरोधः। तृष्णानिरोधादुपादाननिरोधः। उपादाननिरोधाद्भवनिरोधः। भवनिरोधाज्जातिनिरोधः। जातिनिरोधाज्जरामरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासा निरुध्यन्ते। एवमस्य केवलस्य महतो दुःखस्कन्धस्य निरोधो भवति। स्वाख्यातो मे भिक्षवो धर्मः, उत्तानो विवृतश्छिन्नप्लोतिको यावद्देवमनुष्येभ्यः सम्यक्सुप्रकाशितः। एवं स्वाख्याते मे धर्मे उत्ताने विवृते छिन्नप्लोतिके यावद्देवमनुष्येभ्यः सम्यक्सुप्रकाशिते यावदलमेव भिक्षवः श्रद्धाप्रव्रजितेन कुलपुत्रेण अलं योगाय अलमप्रमादाय, अलं शास्तुः शासने योगमापत्तुम्, कामं B 107 त्वक्स्नाय्वस्थ्यवतिष्ठताम्, परिशुष्यतु शरीरान्मांसशोणितम्। अथ च पुनर्यत्तदारब्धवीर्येण प्राप्तव्यं स्थामवता वीर्यवता उत्साहिना दृढपराक्रमेण निक्षिप्तधुरेण कुशलेषु धर्मेषु, तद्वहनानुप्राप्तात्तवीर्यस्य स्रंसनं भविष्यति। तत्कस्य हेतोः? दुःखं हि कुसीदो विहरति व्यवकीर्णः, पापकैरकुशलैर्धर्मैः सांक्लेशिकैः पौनर्भविकैः सज्वरैर्दुःखविपाकैः आयत्यां जातिजरामरणीयैः महतश्चार्थस्य परिहाणिर्भवति। आरब्धवीर्यस्तु सुखं विहरत्यव्यवकीर्णः पापकैरकुशलैर्धर्मैः सांक्लेशिकैः पौनर्भविकैः सज्वरैर्दुःखविपाकैः आयत्यां जातिजरामरणीयैः। महतश्चार्थस्य पारिपूरिर्भवति। मण्डयेयमिदं प्रवचनं यदुत शास्ता च संमुखीभूतः। धर्मश्च देश्यत औपशमिकः पारिनिर्वाणिकः संबोधिगामी सुगतप्रवेदितः। तस्मात्तर्हि भिक्षव आत्मार्थं च समनुपश्यद्भिः परार्थं चोभयार्थं च, इदं प्रतिसंशिक्षितव्यम्—कच्चिन्नः प्रव्रज्या अमोघा B 108 भविष्यति, सफला सुखोदया सुखविपाका। येषां च परिभोक्ष्यामहे चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारान्, तेषां च ते काराः कृताः कच्चिदस्यर्थमहाफला भविष्यन्ति, महानुशंसा महाद्युतयो महाविस्ताराः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

अस्मिन् खलु धर्मपर्याये भाष्यमाणे राज्ञा महाकप्फिणेन अष्टादशामात्यगणसहस्रपरिवारेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम्। ततो दृष्टसत्यो भगवच्छासने प्रव्रजितः। तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त कप्फिणेन कर्माणि कृतानि, येनाभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकोऽष्टादशामात्यगणसहस्रपरिवारो महानुभावः, प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति। भगवानाह—कप्फिणेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यं-

भावीनि। कप्फिणेन कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथ्वीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि। B 109
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ ३॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्येकनवते कल्पे विपश्यी नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स बन्धुमतीं राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति बन्धुमतीयके दावे। यावदन्यतमेन सार्थवाहेन महासमुद्रात्प्रभूतानि रत्नान्यानीतानि। विपश्यी सम्यक्संबुद्धः सश्रावकसंघस्त्रैमास्यं भक्तेनोपनिमन्त्रितः। विहारं च कारयित्वा चातुर्दिशाय भिक्षुसंघाय निर्यातितवान्॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ सार्थवाहः, एष एवासौ कप्फिणो राजा तेन कालेन तेन समयेन। यदनेन विपश्यी सम्यक्संबुद्धः सश्रावकसंघस्त्रैमास्यं स्वान्तर्गृहे भक्तेनोपनिमन्त्रितः, विहारं च कारयित्वा चातुर्दिशाय भिक्षुसंघाय निर्यातितः [1]* * * *। अपराण्यपि भिक्षवः कप्फिणेन कर्माणि कृतान्युपचितानि। भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां महानगर्यां ब्रह्मदत्तो नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नम्। धार्मिको धर्मराजो धर्मेण राज्यं कारयति। सोऽपरेण समयेन संप्राप्ते वसन्तकालसमये, संपुष्पितेषु पादपेषु, हंसक्रौञ्चमयूरशुकसारिकाकोकिलजीवंजीवकनिर्घोषिते वनषण्डे, अष्टादशामात्यगणसहस्रपरिवृत उद्यानं निर्गतः। तेन तत्रोद्याने ग्लानः प्रत्येकबुद्धो दृष्टः। स तेन सांप्रेय[2]भोजनेन त्रैमास्यमुपस्थितः। परिनिर्वृतस्य च शरीरस्तूपं कारयित्वा अमात्यगणसहायेन तैलाभिषेको दत्तः। तेन सपरिवारो महानप्रबलाधानेन संवृत्तः। भूयः काश्यपे भगवति प्रव्रजितो बभूव। तत्रानेनेन्द्रियपरिपाकः कृतः। तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

B 110

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

१ The gap may be filled with: तेनेदानीमभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः संवृत्तः.
२ सांप्रेय, wholesome food, comes from सप्पाय in Pali. It also occurs as संप्रेय associated with प्रणीत as in शिक्षासमुच्चय.

८९ भद्रिकः ।

B 111 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहो-
रगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्यय-
भैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे ॥

यदा भगवान् षड्वर्षाभिसंबुद्धो द्वादशवर्षनिर्गतः कपिलवस्तु अनुप्राप्तः, तदा द्रोणो-
दनामृतोदनप्रमुखैरनेकैः शाक्यसहस्रैः सत्यदर्शनं कृतं स्थापयित्वा राजानं शुद्धोदनम् ।
ततो राजा शुद्धोदनस्तां पुत्रशोभां दृष्ट्वा परं विस्मयमापन्नः । तस्य बुद्धिरुत्पन्ना—यदि मे
पुत्रो न प्रव्रजितोऽभविष्यत्, सोऽयमभविष्यद्राजा चक्रवर्ती चतुरन्त[1]विजेता धार्मिको धर्मराजः।
स एतर्हि जटिलप्रव्रजितपरिवारो न शोभते । यन्त्वहं शाक्यकुलेभ्य एकैकं प्रव्राजयेयमिति ।
B 112 ततो राज्ञा शुद्धोदनेन नगरे घण्टावघोषणं कारितम्—सर्वशाक्यैः संनिपतितव्यमिति । ततः
सर्वशाक्येषु संनिपतितेषु राजा शुद्धोदनः कथयति—शृण्वन्तु भवन्तः शाक्याः । यदि
सर्वार्थसिद्धः कुमारो न प्रव्रजितोऽभविष्यत्, युष्माभिरेवोपस्थानं कृतमभविष्यत् । तदिदानीमस्य
प्रव्रजितस्य एकैकेन कुलपुरुषेण शाक्येनोपस्थायकेन प्रव्रजितव्यमिति । ततो भद्रिकानिरुद्ध-
रैवतदेवदत्तप्रभृतीनि पञ्च कुमारशतानि प्रव्रजितानि । तेषामुपालिर्नाम कल्पक[2] उप-
स्थायकः तान् प्रव्रजितान् दृष्ट्वा रोदितुमारब्धः । ततः शाक्यैः पृष्टः—किमर्थमुपाले रुदत इति ।
स करुणदीनविलम्बितैरक्षरैरुवाच—यूयं प्रव्रजिताः । को ममेदानीं भक्ताच्छादनेन परिपालनं
करिष्यतीति । ततः शाक्या ऊचुः—तेन हि उपाले, पटकं प्रसारयेति । तेन पटकः प्रसा-
रितः । ततः शाक्यैः शरीरावलग्नानां हारार्धहारमणिमुक्तावैडूर्यकेयूराङ्गुलीयकानां महान् राशिः
कृतः । तत उपालेः कल्पकस्य तान् दृष्ट्वा विचित्रं चालंकारमभिवीक्ष्य योनिशोमनसिकार
B 113 उत्पन्नः—इमे तावच्छाक्याः कुलरूपयौवनवन्तोऽन्तःपुराणि इमं चालंकारं खेटवदुत्सृज्य
प्रव्रजिताः । किमुताहमल्पविभवः इममलंकारं गृहं नेष्यामि ? अलमनेन । यन्वहमेतानत्नु
प्रव्रजेयमिति । अथोपालिः कल्पको येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः, उपसंक्रम्य भगवतः पादयो-
र्निपत्य भगवन्तमिदमवोचत्—यदि भगवन् मादृशानां प्रव्रज्या अस्ति, लभेयाहं स्वाख्याते
धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावम्, चरेयमहं भगवतोऽन्तिके ब्रह्मचर्यमिति । ततो
भगवता एहिभिक्षुकया प्रव्राजितः ॥

ततो भद्रिकप्रमुखाणि पञ्च शाक्यशतानि भिक्षुनेपथ्यधारीणि[3] बुद्धप्रमुखस्य भिक्षु-
संघस्य प्रणामं कर्तुं प्रवृत्तानि । ते उपालिं ज्ञात्वा कुलरूपविभवान्विततत्वान्नेच्छन्त्युपालेः

---

१ Mss. चतुरत्न. The word चतुरन्त stands for the whole earth as in चतुरन्तमहीपपत्नी in शाकुन्तल. It is confounded with चतुरत्न which is perhaps more frequent. २ कल्पक, a barber. ३ Mss. भिक्षुनेच्छधारीणि, but Speyer reads भिक्षुनेपथ्यधारीणि.

प्रणाम कर्तुम् । तत्र भगवानायुष्मन्त भद्रिकमामन्त्रयते—भद्रिक कर्तव्योऽस्य प्रणाम,
यस्मादिद मामक शासन न कुलरूपयौवनैश्वर्यचातुर्वर्ण्यविशुद्धिमपेक्षत इति । ततो मूल- B 114
निकृत्ता इव द्रुमा भद्रिकप्रमुखाणि पञ्च शाक्यशतानि धर्मतामवलम्ब्य पादयोर्निपति-
तानि । तेषा पादवन्दनसमकालमेवेय महापृथिवी षड्विकार प्रकम्पिता ॥

तत्रायुष्मता भद्रिकेण युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डक ससार-
चक्र चलाचल विदित्वा सर्वसस्कारगती शतनपतनविकिरणविध्वसनधर्मतया पराहत्य
सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्व साक्षात्कृतम् । अर्हन् सवृत्त त्रैधातुकवीतराग समलोष्टकाञ्चन
आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसवि-
त्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुख । सेन्द्रोपेन्द्राणा देवाना पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च सवृत्त ।
स च महात्मा हीनदीनानुकम्पी । सोऽपरेण समयेन पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय
श्रावस्तीं गोचराय प्रस्थित । यावदन्यतरचण्डालकठिन पिण्डाय प्रविष्ट । तेन खलु
समयेन राजा प्रसेनजित्कौशल एकपुण्डरीक हस्तिनागमभिरुह्य दीर्घेण चारायणेन सार
थिना भगवतो दर्शनाय सप्रस्थित । ददर्श राजा प्रसेनजित्कौशलो भद्रिक शान्तेन्द्रिय
शान्तमानसम्, परमेण च चित्तदमव्युपशमनसमन्वागत पासुकूलप्रावृत लूह पिण्डपात
गृहीत्वा तस्माच्चण्डालकठिनान्निर्गच्छन्तम् । दृष्ट्वा च पुनर्दीर्घं चारायण सारथिमामन्त्रयते—
स्यादय चारायण भद्रिको भिक्षु ? एव यथा वदसि । इति श्रुत्वा राजा प्रसेनजित्कौशल
समोहमापन्न, पृथिव्या मूर्छित पतित । ततो जलपरिषेकप्रत्यागतप्राणचेतसो लब्धमानस-
श्चारायणेन सारथिनोत्थापित ॥

ततो राजा भगवत्सकाशमुपसक्रम्य भगवत पादाभिवन्दन कृत्वा भगवन्तमुवाच— B 115
भगवन्, अद्भुत मे दृष्टम् । असौ भद्रिक शाक्यराज पासुकूलप्रावृतो लूह पिण्डपात
गृहीत्वा देवमनुष्यावर्जनकरेणातिप्रशान्तेनेर्यापथेन पिण्डपातमादाय चण्डालकठिनान्निर्गत ।
तस्य ममैतदभवत्—आश्चर्यं यावत्सुविनीत भगवच्छासनम्, यत्र नाम एवविधा कुमारा
सुखैधिता एव विनीतप्रचारा सवृत्ता इति । भगवानाह—अपरमपि महाराज भद्रिकस्याश्चर्य
शृणु । अय महाराज भद्रिकोऽरण्यगतो वा वृक्षमूलगतो वा शून्यागारगतो वा त्रिरुदानयति—
अहो बत सौख्यम् । यदहमप्रव्रजित सन् राजकुलमध्यगतोऽमात्यनैगमजानपदसुसरक्षित
प्राकारपरिखाद्वारस्त्वपाभिनिगूढ परिशङ्कितहृदय सविग्न समन्तत शङ्की निद्रा नासाद-
यामि । सोऽहमेतर्हि निरपेक्ष काये जीविते च सुख यत्रतत्रस्थो विहरामीति ॥

भिक्षव सशयजाता सर्वसशयच्छेत्तार बुद्ध भगवन्त पप्रच्छु—कानि भदन्त
भद्रिकेण पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतानि, येनाभिरूपो दर्शनीय प्रासादिक आढ्ये B 116
राजकुले प्रत्याजात । प्रव्रज्य चार्हत्त्व साक्षात्कृतमिति । भगवानाह—भद्रिकेणैव भिक्षव
पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युप-
स्थितान्यवश्यभावीनि । भद्रिकेण कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्य प्रत्यनुभविष्यति ?

न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि अपि कल्पशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यामन्यतमः कोट्टमल्लकः[1] क्षुत्क्षामपरिगतशरीरः इतश्चामुतश्चान्वाहिण्डते । यावदन्यतरा दारिका पूपलिका[2] आदाय गच्छति । ततस्तेन कोट्टमल्लकेन सा दारिका पूपलिकानामर्थे अभिभूता । ततो बलादेकां पूपलिकामादाय इतस्ततः पलायितुमारब्धः । सा चास्य दारिका पृष्ठतः समनुबद्धैव । ततोऽसौ कोट्टमल्लकः सहसा नदीचारिकामुत्तीर्णः । असति बुद्धानामुत्पादे प्रत्येकबुद्धा लोक उत्पद्यन्ते हीनदीनानुकम्पकाः प्रान्तशयनासनभक्ता एकदक्षिणीया लोकस्य । तदा अन्यतरः प्रत्येकबुद्धस्तस्य कोट्टमल्लकस्याग्रतः स्थितः । ततः कोट्टमल्लकस्य तं प्रत्येकबुद्धं B 117 शान्तेर्यापथं दृष्ट्वा महान् प्रसादो जातः । तेन स्वं व्यसनमगणय्य प्रत्येकबुद्धाय पूपलिका प्रतिपादिता । तस्य विप्रहर्षसंजननार्थं विततपक्ष इव हंसराजो गगनतलमभ्युद्गम्य विचित्राणि प्रातिहार्याणि विदर्शयितुमारब्धः । ततः कोट्टमल्लकस्तदत्यद्भुतं देवमनुष्यावर्जनकरं प्रातिहार्यं दृष्ट्वा मूलनिकृत्त इव द्रुमः पादयोर्निपत्य प्रणिधानं कर्तुमारब्धः—"यन्मे सिद्धव्रतो दक्षिणीयः पूपलिकया प्रतिपादितः, अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च यत्र यत्र जायेय, तत्र तत्रोच्चकुलीनः स्याम्, एवंविधानां च धर्माणां लाभी स्याम्, प्रतिविशिष्टतरं चातः शास्तारमारागयेयं मा विरागयेयमिति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन कोट्टमल्लकः, अयमसौ भद्रिकः । यत्तेन प्रत्येकबुद्धः पूपलिकया प्रतिपादितः, तस्य कर्मणो विपाकेनाढ्ये शाक्ये प्रत्याजातः । भूयः काश्यपे भगवति प्रव्रजितो बभूव । तत्रानेन दश वर्षसहस्राणि ब्रह्मचर्यावासः प्रतिपालितः । तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

१ घेमट्ट, a beggar. २ पूलिय, pan-cake.

९० राष्ट्रपालः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 118
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः स्थूलकोष्ठकमुपनिश्रित्य विहरति स्थूलकोष्ठकीये वनषण्डे। तेन खलु समयेन स्थूलकोष्ठके कौरव्यो नाम राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नमखिलमकण्टकम्। एकपुत्रमिव राज्यं पालयति। तस्य भ्रातृपुत्रो राष्ट्रपालो नाम्ना अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेतः। तस्य विनयकालमवेक्ष्य भगवान् पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतः स्थूलकोष्ठकं पिण्डाय प्रविष्टः। ददर्श राष्ट्रपालो बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाच्चास्य भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसन्नम्। स प्रसादजातो भगवतः पादयोर्निपत्य प्रव्रज्यां याचते। ततस्तं भगवानाह—वत्स अनुज्ञातोऽसि मातापितृभ्यामिति? राष्ट्रपालः कथयति—नो भदन्तेति। भगवानाह—
न हि वत्स तथागता वा तथागतश्रावका वा अननुज्ञातं मातापितृभ्यां प्रव्राजयन्ति, उप- B 119
संपादयन्ति चेति॥

ततो राष्ट्रपालो मातापित्रोः सकाशमुपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य बुद्धस्य वर्णं भाषते—दृष्टो मया भगवाञ्छाक्यमुनिः सम्यक्संबुद्धः। स्फीतं चक्रवर्तिराज्यमपहाय प्रव्रजितः षष्टिं चान्तःपुरसहस्राणि। मुण्डः संघाटिप्रावृतोऽस्मिन्नेव स्थूलकोष्ठके पिण्डपातमटति। तदर्हतो युवां मामनुज्ञातुम्—यदहं तं भगवन्तं प्रव्रजितमनुप्रव्रजेयमिति। ततोऽस्य मातापितरौ नानुजानीतः। ततस्तेनैको भक्तच्छेदः कृतः। द्वौ त्रयो वा यावत् षड् भक्तच्छेदाः कृताः॥

अथ राष्ट्रपालस्य मातापितरौ येन राष्ट्रपालो गृहपतिपुत्रस्तेनोपसंक्रान्तौ। उपसंक्रम्य राष्ट्रपालं गृहपतिपुत्रमिदमवोचताम्—यत्खलु तात राष्ट्रपाल जानीयाः—त्वं हि सुकुमारः सुखैषी। न त्वं जानको दुःखस्य। दुष्करं ब्रह्मचर्यम्, दुष्करं प्राविवेक्यम्, दुरभिरममेकत्वम्, दुरभिसंबोधान्यरण्यवनप्रस्थानि, प्रान्तानि शयनासनान्यध्यावस्तुम्। इहैव त्वं तात राष्ट्रपाल निषद्य कामांश्च परिभुङ्क्ष्व, दानानि च देहि, पुण्यानि च कुरु। एवमुक्ते राष्ट्रपालो गृहपतिपुत्रस्तूष्णीम्॥

---

१ *A different version of the story of* राष्ट्रपाल *is found in the* मज्झिमनिकाय where he is called simply कुलपुत्त and not भ्रातृपुत्र of the king. Later in this version he is called गृहपतिपुत्र.

अथ राष्ट्रपालस्य गृहपतिपुत्रस्य मातापितरौ ज्ञातीनुयोजयतः—अङ्ग तावज्ज्ञातयः,
B 120 तातं राष्ट्रपालमुत्थापयत । अथ राष्ट्रपालस्य गृहपतिपुत्रस्य ज्ञातयो येन राष्ट्रपालो गृहपतिपुत्रस्तेनोपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्य राष्ट्रपालं गृहपतिपुत्रमेवमवोचन्—यत्खलु तात राष्ट्रपाल जानीयाः—त्वं हि सुकुमारः सुखैषी । न त्वं जानको दुःखस्य । दुष्करं ब्रह्मचर्यम्, दुष्करं प्राविवेक्यम्, दुरभिरममेकत्वम्, दुरभिसंबोधान्यरण्यवनप्रस्थानि, प्रान्तानि शयनासनान्यध्यावस्तुम् । इहैव त्वं तात राष्ट्रपाल निषद्य कामांश्च परिभुङ्क्ष्व, दानानि च देहि, पुण्यानि च कुरु । एवमुक्ते राष्ट्रपालो गृहपतिपुत्रस्तूष्णीम् ॥

अथ राष्ट्रपालस्य गृहपतिपुत्रस्य मातापितरौ राष्ट्रपालस्य गृहपतिपुत्रस्य वयस्यकानुयोजयतः—अङ्ग तावत्कुमाराः, तातं राष्ट्रपालमुत्थापयत । अथ राष्ट्रपालस्य गृहपतिपुत्रस्य वयस्यका येन राष्ट्रपालो गृहपतिपुत्रस्तेनोपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्य राष्ट्रपालं गृहपतिपुत्रमिदमवोचन्—यत्खलु सौम्य राष्ट्रपाल जानीयाः—त्वं हि सुकुमारः सुखैषी । न त्वं जानको दुःखस्य । दुष्करं ब्रह्मचर्यम्, दुष्करं प्राविवेक्यम्, दुरभिरममेकत्वम्, दुरभिसंबोधान्यरण्यवनप्रस्थानि, प्रान्तानि शयनासनान्यध्यावस्तुम् । इहैव त्वं सौम्य राष्ट्रपाल निषद्य कामांश्च परिभुङ्क्ष्व, दानानि च देहि, पुण्यानि च कुरु । एवमुक्ते राष्ट्रपालो गृहपतिपुत्रस्तूष्णीम् ॥

अथ राष्ट्रपालस्य गृहपतिपुत्रस्य वयस्यका येन राष्ट्रपालस्य गृहपतिपुत्रस्य माता-
B 121 पितरौ तेनोपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्य राष्ट्रपालस्य गृहपतिपुत्रस्य मातापितराविदमवोचन्—अम्ब[1] तात, अनुजानीतं सौम्यं राष्ट्रपालं प्रव्रजितुं सम्यगेव श्रद्धया अगारादनगारिकाम्, किं मृतेन करिष्यथ? स चेत्तातः प्रव्रज्यायामभिरंस्यते, जीवन्तमेनं द्रक्ष्यथे । स चेन्नाभिरमते, का अन्या पुत्रस्य गतिरन्यत्र मातापितरावेव । एवमावां कुमारकाः तातं राष्ट्रपालमनुजानीयावः । स चेत्प्रव्रज्योपदर्शिष्यं[2] ❀ ❀ ❀ ❀ ॥

B 122 अथ राष्ट्रपालो गृहपतिपुत्रोऽनुपूर्वेण कायस्य स्थामं च बलं च संजनय्य येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवत्पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्तेऽस्थात् । एकान्ते स्थितो राष्ट्रपालो गृहपतिपुत्रो भगवन्तमिदमवोचत्—अनुज्ञातोऽस्मि भगवन् मातापितृभ्याम् । लभेयाहं स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावम् । चरेयमहं भगवतोऽन्तिके ब्रह्मचर्यम् । लब्धवान् राष्ट्रपालो गृहपतिपुत्रः स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावम् । स एवं प्रव्रजितः सन्निदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्वं साक्षात्कृतवान् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासी-

---

१ This speech seems to have been in verse, as Speyer says. The form of verse may be: अम्ब तातानुजानीतमगारादनगारिकाम् ।
राष्ट्रपालं प्रव्रजितुं किं मृतेन करिष्यथ ॥

२ The gap may be filled: स चेत् प्रव्रज्योपदर्शयिष्यत्यात्मानम्.

चन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविप्राप्तो भवलाभलोभसत्कार-पराङ्मुखः। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः। तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्र- B 123
यते स्म—एषोऽग्रो मे भिक्षवो भिक्षूणां मम श्रावकाणां यदुत राष्ट्रपालो भिक्षुरिति॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त राष्ट्रपालेन कर्माणि कृतानि, येनाढ्ये राजकुले प्रत्याजात इति। अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः। प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति। भगवानाह—राष्ट्रपालेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। राष्ट्रपालेन कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि विदेहराजः सपरिवारः परचक्रवित्रासितोऽटवीमनुप्राप्तः।
स मध्याह्ने तीक्ष्णसूर्यरश्मिपरितापितः सबलौघ इतश्चामुतश्च परिभ्रमति, मार्गं च नासाद- B 124
यति। असति च बुद्धानामुत्पादे प्रत्येकबुद्धा लोक उत्पद्यन्ते हीनदीनानुकम्पकाः प्रान्तशयनासनभक्ता एकदक्षिणीया लोकस्य। यावदन्यतरः प्रत्येकबुद्धस्तस्मिन् कान्तारमार्गे प्रतिवसति। तेन कारुण्यमुत्पाद्य तस्य विदेहराजस्य मार्गो व्यपदिष्टः, पानीयह्रदश्च दर्शितः, येन स राजा इष्टेन जीवितेनाच्छादितः। ततो राज्ञा प्रसादजातेन स्वनगरमानीय त्रैमास्यं सर्वोपकरणैरुपस्थितः। परिनिर्वृतस्य चास्य शरीरस्तूपः कारयामास। प्रणिधानं च कृतवान्—अहमप्येवंविधानां गुणानां लाभी स्याम्, प्रतिविशिष्टतरं च शास्तारमारागयेयं मा विरागयेयमिति॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन राजा बभूव, अयं स राष्ट्रपालः। अपराण्यपि राष्ट्रपालेन कर्माणि कृतान्युपचितानि। अस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे। तेन खलु समयेन वाराणस्यां नगर्यां कृकी राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नम्। धार्मिको धर्मराजो धर्मेण राज्यं कारयति। तस्य कनीयान् पुत्रः ऋषिपतनं गतः। अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सह-

H 125 दर्शनाच्चास्य भगवतोऽन्तिके चित्तमभिप्रसन्नम् । प्रसादजातो भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । ततोऽस्य भगवता काश्यपेन धर्मो देशितः । तेन प्रसादजातेन भगवान् काश्यपः सपरिवार उपस्थितः । शरणगमनशिक्षापदानि गृहीतानि । परिनिर्वृतस्य च स्तूपे कनीयाञ्छत्रमारोपितवान् ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ राजपुत्रः, अयमेवासौ राष्ट्रपालस्तेन कालेन तेन समयेन । अपराण्यपि राष्ट्रपालेन कर्माणि कृतान्युपचितानि । भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां महानगर्यामन्यतमो मूलिको ब्राह्मणः । स मूलानामर्थेऽन्यतमं पर्वतमभिरूढः । तेन तत्र पर्यटता वनान्ते ग्लानः प्रत्येकबुद्धो दृष्टः । ततस्तेन प्रसादजातेन तस्योपस्थानं कृतम् । यदा ग्लान्याद्व्युत्थितः, तदा पिण्डकेन प्रतिपाद्य प्रणिधानं कृतम्–अहमप्येवंविधानां लाभी स्याम्, प्रतिविशिष्टतरं चातः शास्तारमारागयेयं मा विरागयेयमिति ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन मूलिको ब्राह्मणः, अयमेवासौ राष्ट्रपालः । तस्य कर्मणो विपाकेन संसारे न कदाचिद्दुःखमनुभूतवान् । इदानीमप्याढ्ये
B 126 राजकुले प्रत्याजातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः । तेनैव हेतुनार्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥



In दिव्यावदान, the term मूलिक is explained as: मूलनिश्रयायां जातो मूलिको भवति It also means, as here, a person or ascetic who lives on roots only.

दशमो वर्गः ।

तस्योदानम्—

सुभूतिः स्थविरश्चापि हस्त लेकुञ्चिकस्तथा ।
संसारो गुप्तिकश्चापि विरूपो गन्धिकेन च ।
दीर्घनखः संगीतिश्च वर्गो भवति समुद्दितः ॥

९१ सुभूतिः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । यदा भगवता अनुत्तरा सम्यक्सम्बोधिमभिसंबुध्य श्रावका नियुक्तास्तेषु तेषु जनपदेषु विनेयजनानुग्रहार्थम्, तदा येऽध्यायिनस्ते सुमेरुपरिषण्डाया ध्यानपरा स्थिता । यावत्सुपर्णिपक्षिराजेन महासमुद्रान्नागपोतलक उद्धृतः । स त सुमेरुपरिषण्डायामारोप्य भक्षयितुमारब्धः । ततो नागपोतलको जीविताद्व्यपरोप्यमाणो महाश्रावकाणामन्तिके चित्तमभिप्रसाद्य कालगत. ॥ B 127

स काल कृत्वा श्रावस्त्यां भूतिर्नाम ब्राह्मण[1], तस्याग्रमहिष्याः कुक्षावुपपन्न । B 128 सा अष्टाना वा नवाना वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचु.—यस्मादस्य पिता भूति, तस्माद्भवतु दारकस्य सुभूतिरिति नामेति । सुभूतिर्दारक उन्नीतो वर्धितो महान् संवृत्त. । स पूर्वेण हेतुबलाधानेन अतीव रोपणः क्रोधपर्यवस्थानबहुलो मातापितृभ्यामाथर्वणाद्विनिवर्त्य ऋषिषु प्रव्राजितः । स च तत्र ध्यानपरः समतोऽन्यतरद्वनषण्डमुपनिश्रित्य विहरति । तत्र च वनषण्डे देवता प्रतिवसति दयसत्वा । तस्याः कारुण्यमुत्पन्नम्—अय कुलपुत्र क्रोधपर्यवस्थानबहुलो विशेष नाधिगच्छति । यन्वहमेन भगवद्दर्शने नियोजयेयमिति । ततस्तया देवतया सुभूते पुरस्ताद्बुद्धस्य वर्णो भाषितो धर्मस्य च संघस्य च । ततः सुभूतेर्भगवद्दर्शनहेतोरभिलाष उत्पन्न । B 129 ततो देवतया ऋद्ध्यनुभावाद्भगवत्सकाशमुपनीत । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्चास्य योऽभूत्सत्त्वे-

---

१ Compare the story of सुभूति as given in कल्पद्रुमावदान (App I to this Volume).

व्याघातः, स प्रतिविगतः । ततः प्रसादजातो भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । तस्य भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा सुभूतिना कुलपुत्रेण विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतापत्तिफलं साक्षात्कृतम् । स दृष्टसत्यो भगवच्छासने प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन मैत्रीभावनया चित्तं दमयित्वा सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविद्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

तत्र आयुष्मान् सुभूतिः समन्वाहर्तुं प्रवृत्तः—कुतोऽहं च्युतः, कुत्रोपपन्नः, केन कर्मणेति । पश्यति—पञ्च जातिशतानि नागेभ्यश्च्युतो नागेष्वेवोपपन्नः । तस्य बुद्धिरुत्पन्ना—मया अतीव एवंविधो द्वेषप्रत्ययोपसंभारः कृतः, येनाहं पञ्च जन्मशतानि नागेषूपपन्नः । तेनैव हेतुना महद्व्यसनमनुभूतवान् । इदानीं पुनस्तथा करिष्यामि यत्परेषामन्तिके द्वेषोपसंभारो
II 130 नोत्पत्स्यते । येन समन्वागतः कायस्य भेदादपायं दुर्गतिं विनिपातं नरकेषूपपद्यते । सोऽरण्यप्रतिपदं[1] समादाय वर्तते । यदा संघे वा ग्रामे वा देशे वा जनपदे वा भिक्षाहेतोर्विहर्तुकामो भवति, तदा पूर्वतरं गोचरमवलोकयति—मा मां कश्चित्कारणेन दृष्ट्वा चित्तं प्रदूषयिष्यति, अन्ततः कुन्तपिपीलका अपीति । स तानीर्यापथेन प्रश्रितेनाभिरमयति । तेन तेषां सत्त्वानां चित्तप्रसादो भवति । एवंविधां सोऽर्हत्त्वप्राप्तोऽप्यपत्रपामनुभवतीति । तत आयुष्मतः सुभूतेर्बुद्धिरुत्पन्ना—यन्वहमिदानीं महाजनानुग्रहार्थं कुर्यामिति । ततस्तेन
B 131 ऋद्ध्या पञ्च सुपर्णिशतानि निर्मितानि, यानि दृष्ट्वा नागा भीतास्त्रस्ताः संविग्ना इतश्चामुतश्च संभ्रान्ताः । ततः सुभूतिना ऋद्धिबलेन पुनः परित्राताः । ततस्तेषां प्रसन्नचित्तानां मैत्री व्यपदिष्टा । पुनरपि महान्तं नागरूपमभिनिर्माय पञ्च गरुडशतान्यभिद्रुतानि । तेषामपि भीतानां मैत्री व्यपदिष्टा । एवं तेन नागानां गरुडानां च पञ्च कुलशतानि विनीतानि । तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म—एषोऽग्रो मे भिक्षवो भिक्षूणां मम श्रावकाणामरणाविहारिणां[2] यदुत सुभूतिः कुलपुत्रः ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त सुभूतिना कर्माणि कृतानि येनारणाविहारिणामग्रो निर्दिष्ट इति । भगवानाह—सुभूतिनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । सुभूतिना कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ,

---

[1] अरण्यप्रतिपदं समादाय, observing rules (प्रतिपद्) of forest life. [2] अरणाविहारिन्, one who leads a quiet and peaceful life.

न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां B 132
काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । तत्रायं प्रव्रजितो बभूव । तत्रानेन दानप्रदानानि दत्तानि, दशवर्षसहस्राणि ब्रह्मचर्यवासः परिपालितः, प्रणिधानं च कृतम्—अनेनाहं कुशलमूलेन चित्तोत्पादेन देयधर्मपरित्यागेन च योऽसौ भगवता काश्यपेन उत्तरो नाम माणवो व्याकृतः—भविष्यसि त्वं माणव वर्षशतायुषि प्रजायां शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इति, तस्याहं शासने प्रव्रज्य अरणाविहारिणामग्रः स्यामिति ॥

* * * कानि कर्माणि कृतानि येन नागेषूपपन्नः ? अप्रहीणत्वात्क्लेशानामुद्भ्रान्तत्वादिन्द्रियाणामपर्यन्तीकृतत्वात्कर्मपथानां शैक्षाशैक्षभिक्षुषु चित्तं प्रदूष्य आशीविषवादेन समुदाचरिताः, तेन नागेषूपपन्नः । यत्तेन दानप्रदानानि दत्तानि, ब्रह्मचर्यवासः परिपालितः, तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्, अरणाविहारिणां चाग्रो निर्दिष्टः । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

९२ स्थविरः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 133
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे । अन्यतमः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता, न प्रसूयते । यावद्भूयस्तयैव सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातः । स प्रथमगर्भो यथावस्थित एव मातुरुदरे । यावत्तस्याः क्रमशो दश

पुत्रा जाताः । स प्रथमगर्भो मातुरुदरस्थ एव । यावदसौ गृहपतिपत्नी ग्लान्यपतिता । सा
उपस्थीयते मूलगण्डपत्रपुष्पफलभैषज्येन । न चासौ व्याधिरुपशमं गच्छति । यदा चास्या
मरणान्तिकी वेदना प्रादुर्भूता नचिरेण कालं करिष्यतीति, तदा तया स्वामी उक्तः—
134 यत्खल्वार्यपुत्र जानीयाः ममात्र प्रथमगर्भोऽवतिष्ठते । यदाहं मृता भवामि, तदा दक्षिणपार्श्वं
शस्त्रेण घातयित्वा ततः प्रथमस्थितं दारकमुद्धरेयाः । इत्युक्त्वा—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥ १ ॥

इत्युक्त्वा कालधर्मेण संयुक्ता ॥

तस्याः कालगतायाः नीलपीतलोहितावदातैर्वस्त्रैः शिबिकामलंकृत्य शीतवनं श्मशानं
नीत्वा जीवको वैद्यराज आहूतः । एष च शब्दो राजगृहे नगरे समन्ततो विसृतः—एव-
ममुकस्त्रिया इयन्ति वर्षाणि गर्भः स्थितः, तस्याश्चान्ये दश पुत्रा जाताः, न चासौ प्रथम-
तरमवस्थितो गर्भो निर्गतः । अथ जीवको वैद्यराजः शस्त्रेण मृताया उदरं घातयित्वा तं
प्रथमस्थितं दारकमुद्धरिष्यतीति । तं शब्दं श्रुत्वा कुतूहलाद्बहूनि प्राणिशतसहस्राणि शीतवन-
श्मशाने संनिपतितानि । पूरणप्रमुखतयश्च षट् शास्तृप्रतिज्ञाः । तत्र भगवानायुष्मन्तमानन्द-
मामन्त्रयते—गच्छ आनन्द, भिक्षूणां कथय, भगवान् श्मशानचारिकां गन्तुकामः, योऽद्भुतानि
B 135 द्रष्टुकामः, स आगच्छत्विति । यावद्भगवानाज्ञातकौण्डिन्यवाष्पमहानामानिरुद्धशारिपुत्र-
मौद्गल्यायनकाश्यपानन्दरैवतप्रभृतिभिर्महाश्रावकैः परिवृतः शीतवनश्मशानं गतः । जन-
कायेन च भगवन्तं दृष्ट्वा विवरं कृतम् । तत्र जीवकेन तस्याः स्त्रिया दक्षिणः कुक्षिः
पाटितः । ततः स्वयमेव निर्गतो वलिपलितचिताङ्गः परिजीर्णशरीरावयवः परिणतेन्द्रियः
कृशोऽल्पस्थामः । निर्गतमात्रश्च तं जनकायमवलोक्य वाचं निश्चारयति स्म—मा भवन्तो
गुरुषु गुरुस्थानीयेषु मातापितृष्वाचार्योपाध्यायेषु खरां वाचं निश्चारयत । मा हैवंविधा-
मवस्थामनुभविष्यथ, यदहमामाशयपक्वाशययोर्मध्ये षष्टिवर्षाण्युषितः । इत्युक्त्वा तूष्णीमव-
स्थितः । तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म—तृप्यत भिक्षवः सर्वभवोपपत्तिभ्यः, तृप्यत
सर्वभवोपपत्त्युपकरणेभ्यः, यत्र नाम चरमभविकस्य सत्त्वस्येयमवस्था । तत्र भगवांस्तं
B 136 दारकमामन्त्रयते—स्थविरकोऽसि दारक ? स्थविरकोऽहं भगवन् । स्थविरकोऽसि दारक ?
स्थविरकोऽस्मि सुगत । स्थविरक इति संज्ञा जाता । ततो भगवता तदधिष्ठाना तथाविधा
धर्मदेशना कृता, या श्रुत्वा संविग्नैर्बहुभिः सत्त्वशतैर्महान् विशेषोऽधिगतः ॥

स च दशवर्षाणि गृहागारमध्यास्य सप्ततिवर्षो भगवच्छासने प्रव्रजितः । गृध्रकूटे
पर्वते पञ्चविंशत्या भिक्षुभिः सार्धं वर्षा उपगतः । तत्र संघस्थविरेण क्रियाकारं कारितः—न
केनचित्पृथग्जनेन प्रवारयितव्यमिति । त्रयाणां मासानामत्ययाच्चतुर्विंशत्या भिक्षुभिरर्हत्त्वं
प्राप्तम् । स्थविर एकः पृथग्जन एव । ततः संघस्थविरेण प्रवारणायां वर्तमानायां शुचङ्ग परिभाष्य
गणमध्यान्निष्कासितः । शय्यामादाय कुटिं प्रविश्य रुदन् बहुविधं परिदेवते । आह च—

आदीप्तं काननं सर्वं पर्वता पि पैलीकृता।[1]
अयेदं पापकं चित्तमद्यापि न विमुच्यते ॥ २ ॥
शान्ता गिरिनदीशब्दाः परीत्तसलिलोदकाः ॥ B 137
अयेदं पापकं चित्तमद्यापि न विमुच्यते ॥ ३ ॥
एते ह्यण्डजाः पक्षिणो विरता मन्दघोषकाः ॥
अयेदं पापकं चित्तमद्यापि न विमुच्यते ॥ ४ ॥
पाण्डुपत्रं वनं ह्येतच्छीर्णपत्रो वनस्पतिः ॥
अयेदं पापकं चित्तमद्यापि न विमुच्यते ॥ ५ ॥
शास्त्रमाराधयिष्यामि को न्वर्थो जीवितेन मे ॥
कथं पृथग्जनो भूत्वा शास्तारमुपसंक्रमे ॥ ६ ॥ इति ॥

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद्बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम्। धर्मता खलु B 138
बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां
त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां पञ्चाङ्गविप्र-
हीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्ग-
कुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समा-
पूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रतिविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य
ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाध-
प्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः।
कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोप-
येयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम्। आह च—

अप्येवातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत् ॥ ७ ॥

यावद्भगवता समन्वाहृत्य ऋद्ध्या चोपसंक्रम्य तथाविधा धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा
आयुष्मता स्थविरकेण इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः
शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन्
संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो B 139
विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविप्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः। सेन्द्रो-
पेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

१ For पर्वता पि पलीकृता, F. W. Thomas suggested to Speyer पर्वताः कपिलीकृताः, on the strength of Tibetan translation. I think प्रदीपिताः would be nearer the text-tradition.

ततः स्थविरोऽर्हत्त्वप्राप्तः समन्वाहर्तुं प्रवृत्तः—ममापि कश्चिद्विनेय इति । पश्यति पञ्चमात्राणि वणिक्शतानि कालिकावातवित्रासितानि अपायाद्व्यसनाभिमुखानि, मया तस्माद्भयात्परित्रातव्यानीति । तेन मम विनेया भविष्यन्तीति । ततः स्थविरकेण ऋद्ध्या गत्वा तस्माद्भयात्परित्राताः । ततः प्रसादजाताः सर्व एव प्रव्रजिताः, मनसिकारश्चैषां दत्तः । तैः सर्वैरेव युज्यमानैर्घटमानैर्व्यायच्छमानैः सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । तेषां च गुणेषु B 140 न कश्चित्प्रत्यक्षः । षड्वर्गिका अवध्यायितुं प्रवृत्ताः—महल्लेन भूत्वा पञ्च सार्धविहारिणां शतानि उपस्थापितानि । एतेऽप्येवमेव विनीता भविष्यन्तीति ॥

तत आयुष्मानानन्दः सब्रह्मचारिवत्सलः परानुग्रहप्रवृत्त आयुष्मन्तं स्थविरकनामानमुद्भावयितुकामो येनायुष्मान् स्थविरनामा तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य आयुष्मता स्थविरेण स्थविरनाम्ना भिक्षुणा सार्धं संमुखं संमोदनीं संरञ्जनीं विविधां कथां व्यतिसार्य एकान्ते निषण्णः । एकान्ते निषण्ण आयुष्मानानन्दः स्थविरं स्थविरकनामानमिदमवोचत्—पृच्छेम वयमायुष्मन्तं स्थविरं स्थविरकनामानं कंचिदेव प्रदेशम्, स चेदवकाशं कुर्याः प्रश्नस्य व्याकरणाय । आयुष्मन् आनन्द, श्रुत्वा ते वेदयिष्ये । अरण्यगतेनायुष्मन् स्थविरभिक्षुणा वृक्षमूलगतेन शून्यागारगतेन कतमे धर्मा अभीक्ष्णं मनसि कर्तव्याः ? आह—अरण्यगतेन आयुष्मन्नानन्द भिक्षुणा वृक्षमूलगतेन शून्यागारगतेन द्वौ धर्मावभीक्ष्णं मनसि कर्तव्यौ—शमथश्च विपश्यना च । शमथः स्थविर आसेवितो भावितो बहुलीकृतः कमर्थं प्रत्यनुभवति ? विपश्यना आसेविता भाविता बहुलीकृता कमर्थं प्रत्यनुभवति ? शमथ आयुष्मन्नानन्द आसेवितो भावितो बहुलीकृतो विपश्यनामागम्य विमुच्यते । विपश्यना आसेविता भाविता बहुलीकृता शमथमागम्य विमुच्यते । शमथविपश्यनापरिभावितमायुष्मन्नानन्द श्रुतवतः आर्यश्रावकस्य B 141 चित्तं धातुशो विमुच्यते । तत्र स्थविर कतमे धातवः ? यश्चायुष्मन्नानन्द प्रहाणधातुः, यश्च विरागधातुः, यश्च निरोधधातुः । कस्य नु स्थविर प्रहाणात्प्रहाणधातुरित्युच्यते ? कस्य विरागाद्विरागधातुरित्युच्यते ? कस्य निरोधान्निरोधधातुरित्युच्यते ? सर्वसंस्काराणामायुष्मन्नानन्द प्रहाणात्प्रहाणधातुरित्युच्यते । सर्वसंस्काराणां विरागाद्विरागधातुरित्युच्यते । सर्वसंस्काराणां निरोधान्निरोधधातुरित्युच्यते ।

अथायुष्मानानन्दः स्थविरस्य स्थविरकनाम्नो भिक्षोर्भाषितमभिनन्द्यानुमोद्य येन पञ्च भिक्षुशतानि तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य पञ्च भिक्षुशतानीदमवोचत्—अरण्यगतेनायुष्मन्तो भिक्षुणा वृक्षमूलगतेन शून्यागारगतेन कतमे धर्मा अभीक्ष्णं मनसि कर्तव्याः ? अरण्यगतेन आयुष्मन्नानन्द भिक्षुणा वृक्षमूलगतेन शून्यागारगतेन द्वौ धर्मावभीक्ष्णं मनसि कर्तव्यौ—शमथश्च विपश्यना च । शमथ आयुष्मन्त आसेवितो भावितो बहुलीकृतः कमर्थं प्रत्यनुभवति ? विपश्यना आसेविता भाविता बहुलीकृता कमर्थं प्रत्यनुभवति ? शमथ आयुष्मन्नानन्द आसेवितो भावितो बहुलीकृतो विपश्यनामागम्य विमुच्यते । विपश्यना आसेविता भाविता बहुलीकृता शमथमागम्य विमुच्यते । शमथविपश्यनापरिभावितमायुष्मन्नानन्द श्रुतवतः

आर्यश्रावकस्य चित्त धातुशो विमुच्यते । तत्र आयुष्मन्त कतमे धातव ? यश्चायुष्मन्नानन्द
प्रहाणधातु, यश्च विरागधातु, यश्च निरोधधातु । कस्य न्वायुष्मन्त प्रहाणात्प्रहाणधातु-
रित्युच्यते ? कस्य विरागाद्विरागधातुरित्युच्यते ? कस्य निरोधान्निरोधधातुरित्युच्यते ? सर्व-
सस्काराणामायुष्मन्नानन्द प्रहाणात्प्रहाणधातुरित्युच्यते । सर्वसस्काराणा विरागाद्विरागधातु- B 142
रित्युच्यते । सर्वसस्काराणा निरोधान्निरोधधातुरित्युच्यते ॥

आयुष्मानानन्द पञ्चाना भिक्षुशताना भाषितमभिनन्द्यानुमोद्य येन भगवांस्तेनोप-
सङ्क्रान्त । उपसङ्क्रम्य भगवत पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्तेऽस्थात् । एकान्तस्थित आयु-
ष्मानानन्दो भगवन्तमिदमवोचत्—अरण्यगतेन भदन्त भिक्षुणा वृक्षमूलगतेन शून्यागारगतेन
कतमे धर्मा अभीक्ष्ण मनसिकर्तव्या ? अरण्यगतेनानन्द भिक्षुणा वृक्षमूलगतेन शून्यागार-
गतेन द्वौ धर्मावभीक्ष्ण मनसि कर्तव्यौ—शमथश्च विपश्यना च । शमथो भदन्त आसेवितो
भावितो बहुलीकृत कमर्थं प्रत्यनुभवति ? विपश्यना आसेविता भाविता बहुलीकृता कमर्थं
प्रत्यनुभवति ? शमथ आनन्द आसेवितो भावितो बहुलीकृतो विपश्यनामागम्य विमुच्यते ।
विपश्यना आसेविता भाविता बहुलीकृता शमथमागम्य विमुच्यते । शमथविपश्यनापरि-
भावितमानन्द श्रुतवत आर्यश्रावकस्य चित्त धातुशो विमुच्यते । तत्र भदन्त कतमे
धातव ? यश्चानन्द प्रहाणधातु, यश्च विरागधातु, यश्च निरोधधातु । कस्य नु भदन्त
प्रहाणात्प्रहाणधातुरित्युच्यते ? कस्य विरागाद्विरागधातुरित्युच्यते ? कस्य निरोधान्निरोध-
धातुरित्युच्यते ? भगवानाह—सर्वसस्काराणामानन्द प्रहाणात्प्रहाणधातुरित्युच्यते । सर्व-
सस्काराणा विरागाद्विरागधातुरित्युच्यते । सर्वसस्काराणा निरोधान्निरोधधातुरित्युच्यते ।
आश्चर्यं भदन्त, यावच्छास्तु श्रावकाणा च अर्थेनार्थ, पदेन पदम्, व्यञ्जनेन व्यञ्जन
सस्यन्दते समेति यदुताग्रपदे । तत्कस्य हेतो ? इहाह भदन्त येन स्थविर स्थविरकनामा
भिक्षुस्तेनोपसङ्क्रान्त । उपसङ्क्रम्य स्थविर स्थविरकनामान भिक्षुमेतमेवार्थमेभि पदैरेभि- B 143
र्व्यञ्जनै प्रश्न पृष्टवान् । तेन मम एष एवार्थ एभि पदैरेभिर्व्यञ्जनै प्रश्न पृष्टेन व्याकृत,
तद्यथैतर्हि भगवता । सोऽहमायुष्मत स्थविरस्य स्थविरनाम्नो भिक्षोर्भाषितमभिनन्द्यानुमोद्य
येन पञ्च भिक्षुशतानि तेनोपसङ्क्रान्त । उपसङ्क्रम्य पञ्च भिक्षुशतान्येतमेवार्थमेभि पदै-
रेभिर्व्यञ्जनै प्रश्न पृष्टवान् । तैरपि मम एष एवार्थ एभि पदैरेभिर्व्यञ्जनै प्रश्न पृष्टैर्व्याकृत,
तद्यथैतर्हि भगवता । तदिद भदन्त आश्चर्यं यावच्छास्तु श्रावकाणा च अर्थेनार्थ पदेन
पद व्यञ्जनेन व्यञ्जन सस्यन्दते समेति यदुताग्रपदे ॥

क पुनस्त्वमानन्द स्थविरक भिक्षु सजानीषा ? स्थविरको भदन्त भिक्षुरर्हन्
क्षीणाश्रव कृतकृत्य कृतकरणीयोऽपहृतभारोऽनुप्राप्तस्वकार्थ परिक्षीणभवसयोजन सम्यगाज्ञा-
सुविमुक्तचित्त । तान्यपि भिक्षुशतानि सर्वाण्यर्हन्ति क्षीणास्रवाणि कृतकृत्यानि कृतकर-
णीयान्यपहृतभाराण्यनुप्राप्तस्वकार्थानि परिक्षीणभवसयोजनानि सम्यगाज्ञासुविमुक्तचित्तानि ॥

यदा भगवता आयुष्मतानन्देन स्थविरकस्ते च भिक्षव उद्भाविताः प्रकाशिताश्च, तदा भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त
B 144 स्थविरकेण कर्माणि कृतान्युपचितानि, येन षष्टिवर्षाणि मातुः कुक्षावुषितः, कानि कर्माणि कृतानि येन घन्धः संवृत्तः परमधन्धः, प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतम्? भगवानाह—स्थविरकेणैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। स्थविरकेण कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ ८॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे। तत्रान्यतरः श्रेष्ठिपुत्रः स्थविरसकाशे प्रव्रजितः। स च स्थविरोऽर्हन्,
B 145 स रागविप्रहीणः। यावत्तत्र देशे पर्व प्रत्युपस्थितम्। ततस्तरुणभिक्षुणा स्थविर उत्थाप्यते—उत्तिष्ठ गोचरग्रामं गमिष्याव इति। स्थविर आह—वत्स अद्यापि प्रग[1] एव, गच्छ तावत्कुशलपक्षं प्रतिजागृहीति। द्विरपि, त्रिरपि तरुणभिक्षुणा स्थविर उत्थाप्यते—उत्तिष्ठ गोचरग्रामं गमिष्याव इति। द्विरपि त्रिरपि स्थविर आह—वत्स, अद्यापि प्रग एव, गच्छ तावत्कुशलपक्षं प्रतिजागृहीति। ततस्तेन तरुणभिक्षुणा आहारगृद्ध्रेण खरं वाक्कर्म
B 146 निश्चारितम्।[2] * * * * * * * ॥ * * * तस्य कर्मणो विपाकेन षष्टिवर्षसहस्राणि मातुः कुक्षावुषितः। यदभूद्धर्ममात्सर्यं तेन दुःप्रज्ञः, कृच्छ्रेणेन्द्रियाणि परिपाचितानि। यदनेन तत्र पठितं स्वाध्यायितं स्कन्धकौशलं प्रतीत्य समुत्पादकौशलं स्थानास्थानकौशलं च कृतम्, तेन मम शासने प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। तस्मात्तर्हि भिक्षवो वाग्दुश्चरितप्रहाणाय व्यायन्तव्यम्। एते दोषा न भविष्यन्ति, ये स्थविरकस्य पृथग्जनभूतस्य। एष एव गुणगणो भविष्यति, यस्तस्यैवार्हत्त्वं प्राप्तस्य। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

१ Mss. कुग एव; so also कनकवर्णावदान, 159. The emendation of Speyer is justifiable as कुग cannot mean early morning. २ The Tibetan translation supplies the gap: मा स्थविर एवं षष्टिवर्षसहस्राणि,

९३ हस्तकः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 147
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। श्रावस्त्यामन्यतमः श्रेष्ठी आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेतः प्रकृतिजातिस्मरश्च। स स्वकं हस्तं गृहीत्वा आलिङ्गते चुम्बति परिष्वजति, वाचं भाषते—अहो बत मे हस्तकौ सुचिरेण लब्धौ, अहो बत मे हस्तकौ सुचिरेण लब्धकाविति। तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति। ज्ञातय ऊचुः—यस्मादयं जातमात्र एव हस्तावालिङ्गते चुम्बति, तस्माद्भवतु दारकस्य हस्तक इति नामेति। हस्तको दारको अष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम्। सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः। आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्। यदा तत्र देशे किंचि- B 148
द्भवति भयम्, तदा स जनकायो भीत इतश्चामुतश्चोद्भ्रान्तो भाण्डं गोपायति। स तु हस्तौ गोपायति, जनकायस्य चैवं कथयति—मा भवन्तो दक्षिणीयेषु चित्तं प्रदूषयत, मा परुषां वाचं भाषयध्वम्, अहो बत मे हस्तकौ सुचिरेण लब्धकौ, अहो बत मे हस्तकौ सुचिरेण लब्धकाविति॥

यावदपरेण समयेन हस्तको जेतवनं गतः। अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। सहदर्शनाद्धानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम्। स प्रसादजातो भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। ततोऽस्य भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा हस्तकेन विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतआपत्तिफलं साक्षात्कृतम्। स दृष्टसत्यो मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः। तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो

B 149 भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः। सोऽर्हत्त्वप्राप्तोऽप्येवमेव भिक्षूणां धर्मं देशयति—मा भवन्तो दक्षिणीयेषु चित्तं प्रदूषयत, मा खरां वाचं निश्चारयत । अहो बत मे हस्तकौ सुचिरेण लब्धकौ, अहो बत मे हस्तकौ सुचिरेण लब्धकाविति ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त हस्तकेन कर्माणि कृतान्युपचितानि येनार्हत्त्वप्राप्तोऽप्येवमेव कथयति—अहो बत मे हस्तकौ सुचिरेण लब्धकौ, अहो बत मे हस्तकौ सुचिरेण लब्धकाविति । भगवानाह—प्रत्यक्षकर्मफलदर्शी भिक्षवोऽयं पुद्गलः । इच्छथ यूयमवधारयितुम् ? एवं भदन्त । हस्तकेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । हस्तकेन कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ॥
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्य-
B 150 सारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । यावत्तत्र द्वौ भिक्षू संशीलिकौ[1] । तत्रैको बहुश्रुतोऽर्हन्, द्वितीयोऽल्पश्रुतः पृथग्जनश्च । तत्र योऽसावर्हन् बहुश्रुतः, स ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां बहूनि च निमन्त्रणकानि प्रतिलभते । स तं संशीलिकभिक्षुं यत्र निमन्त्रितो भवति, तत्र पश्चाच्छ्रमणं नयति । यावदन्यतमस्मिन् दिवसेऽर्हन्निमन्त्रितः । निमन्त्रणकं गन्तुकामस्तं पश्चाच्छ्रमणमागच्छति, न च प्रतिलभते । ततस्तेन तस्यादर्शनादन्यो भिक्षुर्नीतः । यावत्तत्र तरुणभिक्षुभिरौद्धत्याभिप्रायैरेवमुक्तम्—पश्यत भदन्ता
B 151 यावत्तेनायं पश्चाच्छ्रमणोऽद्य न नीतोऽन्यो नीत इति । ततस्तेन क्रोधाभिभूतेनार्हतोऽन्तिके चित्तं प्रदूष्य खरं वाक्कर्म निश्चारितम् । [2]* * * * * * * * * * * * तेन पञ्च जन्मशतान्यहस्तो जातः । यदा आत्मनो विप्रतिसारजातेन अत्ययमत्ययतो देशितं विघृतमुखानीहनम्, तेन हस्तौ प्रतिलब्धौ । यत्पुनस्तेन पठितं स्वाध्यायितं स्कन्धकौशलं धातु-

१ The usual reading in Mss. is संशीलिक which Speyer has emended into सांशीलिक, comrade or friend. २ The harsh word of the monk as well as the usual beginning of the next para are lost.

कौशलमायतनकौशलं प्रतीत्य समुत्पादकौशलं च कृतम्, तेन मम शासने प्रव्रज्य सर्वक्लेश-प्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

९४ लेकुञ्चिकः।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्यय-भैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। B 152

श्रावस्त्यामन्यतमो ब्राह्मण आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधन-समुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी। तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता। दारको जातो दुर्वर्णो दुर्दर्शनोऽवहोडिमकः[1]। जातमात्रस्य चास्य मातुः स्तनाभ्यां क्षीरमन्तर्हितम्। यावत्तेन ब्राह्मणेन तस्यान्या धात्री आनीता। तस्या अपि क्षीरमन्तर्हितम्। तस्य दारकस्य कर्मविपाकतः। यदास्य क्षीरसंभवः सर्वैरप्युपायैर्न संभवति, तदासौ लेह्येनोद्धृतः। तस्य लेकुञ्चिक इति नामधेयं कृतम्। B 153
सोऽल्पेशाख्योऽल्पपुण्यश्च॥

यदा महान् संवृत्तस्तदा उदरपूरणमपि नासादयति। पश्यति च भिक्षून् मुनि-वसितान् सुप्रावृतान् भ्रमरसदृशानि पात्राणि गृहीत्वा श्रावस्तीं पिण्डाय प्रविशतः। तांश्च पूर्णहस्तान् पूर्णपात्रान् प्रतिनिष्क्रामतः। तस्य दृष्ट्वा भगवच्छासने प्रव्रज्याभिलाष उत्पन्नः। स मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितोऽप्युदरपूरणं नासादयति। तेन तेनैव संवेगेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविन्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कार-पराङ्मुखः। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः॥

[1] Speyer corrected अवहोडिमक occurring in the story of जाम्बाल (No 50) into अवघोटिमक, lowest or deformed. Here he retains the reading as found in Mss., as it is also found in रत्नावदान No 21.

यावदसावपरेण समयेन भगवतो गन्धकुटीं संमार्जितुं प्रवृत्तः । स तां संमृज्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं पिण्डाय प्राविक्षत् । ततस्तेन प्रभूतः प्रणीतश्च पिण्डपात आसादितः, येनास्य संतर्पितानीन्द्रियाणि महाभूतानि । ततस्तेन संतर्पितेन्द्रियेण कृत्स्ना B 154 रात्रिर्ध्यानविमोक्षसमापत्तिभिरतिनामिता । ततोऽस्य बुद्धिरुत्पन्ना—शोभनोऽयमुपायो यन्न्वहं भिक्षुसंघं विज्ञापयेयमिति । तेन सर्व एव भिक्षुसंघो विज्ञापितः—अहं भदन्त अल्पपुण्यो यदा गन्धकुटीं संमृज्य पिण्डपातं प्रविशामि, तदा तृप्तिं लभे । तन्मे संघः कारुण्यं करोतु, नान्येन भगवतो गन्धकुटी संमार्ष्टव्येति[1] । ततः संघेन क्रियाकारः कृतः—न केनचिद्भगवतो गन्धकुटी संमार्ष्टव्येति । स विस्रब्धो गन्धकुटीं संमृज्य पश्चाच्छ्रावस्तीं पिण्डाय प्रविशति ॥

तस्मिंश्च समये आयुष्मांच्छारद्वतीपुत्रः पञ्चशतपरिवारो जनपदे वर्षोषितः श्रावस्त्यामभ्यागतः । ततः शास्तुर्गौरवजातो गन्धकुटीं संमार्ष्टुमारब्धः । स आयुष्मता लेकुञ्चिकेन लक्षितः । तेनोच्यते—स्थविर उदरे मम प्रहारो दत्तः, यत्ते गन्धकुटी संमृष्टेति । स्थविरः प्राह—कथमिति ? लेकुञ्चिकः कथयति—स्थविर, यदाहं गन्धकुटीं न संमार्जितवांस्तदा पिण्डपातं नासादयामीति । ततः स्थविरशारिपुत्रेणोक्तम्—यद्येवमहमन्यत्र निमन्त्रितः । अल्पोत्सुकस्त्वं भव । अहं तत्र तुभ्यं पिण्डपातं दास्यामीति । ततः स्थविरशारिपुत्रः पञ्चशतपरिवारो निमन्त्रणकं प्रस्थितः । लेकुञ्चिकोऽपि तेनैव सार्धं संप्रस्थितः । यदा गृहपतेर्गृह- B 155 समीपं गतस्तदा लेकुञ्चिकस्य कर्मविपाकेन तस्मिन् गृहे महान् कलहः समुत्पन्नः । तत आयुष्मतो लेकुञ्चिकस्यैतदभवत्—ममाल्पपुण्यतया तत्र कलहो जात इति । ततः प्रतिनिवृत्य विहारं गत्वा भक्तच्छेदमकरोत् । ततो द्वितीये दिवसे स्थविरशारिपुत्रेणोच्यते—किमर्थं त्वं न गत इति । तेनोक्तम्—स्थविरेण नावगतम्—ममाल्पपुण्यतया यादृशस्तत्र कलहो जात इति । ततः स्थविरशारिपुत्रेणान्यत्र दिवसे तं पुरस्कृत्य तद्गृहं प्रवेशितः । संघमध्ये चोपविष्टस्य सतः प्रदक्षिणश्चाहारो दीयते । तत्र परिवेषकजनो विस्मरति । तेन संघमध्ये द्वितीयो भक्तच्छेदः कृतः ॥

यावदियं प्रवृत्तिः स्थविरानन्देन श्रुता । श्रुत्वा च लेकुञ्चिकमुवाच—तेन हि त्वमिहैव जेतवने तिष्ठ, अहं ते पिण्डपातमानेष्यामीति । स्थविरानन्दस्यैवंविधा स्मृतिः । यदा भगवतोऽन्तिकाद्दशानिर्धर्मस्कन्धसहस्राण्युद्गृहीतानि [2] * * * । लेकुञ्चिकस्य च धर्मावरणेन स्थविरानन्देन विस्मृतम् । तत्रानेन तृतीयो भक्तच्छेदः कृतः । चतुर्थे दिवसे स्थविरानन्देनास्थां कृत्वा पिण्डपातो दत्तः । सोऽपि निर्गच्छतः काकैरपहृतः । तत्रानेन चतुर्थो भक्तच्छेदः कृतः ॥

---

[1] Mss. संमाष्टव्या for संमार्ष्टव्या by metathesis. [2] The gap probably refers to the inability of other monks to master as quickly as स्थविरानन्द does.

पञ्चमे दिवसे स्थविरमौद्गल्यायनेन श्रुत्वा लेकुञ्चिकस्यार्थाय पिण्डपातं गृहीत्वा B 156
ऋद्ध्या संप्रस्थितम्। लेकुञ्चिकस्य कर्मविपाकेन सुपर्णिना पक्षिराजेन पक्षैः पराहत्य महासमुद्रे पातितः। तत्रानेन पञ्चमो भक्तच्छेदः कृतः॥

षष्ठे दिवसे शारिपुत्रेण श्रुतम्। तस्यैतदभवत्—यन्न्वहं लेकुञ्चिकस्य पिण्डपातं.... ....लेकुञ्चिकस्य कुटिकाद्वारेऽवस्थितः। ततो लेकुञ्चिकस्य कर्मविपाकेन तदपि द्वारं शिलाभिरावृत्तम्। ततः शारिपुत्रेण ऋद्ध्या मोक्ष्यामीति तत्पात्रं पृथिव्यां स्थापितम्। तदपि लेकुञ्चिकस्य कर्मविपाकेन। अथाशीतिषु योजनसहस्रेषु काञ्चनमय्यां पृथिव्यामवस्थितम्। ततोऽपि स्थविरशारिपुत्रेण ऋद्ध्या समुद्धृत्य तत्पिण्डकं मुखद्वारक्षेपिते पिण्डपाते तस्य कर्मावरणेन तन्मुखमेकघनं संवृत्तम्। तत आयुष्माञ्छारिपुत्रो लेकुञ्चिकस्याभव्यतां ज्ञात्वा संविग्नः। तेन च भदन्तेन षड् भक्तच्छेदाः कृताः॥

ततः सप्तमे दिवसे आयुष्माँल्लेकुञ्चिकः सत्त्वानामुद्वेजनार्थं कर्मणां चाविप्रणाश- B 157
संदर्शनार्थं कर्मबलोद्भावनार्थं च भस्मना पात्रं पूरयित्वा बुद्धप्रमुखस्य भिक्षुसंघस्य पुरस्तान्निषद्य उदकेनालोड्य पीत्वा निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः। तमभिवीक्ष्य भिक्षवः संविग्नाः तस्य शरीरे शरीरपूजां कृत्वा संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त लेकुञ्चिकेन कर्माणि कृतानि, येनार्हत्वप्राप्तोऽपि षड् भक्तच्छेदान् कृत्वा सप्तमे दिवसे निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृत इति। भगवानाह—लेकुञ्चिकेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। लेकुञ्चिकेन कर्माणि कृतानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यामन्यतमा गृहपतिपत्नी श्राद्धा भद्रा
कल्याणाशया। सा अभीक्ष्णं श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकयाचनकेभ्यो दानानि ददाति। B 158
तस्या अपरेण समयेन भर्ता कालगतः। यावदस्याः पुत्रः स्वगृहे स्वामी संवृत्तः। स च मत्सरी कुटुकुञ्चकः आगृहीतपरिष्कारः काकाय बलिं न प्रदातुं व्यवस्यति। स श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकान् दृष्ट्वा चित्तं प्रदूषयति। तस्य माता तेनैव पूर्वक्रमेण श्रमणब्राह्मणकृपणवनीपकेभ्यो दानप्रदानान्यनुप्रयच्छति। तस्याः पुत्रो मात्सर्याभिभूतः कथयति—अम्ब न मे रोचते। मा दानमनुप्रयच्छेति। सा कथयति—पुत्रक इह कुले एष कुलधर्म इति।

---

1 The gap refers to शारिपुत्र desiring to bring some alms to लेकुञ्चिक, collected them, and to offer the same, approached the hut of लेकुञ्चिक.

ततस्तेन पृथग्भक्तेन स्थापिता । तयाप्यसावुपार्धोदानमनुप्रयच्छति, उपार्धमात्मना परिभुङ्क्ते ।
ततस्तेन मात्सर्याभिभूतेन क्रोधेनावृतबुद्धिना भूयो निवार्यत एव । यदा सर्वावस्थायां न
शक्नोति वारयितुम्, तदा मातरमुवाच—अम्ब किंचित्करणीयमस्ति, अववरकं[1] प्रविशेति । सा
ऋजुस्वभावतया अववरकं प्रविष्टा । ततस्तेन द्वारं बद्ध्वा एकं भक्तच्छेदं कारिता । सा
B 159 कथयति—पुत्र बुभुक्षितास्मीति । ततस्तेन खरं वाक्कर्म निश्चारितम्—भस्म खादेति । यावत्तेनासौ
कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्ता सकरुणकरुणं विक्रोशमाना षड् भक्तच्छेदान् कारिता, तथापि न
प्रतिमुक्ता । कालगता । तदास्य मात्सर्येणावृतस्य मातृवियोगाद्विप्रतिसारो जातः ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन गृहपतिपुत्रः, अयं
स लेकुञ्चिकः । यदनेन मातुरपकारः कृतस्तस्य कर्मणो विपाकेन कल्पमवीचौ महानरक
उत्पन्नः । तेनैव हेतुना इदानीमप्यर्हत्त्वप्राप्तः षड् भक्तच्छेदान् कृत्वा भस्मादनाहार एव परि-
निर्वृतः । अन्यान्यपि भिक्षवो लेकुञ्चिकेन कर्माणि कृतान्युपचितानि । भूतपूर्वं भिक्षवोऽ-
तीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यामन्यतमो ब्राह्मणो देवतार्चिकः सर्वेषां वाराणसेयानां ब्राह्मणगृह-
पतीनां सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितोऽभिमतश्च सर्वजनस्य । धर्मता चैषा यदसति
बुद्धानामुत्पादे प्रत्येकबुद्धा लोक उत्पद्यन्ते हीनदीनानुकम्पकाः प्रान्तशयनासनभक्ता एक-
दक्षिणीया लोकस्य । यावदन्यतमः प्रत्येकबुद्धो वाराणसीं पिण्डाय प्रविष्टः । स च तत्र
पूर्णहस्तः पूर्णपात्रो निर्गच्छति । तेन ब्राह्मणेन दृष्टः । तस्य मात्सर्यमुत्पन्नम् । कथयति—
B 160 आनय यावत्पात्रं पश्यामीति । असमन्वाहृत्य च श्रावकप्रत्येकबुद्धानां ज्ञानदर्शनं न प्रवर्तत
इति । तेन भदन्तेनोपनामितम् । ततस्तेन पृथिव्यामुत्सृज्य पादेनाभिमृदितम् । ततस्तेन
प्रत्येकबुद्धेन भक्तच्छेदः कृतः । न च तस्य ब्राह्मणस्य विप्रतिसारो जातः ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ ब्राह्मणः, अयमेवासौ लेकुञ्चिकः । भूयः काश्यपे भगवति
प्रव्रजितो बभूव । तत्रानेन ब्रह्मचर्यवासः परिपालितः । तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति
हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानां कर्मणामेकान्त-
शुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यति-
मिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

९५ संसारः ।

B 161 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किंनरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिंनर-
महोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लान-

1 अपवरक, inner or subterrenean room.

प्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । श्रावस्त्यामन्यतमो गृहपतिराढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेतः । स जातमात्र एव गृहमवलोक्य वाचं निश्चारयति स्म—दुःखो भवन्तः[1] संसारः, परमदुःखः संसारः । इत्युक्त्वा तूष्णीमवस्थितः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः—यस्मादयं जातमात्र एव संसार इति घोषयति, तस्माद्भवतु दारकस्य संसार इति नामेति । संसारो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन B 182 सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् ॥

यदा संसारो दारकः क्रमेण महान् संवृत्तः, स प्रकृतिजातिस्मरत्वाच्च जनकायस्य धर्मं देशयति—मा भवन्तो गुरुषु गुरुस्थानीयेषु मातापितृष्वाचार्योपाध्यायेषु वा खरवाचं निश्चारयत । दुःखं संसार इति । यावदपरेण समयेन इतश्चामुतश्च परिभ्रमञ्जेतवनं निर्गतः । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाच्चानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम् । प्रसादजातो भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । तस्मै भगवता संसारवैराग्यिकी धर्मदेशना कृता, यां श्रुत्वा संसारो दारकः संसारे दोषदर्शी भूत्वा मातापितरावनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो B 183 वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः । सोऽर्हत्त्वप्राप्तोऽपि भिक्षूणां धर्मं देशयति—मा आयुष्मन्तो गुरुषु गुरुस्थानीयेषु मातापितृष्वाचार्योपाध्यायेषु खरवाचं निश्चारयत । दुःखं संसारः, परमदुःखं संसार इति ।[2] .... ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त संसारेण कर्माणि कृतान्युपचितानि, येन पञ्चजन्मशतानि मृतकुणप एव मातुः कुक्षेर्निर्गतः ? प्रव्रज्य

१ Mss. भदन्त for भवन्तः. २ The gap is also found in Tibetan translation.

चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति । भगवानाह—संसारेणैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । संसारेण कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां
B 164 काश्यपो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि, विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान् । स वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । वाराणस्यां नगर्यामन्यतमः श्रेष्ठिपुत्रः स्थविरसकाशे प्रव्रजितः । स च स्थविरोऽर्हन्, स रागविप्रहीणः । यावत्तत्र देशे पर्व समुपस्थितम् । ततस्तरुणभिक्षुणा स्थविर उत्थाप्यते—उत्तिष्ठ गोचरग्रामं गमिष्याव इति । स्थविर आह—वत्स अद्यापि प्रातरेव, गच्छ तावत्कुशलपक्षं प्रतिजागृहीति । द्विरपि त्रिरपि तरुणभिक्षुणा स्थविर उत्थाप्यते—उत्तिष्ठ गोचरग्रामं गमिष्याव इति । द्विरपि त्रिरपि स्थविर आह—वत्स अद्यापि प्रातरेव, गच्छ तावत्कुशलपक्षं प्रतिजागृहीति । ततस्तेन तरुणभिक्षुणा रसगृध्रेण खरं वाक्कर्म निश्चारितम्—मा त्वं पञ्चभिरपि जन्मशतैर्जीवः कोशान्निर्गच्छ, एषोऽहं निर्गत इति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन तरुणभिक्षुः, अयं
B 165 संसारः । यदनेनार्हतोऽन्तिके चित्तं प्रदूष्य खरं वाक्कर्म निश्चारितम्, तस्य कर्मणो विपाकेन पञ्च जन्मशतानि मृतकुणप एव मातुः कुक्षेर्निर्गतः । निर्गतेषु पञ्चसु जन्मशतेषु इदानीमनेन मनुष्यत्वमासादितम् । ततस्तत्स्मृत्वा कथयति—दुःखं संसारः, परमदुःखं संसार इति । यदनेन विप्रतिसारजातेन स्थविरस्यात्ययो देशितः, ब्रह्मचर्यवासश्च परिपालितः, तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

१ The reading in Mss. is जीर्णकाया निर्गच्छ which Speyer thinks must have originally been कोशात्,

९६ गुप्तिकः ।

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः B 166
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । यदा भगवता स्तवकर्णिकनिमन्त्रितेन सौपारके नगरे महाजनविनेयाकर्षणं कृतम्, तदा सर्वः सौपारकनिवासी जनकायो बुद्धनिम्नो धर्मप्रवणः संघप्राग्भारो व्यवस्थितः ॥

सौपारके नगरेऽन्यतमो गृहपतिराढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातः । जातमात्रस्य सर्वशरीरं B 167
पिटकैः स्फुटं संवृत्तम् । यदा ते पिटकाः स्फुटिताः, तदा एकघनो मांसपिण्डः संस्थितः । पूयशोणितं चास्य शरीरात्प्रघरन्महद्दौर्गन्ध्यं जनयति । ततोऽस्य पिता ऐश्वर्यबलाधानेन द्रव्यमन्त्रौषधिपरिचारकसमेतः स्वयमेवारब्धश्चिकित्सां कर्तुम्, न चासौ व्याधिरुपशमं गच्छति कर्मबलाधानप्राप्तत्वात् । स स्वशरीरं तथा विक्षतमपत्राप्य परिगृहीतं वस्त्रैर्गोपायति । तस्य गुप्तिक इति नाम कृतम् । यावद्गुप्तिको दारको महान् संवृत्तस्तस्य वयस्यकाः सहजातकाः श्रावस्त्याः सौपारकनगरमनुप्राप्ताः । ततस्तैः पितुरस्य कथ्यते—तात यद्येष श्रावस्तीं नीयते, शक्येतास्माद्व्याधेः परिमोचयितुम्, यस्मात्तत्र सन्ति वैद्यभैषजादयः सुलभा इति ॥

ततः पित्रा तद्वचनमुपश्रुत्य प्रभूतानि रत्नानि परिचारकांश्च दत्त्वा श्रावस्तीमनुप्रेषितः । सोऽनुपूर्वेण वयस्यकसहायः श्रावस्तीमनुप्राप्तः । तत्राप्यस्य कर्मजो व्याधिः सत्यपि वैद्यद्रव्यौषधिपरिचारकबाहुल्ये न शक्यते चिकित्सितुम् । यावदसौ अपरेण समयेन जेतवनं निर्गतः । अथासौ ददर्श बुद्धं भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् । सहदर्शनाधानेन भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसादितम् । प्रसादजातो भगवतः पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय । तस्मै भगवता आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा पञ्चोपादानस्कन्धा रोगतो गण्डतः शल्यतोऽघतोऽनित्यतो दुःखतः B 168
शून्यतोऽनात्मतश्च देशिताः । स संस्कारानित्यतां विदित्वा भगवच्छासने प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा

---

१ The name of this famous sea-port in western India is variously spelt as शूर्पारक, सूर्पारक, सुपारग and सुपारक. Speyer adopts सौपारक because one of his best Mss. uniformly uses this term. २ कर्मतः according to sinful acts done in the previous life.

सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः । तेऽप्यस्य सहजातकास्तेनैव संवेगेन प्रव्रजिताः ॥

B 169 ते येनायुष्मान् गुप्तिकस्तेनोपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्यायुष्मन्तं गुप्तिकमिदमवोचन्—किमायुष्मन् गुप्तिक प्रलोपधर्मं, किं वा अत्र लोकेऽप्रलोपधर्मं ? रूपमायुष्मन्तः प्रलोपधर्मं । तस्य निरोधान्निर्वाणमप्रलोपधर्मं । वेदना संज्ञा संस्कारा विज्ञानमायुष्मन्तः प्रलोपधर्मं । तस्य निरोधान्निर्वाणमप्रलोपधर्मं । किं मन्यध्वे आयुष्मन्तः—रूपं नित्यं वा अनित्यं वा ? अनित्यमिदमायुष्मन् गुप्तिक । यत्पुनरनित्यं दुःखं वा तन्न वा, दुःखम् ? दुःखमिदमायुष्मन् गुप्तिक । यत्पुनरनित्यं दुःखं विपरिणामधर्मं, सत्यमपि तच्छ्रुतवानार्यश्रावक आत्मत उपगच्छेदेतन्मम, एषोऽहमस्मि, एष मे आत्मेत्येवमेतत् ? नो आयुष्मन् गुप्तिक । किं मन्यध्वे आयुष्मन्तः—वेदना संज्ञा संस्कारा विज्ञानं नित्यं वा अनित्यं वा ? अनित्यमिदमायुष्मन् गुप्तिक । यत्पुनरनित्यं दुःखं विपरिणामधर्मं, अपि तच्छ्रुतवानार्यश्रावक आत्मत उपगच्छेद्—एतन्मम, एषोऽहमस्मि, एष मे आत्मेति ? नो आयुष्मन् गुप्तिक । तस्मात्तर्हि आयुष्मन्तो यत्किंचिद्रूपमतीतानागतप्रत्युत्पन्नमाध्यात्मिकं वा बाह्यं वा औदारिकं वा सूक्ष्मं वा हीनं वा प्रणीतं वा, यद्वा दूरे, यद्वान्तिके, तत्सर्वं नैतन्मम, नैषोऽहमस्मि, नैष मे आत्मेत्येवमेतद्यथाभूतं सम्यक् प्रज्ञया द्रष्टव्यम् । या काचिद्वेदना संज्ञा संस्काराः, यत्किंचिद्विज्ञानमतीतानागत-
B 170 प्रत्युत्पन्नमाध्यात्मिकं वा बाह्यं वा औदारिकं वा सूक्ष्मं वा हीनं वा प्रणीतं वा, यद्वा दूरे यद्वान्तिके, तत्सर्वं नैतन्मम, नैषोऽहमस्मि, नैष मे आत्मेत्येवमेतद्यथाभूतं सम्यक्प्रज्ञया द्रष्टव्यम् । एवंदर्शी आयुष्मन्तः श्रुतवानार्यश्रावको रूपादपि निर्विद्यते, वेदनायाः संज्ञायाः संस्कारेभ्यो विज्ञानादपि । निर्विण्णो विरज्यते, विरक्तो विमुच्यते । विमुक्तस्यैवं ज्ञानदर्शनं भवति—क्षीणा मे जातिः, उषितं ब्रह्मचर्यम्, कृतं करणीयम् । नापरमस्मादित्थं प्रजानामीति ॥

अस्मिन् खलु धर्मपर्याये भाष्यमाणे तेषां सहजातकानां विरजो विगतमलं धर्मेषु धर्मचक्षुरुत्पन्नम् । भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त गुप्तिकेन कर्माणि कृतानि, येनास्य शरीरमेवं बीभत्सव्याधिबहुलं दुर्गन्धं संवृत्तम् । किं कर्म कृतं येन तीक्ष्णनिशितबुद्धिः संवृत्तः, प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति । भगवानाह—गुप्तिकेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । गुप्तिकेन कर्माणि कृतान्युपचितानि ।

---

1 The passage is copied more or less from Pali as in Mahāvagga.

९६ गुप्तिकः।

कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यामन्यतमः श्रेष्ठी। स द्वितीयश्रेष्ठिना सार्धं विरुद्धः। ततस्तेन राजा प्रभूतं धनं दत्त्वा विज्ञापितः—देव अयं श्रेष्ठी अपराधिकः, B 171
क्रियतामस्य दण्डनिग्रह इति। ततो राज्ञा तस्यैवानुज्ञातः। तेनासौ स्वगृहमानीय लताभि-
स्ताडितः। ततो रुधिरावसिक्तशरीरस्य प्रभूतं तीक्ष्णं च विषचूर्णं दत्त्वोक्तम्, येनास्य
तच्छरीरमेकघनं मांसपिण्डवदवस्थितम्। ततस्तस्य श्रेष्ठिनो वयस्यैः श्रुतम्—यथा तेनैवंविधं
कर्म कृतमिति। ततस्तैः समेतैर्भूत्वा [1] ** यैरुपकरणविशेषैस्तस्माद्व्याधेः परिमोचितः।
ततोऽसौ तेनैव च संवेगेन गृहान्निष्क्रम्य प्रव्रजितः। तेन अनाचार्यकेण सप्तत्रिंशद्बोधि-
पक्ष्यान् धर्मान् भावयित्वा प्रत्येका बोधिः साक्षात्कृता। ततोऽस्य चित्तमुत्पन्नम्—यन्ननेन
श्रेष्ठिना मत्संतापादपुण्यं प्रसूतम्। यन्न्वहमेनं गत्वा संवेजयेयमिति। ततस्तस्याग्रतो गत्वा
उपरि विहायसमभ्युद्गम्य विचित्राणि प्रातिहार्याणि विदर्शयितुमारब्धः। आशु पृथग्जना- B 172
नामृद्धिरावर्जनकरी। स मूलनिकृत्त इव द्रुमः पादयोर्निपत्य कृतकरपुटो भगवन्तं विज्ञाप-
यति—अवतर, अवतर महादक्षिणीय, कृतापराधोऽहं तवान्तिके, त्वामेव निश्रित्य पुनः
प्रत्युपस्थास्यामीति। तेनासौ प्रत्येकबुद्धः क्षमापयित्वा पिण्डकेन प्रतिपाद्य पटेनाच्छादितः।
प्रणिधानं च कृतम्—यन्मया क्रोधाभिभूतेन तवापराधः कृतः, मा अस्य कर्मणो विपाकं
प्रत्यनुभवेयम्। यन्मया सत्कारः कृतः, अनेनैवंविधानां गुणानां लाभी स्याम्, प्रतिविशिष्टतरं
चातः शास्तारमारागयेयमिति॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन श्रेष्ठी आसीत्, अयं
स गुप्तिकः। तस्य कर्मणः प्रभावात्पञ्च जन्मशतानि कशाभिस्ताड्यमानः कालं कृतवान्।
तेनैव हेतुना अयमेवंविध आश्रय आसादितः। भूयः काश्यपे भगवति सहजातैर्वयस्यैः
सार्धं प्रव्रजित आसीत्। तत्रैभिर्ब्रह्मचर्यवासः परिपालितः। तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्।
इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः,
व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि
च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

1 The gap may be filled by [illegible].

९७ विरूपः ।

B 173 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहो-
रगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्यय-
भैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डदस्यारामे ।
*[1] * * अन्यतमो गृहपतिराढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवण-
धनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं
क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा
संवृत्ता । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातः । जातमात्रस्य
सर्वशरीरं विकृतिस्फुटं प्रवृत्तम् । दुर्वर्णो दुर्दर्शनोऽष्टादशभिर्दोषवर्णकैः समन्वागतः स
B 174 दारको भूतः । तस्य मातापितरौ सर्वाङ्गं दुर्वर्णं दुर्दर्शनं विकृतरूपं दृष्ट्वा चिन्तापरौ
व्यवस्थितौ । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं नाम भवतु दारकस्य?
ज्ञातय ऊचुः—यस्मादयं जातमात्र एवं विकृतरूपः, तस्माद्भवतु दारकस्य विरूप इति नाम ॥

यदा महान् संवृत्तस्तदा तस्य लज्जया महान् संकोचो जातः । कुत्रान्यत्र गमि-
ष्यामि, [illegible] तिष्ठामि, इति विचार्य सुजीर्णोद्यानं जगाम । अथ भगवान् महाश्रावकपरिवृतः
सुजीर्णोद्यानं गतः । स भगवन्तं दृष्ट्वा जेह्रीयमाण इतश्चामुतश्च पलायितुमारब्धः । ततो
भगवता ऋद्ध्या तथाधिष्ठितो यन्न शक्नोति पलायितुम् । ततो भगवान् सह श्रावकैर्निरोध-
समापत्तिं समापन्नः । ततो निरोधाद्व्युत्थाय विरूपमात्मानं निर्मितवान् । निर्माय शरावं
भोजनपूर्णमादाय विरूपमागतं दृष्ट्वा हर्षजात आमन्त्रितवान्—एहि सहायक, कुत आगमिष्यते,
तिष्ठ, उभावपि सहितौ वत्स्याव इति । ततोऽस्य भगवता भोजनं दत्तम् । प्रीणितेन्द्रियश्च
संवृत्तः । ततो भगवता आत्मा स्ववेषेण स्थापितः । ततो विरूपो बुद्धं भगवन्तं दृष्ट्वा कथ-
B 175 यति—अभिरूपतरस्त्वमिदानीं संवृत्तः । कस्य कर्मणः प्रभावादिति । भगवानाह—विद्या मे
अस्ति चित्तप्रसादजननी नाम्ना, तस्या एष प्रभाव इति । ततस्तेन भगवतोऽन्तिके चित्तं
प्रसादितम्, तेषां च महाश्रावकाणामार्यसमापन्नानाम् । ततोऽस्य लक्ष्मीः प्रादुर्भूता ।
प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त विरूपेण कर्माणि कृतानि, येनैवं दुर्वर्णो दुर्दर्शनोऽष्टादशभिर्वैवर्णिकदोषैः समन्वागतः । प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति । भगवानाह—विरूपेणैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि ।

---

1 The name of the town is wanting in Mss. Tibatan translation gives no help.

विरूपेणैव कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि पुष्यो नाम सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। B 176
सोऽपरेण समयेनान्यतमां राजधानीमुपनिश्रित्य विहरति। अथ पुष्यः सम्यक्संबुद्धः समन्वाहर्तुं प्रवृत्तः। पश्यति तस्मिन् काले द्वौ बोधिसत्त्वौ संनिकृष्टौ—भगवाञ्छाक्यमुनिर्मैत्रेयश्च। मैत्रेयस्य स्वसंततिः परिपक्वा, शास्तुर्वैनेया अपरिपक्वाः। शाक्यमुनेस्तु स्वसंततिरपरिपक्वा, वैनेयाः परिपक्वाः। अथ पुष्यः सम्यक्संबुद्धः शाक्यमुनेर्बोधिसत्त्वस्य संततिपरिपाचनार्थं हिमवन्तं पर्वतमभिरुह्य रत्नगुहां प्रविश्य पर्यङ्कं बद्ध्वा तेजोधातुं समापन्नः। तस्मिंश्च काले शाक्यमुनिर्बोधिसत्त्वः फलमूलानामर्थे हिमवन्तं पर्वतमभिरूढः। स इतस्ततश्चङ्क्रम्यमाणो ददर्श पुष्यं सम्यक्संबुद्धं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजितगात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम्। तद्दर्शनाच्चानेन तथाविधं चित्तसमाधानं समासादितम्, यदेकपादेन सप्त रात्रिंदिवानि एकया गाथया स्तुतवान्—

न दिवि भुवि वा नास्मिंल्लोके न वैश्रवणालये
न मरुभवने[1] दिव्ये स्थाने न दिक्षु विदिक्षु वा।
चरतु वसुधां स्फीतां कृत्स्नां सपर्वतकाननां
पुरुषवृषभास्त्यन्यस्तुल्यो महाश्रमणस्तव॥ २॥

अथ पुष्यः सम्यक्संबुद्धः परिपक्वसंततिं शाक्यमुनिं बोधिसत्त्वं दृष्ट्वा साधुकारमदात्—साधु साधु सत्पुरुष। B 177

अनेन वलवीर्येण संपन्नेन द्विजोत्तम।
नव कल्पाः परावृत्ताः संस्तुत्वाथ तथागतम्॥ ३॥

ततो भगवान् महेशाख्याभिर्देवताभिः परिवृतः तस्यां गुहायां स्थितः। तत्र गुहानिवासिनी देवता अल्पेशाख्यत्वान्न शक्नोति तां गुहां समभिरोढुम्। ततो निश्चलनयना भूत्वा भगवन्तं भीषयते। यदा सुचिरमपि भीषयमाणा न शक्नोति भगवतोऽपकारं कर्तुम्, तदा तया प्रसादो लब्धः—शोभनोऽयमृषिः सिद्धव्रतश्चेति। ततः सा उदारं रूपमभिनिर्माय भगवतः पादयोर्निपत्य क्षमापयित्वा पिण्डकेन प्रतिपादितवती॥

[1] मरुभवने, in the dwellings of gods (मरु = मरुतः).

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन गुहानिवासिनी देवता बभूव, अयं विरूपः सः । तस्य कर्मणो विपाकेन संसारेऽनन्तं दुःखमनुभूतवान् । B 178 इदानीमपि तेनैव हेतुना विरूपः संवृत्तः । यदनेन पश्चाच्चित्तं प्रसादितम्, तेनास्य अपगता अलक्ष्मीः, लक्ष्मीः प्रादुर्भूता । प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

९८ गङ्गिकः ।

B 179 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः वाराणसीं नगरीमुपनिश्रित्य विहरति ऋषिपतने मृगदावे । वाराणस्यामन्यतमो गृहपतिराढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतो न पुत्रो न दुहिता । स करे कपोलं दत्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः—अनेकधनसमुदितं मे गृहम्, न मे पुत्रो न दुहिता । ममात्ययात्सर्वस्वापतेयमपुत्रकमिति कृत्वा राजविधेयं भविष्यतीति । स श्रमणब्राह्मणनैमित्तिकसुहृत्संबन्धिबान्धवैरुच्यते—देवताराधनं कुरुष्वेति । सोऽपुत्रः पुत्राभिनन्दी शिववरुणकुबेरशक्रब्रह्मादीनन्यांश्च देवताविशेषानायाचते । तद्यथा—आरामदेवताश्चत्वरदेवताः शृङ्गाटकदेवताः । सहजाः सहधार्मिका नित्यानुबद्धा अपि देवता आयाचते स्म । अस्ति चैष लोके प्रवादो यदायाचनहेतोः पुत्रा जायन्ते दुहितरश्चेति । तच्च नैवम् । यद्येवमभविष्यदेकैकस्य B 180 पुत्रसहस्रमभविष्यत्तद्यथा राज्ञश्चक्रवर्तिनः । अपि [illegible] त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च । कतमेषां त्रयाणाम्[1] मातापितरौ रक्तौ भवतः संनिपतितौ, माता च कल्या भवति ऋतुमती, गन्धर्वश्च प्रत्युपस्थितो भवति । एषां त्रयाणां स्थानानां संमुखीभावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्चेति ॥

स चैवमायाचनपरस्तिष्ठति । अन्यतमश्च सत्त्वोऽन्यतमस्मात्सत्त्वनिकायाच्च्युत्वा तस्य प्रजापत्याः कुक्षिमवक्रान्तः । पञ्चावेणिका धर्मा एकत्ये पण्डितजातीये मातृग्रामे । कतमे

1 Mss. read [illegible] after [illegible] which Speyer has omitted as being superfluous here.

पञ्च [1] रक्तं पुरुषं जानाति विरक्तं जानाति । कालं जानाति ऋतुं जानाति । गर्भमवक्रान्तं जानाति । यस्य सकाशाद्गर्भोऽवक्रामति तं जानाति । दारकं जानाति दारिकां जानाति । सचेद्दारको भवति, दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति । सचेद्दारिका भवति, वामं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति । सा आत्तमनात्तमना स्वामिन आरोचयति–दिष्ट्या आर्यपुत्र वर्धसे । आपन्नसत्त्वास्मि संवृत्ता । यथा च मे दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति, नियतं दारको भविष्यतीति । सोऽप्यात्तमनात्तमनाः पूर्वकायमभ्युन्नमय्य दक्षिणं बाहुमभिप्रसार्योदानमुदानयति–अप्येवाहं चिरकालाभिलषितं पुत्रमुखं पश्येयम् । जातो मे स्यान्नावजातः । कृत्यानि मे कुर्वीत । भृतः प्रति बिभृयात् । दायाद्यं प्रतिपद्येत । कुलवंशो मे चिरस्थितिकः स्यात् । अस्माकं चाप्यतीतकालगतानामल्पं वा प्रभूतं वा दानानि दत्त्वा पुण्यानि कृत्वा मम नाम्ना दक्षिणामादेक्ष्यते–इदं तयोर्यत्रतत्रोपपन्नयोर्गच्छतोरनुगच्छत्विति । आपन्नसत्त्वां चैनां विदित्वा उपरिप्रासादतलगतामयन्त्रितां धारयति शीते शीतोपकरणैरुष्णे उष्णोपकरणैर्वैद्यप्रज्ञप्तैराहारैर्नातितिक्तैर्नात्यम्लैर्नातिलवणैर्नातिमधुरैर्नातिकटुकैर्नातिकषायैस्तिक्ताम्ललवणमधुर- [B 181] कटुककषायविवर्जितैराहारैः । हारार्धहारविभूषितगात्रीमप्सरसमिव नन्दनवनविचारिणीं मञ्चान्मञ्चं पीठात्पीठमनवतरन्तीमधरां भूमिम् । न चास्याः किंचिदमनोज्ञशब्दश्रवणं यावदेव गर्भस्य परिपाकाय । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातो अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः सर्वाङ्गप्रत्यङ्गोपेतः । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा गङ्गिक इति नाम कृतम् । गङ्गिको दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् ॥

स च निर्वेधभागीयैः कुशलमूलैः समन्वागतो गृहावासे नाभिरमते । स मातापितरौ पादयोर्निपत्य विज्ञापयति–अम्ब तात अनुजानीत माम्, भगवच्छासने प्रव्रजिष्यामीति । ततोऽस्य मातापितरावेकपुत्रक इति कृत्वा नानुजानीतः । ततो गङ्गिकस्य बुद्धिरुत्पन्ना–दुर्लभो मनुष्यप्रतिलाभः, दुर्लभश्च तथागतप्रादुर्भावः, तथेन्द्रियसंपदपि दुर्लभा । को मे उपायो भवेद्यदहं भगवच्छासने प्रव्रजेयमिति । तस्यैतदभवत्–यन्न्वहं प्रणिधानं कृत्वा आत्मानमात्मना जीविताद्व्यपरोपयेयम्, यथा मनुष्यत्वमासाद्य लघु लघ्वेव प्रव्रजेयमिति । तेनैव विचिन्त्य विषं भक्षितम्, न च कालं करोति । अग्नौ पतितः, पर्वतादात्मानमुत्सृष्टवान्, नद्यां चावकायां पतितः, तत्रापि कालं न करोति । तस्य बुद्धिरुत्पन्ना–क उपायः [B 182] स्याद्येन कालं कुर्यामिति । तस्यैतदभवत्–सर्वथायं राजा अजातशत्रुश्चण्डो रभसः कर्कशः साहसिकश्च । यन्न्वहमस्य गृहे रात्रौ संधिं छिन्द्यामिति । स राजगृहं नगरं गत्वा रात्रौ संप्राप्तायां मध्ये चतुष्पथे संधिमारब्धश्छेत्तुम् । ततो रक्षिभिर्जीवग्राहं गृहीत्वा राज्ञोऽजातशत्रोरुपनीतः–अयं देव चौरो दुष्टोऽपकारी च, यो राजकुले रात्रौ संधिं छिन्दतीति ।

ततो राज्ञा अपराधिक इति कृत्वा वध्य उत्सृष्टः । ततो वध्यघातैर्नीलाम्बरवसनैः करवीरमालासक्तकण्ठैरुग्र उद्यतशस्त्रपाणिभी रथ्यावीथीचत्वरशृङ्गाटकेषु श्रावणामुखेष्वनुश्राव्य दक्षिणेन नगरद्वारेण निष्कास्य शीतवनं श्मशानं नीयते । स नीयमानस्तान् वध्यघातानाह—शीघ्रं शीघ्रं भवन्तो गच्छन्तु, मा कदाचिद्राज्ञश्चित्तस्यान्यथात्वं स्यादिति । ततो वध्यघातैरेषा प्रवृत्ती राज्ञो निवेदिता । ततो राज्ञा प्रतिनिवर्त्य पृष्टः—को हेतुर्यस्त्वमिष्टं जीवितं परित्यक्तुमिच्छसीति । तेन स वृत्तान्तो विस्तरेण राज्ञे समाख्यातः । ततो राजा अजातशत्रुः B 183 कदम्बपुष्पवदाहृष्टरोमकूपः साश्रुकण्ठो रुदन्मुख उदानमुदानयति—अहो सुपरिपक्वा अस्य बुद्धिसंततिः, स्वयगतः संसारदोषः, सुप्रतिलब्धा श्रद्धासंपत्, यत्र नामायं प्रव्रज्याहेतोरिदमिष्टं जीवितं परित्यक्तुं व्यवसितः । ततो राज्ञा समाश्वास्योक्तः—पुत्रक अहं प्रमुक्तो जीवितस्य । गच्छेदानीं भगवच्छासने प्रव्रजेति । स राज्ञोत्सृष्टो भगवच्छासने प्रव्रजितः । तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः । सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ॥

तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म—एषोऽग्रो मे भिक्षवो भिक्षूणां मम श्रावकाणां श्रद्धाप्रव्रजितानां यदुत गङ्गिको वाराणसेयः श्रेष्ठिपुत्र इति ॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः—कानि भदन्त गङ्गिकेन कर्माणि कृतानि येषां विपाकान्नाग्निः कायेऽवकाशति[1], न विषम्, न च शस्त्रम्, B 184 नोदकेन कालं करोति, अर्हत्त्वं चानेन प्राप्तम् । भगवानाह—गङ्गिकेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । गङ्गिकेन कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यामन्यतमः श्मशानमोषको मातङ्गः । यावत्तेन पान्थान् हत्वा भाण्डमासादितम् । ततस्तस्य पृष्ठतस्तस्कराः प्रधाविताः । यावदन्यतमस्मिन् श्मशाने प्रत्येकबुद्धो निरोधसमापत्तिं समापन्नः । ततोऽसौ श्मशानमोषको

[1] अवकाशति, has hold of.

मातङ्गस्तस्य पुरस्ताद्भाण्डमपसृज्य तत्रैव निलीनः । ततस्ते तस्कराः प्रत्येकबुद्धं दृष्ट्वा अत्यारब्धाः क्षेप्तुं शस्त्रमग्निं च । न चास्य चीवरकर्णकमपि शक्नुवन्ति चालयितुम्, यस्मादसौ निरोधसमाधिं समापन्नः । यदा ते तस्कराः श्रान्ताः प्रक्रान्ताः, तदा स प्रत्येकबुद्धः क्रमेण समाधिव्युत्थितः । ततस्तेन श्मशानमोषकेण मातङ्गेन तं प्रत्येकबुद्धं पिण्डकेन B 185
प्रतिपाद्य प्रणिधानं कृतम्—अहमप्येवंविधानां गुणानां लाभी स्याम्, यथा चायमपरोपक्रमः । एवमहमपि यत्र यत्र जायेय, तत्र तत्रापरोपक्रमः स्याम्, प्रतिविशिष्टतरं चातः शास्तारमारागयेयं मा विरागयेयमिति ॥

भगवानाह—किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन श्मशानमोषको मातङ्गः, अयं स गङ्गिकः । भूयः काश्यपे भगवति प्रव्रजितो बभूव । तत्रानेन ब्रह्मचर्यवासः परिपालितः । तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानां कर्मणामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन् ॥

---

९९ दीर्घनखः ।

B 186

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघो राजगृहमुपनिश्रित्य विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे । तेन खलु समयेन नालदग्रामके तिष्यो नाम ब्राह्मणः । तेन शारी नाम दारिका माठरसकाशाल्लब्धा । यदा शारिपुत्रः शारीकुक्षिमवक्रान्तः, तदा भ्रात्रा सह दीर्घनखेन विवादं[1] कुर्वन्ती निग्रहस्थानं प्रापयति । [2]* * * * * * * * । ततो दीर्घनखेन दक्षिणापथं गत्वा बहूनि शास्त्राण्यधीतानि ॥

यावत्क्रमेण शारिपुत्रो जातः । तेन द्विरष्टवर्षेणैन्द्रं व्याकरणमधीतम्, सर्ववादिनश्च B 187
निगृहीताः । सोऽनुपूर्वेण भगवतः शासने प्रव्रजितः । यावद्दीर्घनखेन प्रव्राजकेन श्रुतम्—भागिनेयेन ते सर्वे तीर्थकरा निगृहीताः । इदानीं श्रमणगौतमस्य शिष्यत्वमभ्युपगत इति ।

---

१ Speyer has added the word विवादं by conjecture to give a suitable sense to the phrase. २ The missing portion relates to दीर्घनख repenting for his defeat at the hands of his sister, and decides to stay at another place.

श्रुत्वा चास्य महती परिभवसंज्ञा उत्पन्ना, सर्वशास्त्रेषु चास्य अनैष्ठिकसंज्ञा उत्पन्ना। ततः क्रमशो राजगृहमनुप्राप्तः॥

तस्मिंश्च समये भगवान्प्रतिसंलयनाद्व्युत्थाय चतसृणां पर्षदां मधुरमधुरं धर्मं देशयति क्षौद्रं मध्विवानेडकम्। शारिपुत्रोऽपि भगवतः पुरस्तात्स्थितोऽभूद् व्यजनं गृहीत्वा भगवन्तं वीजयन्। अथ ददर्श दीर्घनखपरिव्राजको भगवन्तमर्धचन्द्राकारेणोपविष्टं धर्मं देशयन्तम्, शारिपुत्रं च व्यजनव्यग्रहस्तं भगवन्तं वीजयमानम्। दृष्ट्वा च पुनर्भगवन्तमिदमवोचत्—सर्वं मे भो गौतम न क्षमत इति। भगवानाह—एषापि ते अग्निवैश्यायन दृष्टिर्न क्षमते, येयं दृष्टिः—सर्वं मे न क्षमत इति। एषापि मे भो गौतम दृष्टिर्न क्षमते, येयं मे दृष्टिः—सर्वं मे न क्षमत इति। अपि तु ते अग्निवैश्यायन एवं जानतोऽस्याश्च दृष्टेः प्रहाणं भविष्यति प्रतिनिसर्गो वान्तीभावः, अन्यस्याश्च दृष्टेरप्रतिसंधिरनुपादानमप्रादुर्भावः? अपि मे भो गौतम एवं जानत एवं पश्यतोऽस्याश्च दृष्टेः प्रहाणं भविष्यति प्रतिनिसर्गो वान्तीभावः
B 188 अन्यस्याश्च दृष्टेरप्रतिसंधिरनुपादानमप्रादुर्भावः। बहुजनेन ते अग्निवैश्यायन न संस्यन्दिष्यति।[1] * * * * * * इम उच्यन्ते तनुभ्यस्तनुतराः। लोके त्रय इमे अग्निवैश्यायन दृष्टिसंनिश्रयाः। कतमे त्रयः? इहाग्निवैश्यायन एक एवंदृष्टिर्भवति एवंवादी—सर्वं मे क्षमत इति। पुनरपरमिहैक एवंदृष्टिर्भवति एवंवादी—सर्वं मे न क्षमत इति। पुनरपरमेक एवंदृष्टिर्भवति एवंवादी—एकं मे क्षमते, एकं न मे क्षमत इति। तत्राग्निवैश्यायन येयं दृष्टिः सर्वं मे क्षमत इति, इयं दृष्टिः संरागाय संवर्तते नासंरागाय, संद्वेषाय नासंद्वेषाय, संमोहाय नासंमोहाय, संयोगाय नासयोगाय, संक्लेशाय न व्यवदानाय, संचयाय नापचयाय, अभिनन्दनायोपादानाय अध्यवसानाय संवर्तते। तत्राग्निवैश्यायन येयं दृष्टिः—सर्वं मे न क्षमत इति, इयं दृष्टिः असंरागाय संवर्तते न संरागाय, असंद्वेषाय न संद्वेषाय, असंमोहाय न
B 189 संमोहाय, विसंयोगाय न संयोगाय, व्यवदानाय न संक्लेशाय, असंचयाय न संचयाय। अनभिनन्दनायानुपादानाय अनध्यवसानाय संवर्तते। तत्र येयं दृष्टिः—एकं मे क्षमते, एकं मे न क्षमत इति, यत्तावदस्य क्षमते, तत्संरागाय संद्वेषाय संमोहाय संयोगाय संक्लेशाय, न व्यवदानाय नापचयाय। अभिनन्दनायोपादानाय अध्यवसानाय संवर्तते। यदस्य न क्षमते, तदसंरागाय संवर्तते न संरागाय, असंद्वेषाय न संद्वेषाय, असंमोहाय न संमोहाय, असंयोगाय न संयोगाय, व्यवदानाय न संक्लेशाय, अपचयाय न संचयाय। अनभिनन्दनायानुपादानाय अनध्यवसानाय संवर्तते॥

तत्र श्रुतवानार्यश्रावक इदं प्रतिसंशिक्षते—अहं चेवंदृष्टिः स्याम्, एवंवादी—सर्वं मे क्षमते। द्वाभ्यां मे सार्धं स्याद्विग्रहः स्याद्विवादः। यश्च एवंदृष्टिरेवंवादी—सर्वं मे न क्षमत इति, यश्च एवंदृष्टिरेवंवादी—एकं मे क्षमते एकं मे न क्षमत इति। विग्रहे सति
B 190 विवादः, विवादे सति विहिंसा। इति स तां सविग्रहां सविवादां सविहिंसां च समनु-

[1] A portion of the argument is lost.

पश्यन्निमां च दृष्टिं प्रतिनिसृजति, अन्यां च दृष्टिं नोपादत्ते । एवमस्याश्च दृष्टेः प्रहाणं भवति प्रतिनिसर्गो वान्तीभावः, अन्यस्याश्च दृष्टेरप्रतिसंधिरनुपादानमप्रादुर्भावः ॥

तत्र श्रुतवानार्यश्रावक इदं प्रतिसंशिक्षते—अहं चेदेवंदृष्टिः स्यामेवंवादी—सर्वं मे न क्षमत इति, द्वाभ्यां मे सार्धं स्याद्विग्रहः, स्याद्विवादः । यश्च एवंदृष्टिरेवंवादी—सर्वं मे क्षमत इति, यश्च एवंदृष्टिरेवंवादी—एकं मे क्षमते, एकं मे न क्षमत इति । विग्रहे सति विवादः,[1] विवादे सति विहिंसा, इति स तां सविग्रहां सविवादां सविहिंसां च समनुपश्यन्निमां च दृष्टिं प्रतिनिसृजति, अन्यां च दृष्टिं नोपादत्ते । एवमस्याश्च दृष्टेः प्रहाणं भवति प्रतिनिसर्गो वान्तीभावः । अन्यस्याश्च दृष्टेरप्रतिसंधिरनुपादानमप्रादुर्भावः ॥

तत्र श्रुतवानार्यश्रावक इदं प्रतिसंशिक्षते—अहं चेदेवंदृष्टिः स्यामेवंवादी—एकं मे क्षमते, एकं मे न क्षमत इति, द्वाभ्यां मे सार्धं स्याद्विग्रहः, स्याद्विवादः । यश्चैवंदृष्टिरेवंवादी—
सर्वं मे क्षमत इति, यश्च एवंदृष्टिरेवंवादी—सर्वं मे न क्षमते इति । विग्रहे सति विवादः, B 191
विवादे सति विहिंसा, इति स तां सविग्रहां सविवादां सविहिंसां च समनुपश्यन्निमां च दृष्टिं प्रतिनिसृजति, अन्यां च दृष्टिं नोपादत्ते । एवमस्याश्च दृष्टेः प्रहाणं भवति प्रतिनिसर्गो वान्तीभावः । अन्यस्याश्च दृष्टेरप्रतिसंधिरनुपादानमप्रादुर्भावः ॥

अयं खल्वग्निवैश्यायन कायो रूपी औदारिकश्चातुर्महाभूतिक इति आर्यश्रावकेण अभीक्ष्णमुदयव्ययानुदर्शिना विहर्तव्यम्, विरागानुदर्शिना प्रतिनिसर्गानुदर्शिना विहर्तव्यम् । यत्रार्यश्रावकस्य अभीक्ष्णमुदयव्ययानुदर्शिनो विहरतः, योऽस्य भवति काये कायच्छन्दः कायस्नेहः कायप्रेमा कायालयः कायविपत्तिः कायाध्यवसानम्, तद्वास्य चित्तं न पर्यादाय तिष्ठति ॥

तिस्र इमा अग्निवैश्यायन वेदनाः । कतमास्तिस्रः ? सुखा दुःखा अदुःखासुखा च । B 192
यस्मिन् समये श्रुतवानार्यश्रावकः सुखां वेदनां वेदयते, द्वे अस्य वेदने तस्मिन् समये निरुद्धे भवतः—दुःखा च अदुःखासुखा च । सुखामेव च तस्मिन् समये आर्यश्रावको वेदनां वेदयते । सुखापि च वेदना अनित्या निरोधधर्मिणी । यस्मिन् समये आर्यश्रावको दुःखां वेदनां वेदयते, द्वे अस्य वेदने तस्मिन् समये निरुद्धे भवतः, सुखा अदुःखासुखा च । दुःखामेव च तस्मिन् समये आर्यश्रावको वेदनां वेदयते । दुःखापि वेदना अनित्या निरोधधर्मिणी । यस्मिन् समये आर्यश्रावको अदुःखासुखां वेदनां वेदयते, द्वे अस्य वेदने तस्मिन् समये निरुद्धे भवतः—सुखा दुःखा च । अदुःखासुखामेव च तस्मिन् समये आर्यश्रावको वेदनां वेदयते । अदुःखासुखापि वेदना अनित्या निरोधधर्मिणी । तस्यैवं भवति—इमा वेदनाः किंनिदानाः किंसमुदयाः किंजातीयाः किंप्रभावा इति ? इमा वेदना स्पर्शनिदानाः स्पर्शसमुदयाः स्पर्शजातीयाः स्पर्शप्रभावाः । तस्य स्पर्शस्य समुदयात्तास्ता वेदनाः समुद-

[1] The entire para is wanting in Mss., but is restored by Speyer.

यन्ते, तस्य स्पर्शस्य निरोधात्तास्ता वेदना निरुध्यन्ते, व्युपशाम्यन्ति शीतीभवन्ति अस्तं
गच्छन्ति । स यां कांचिद्वेदनां वेदयते सुखां वा दुःखां वा अदुःखासुखां वा, तासां
B 193 वेदनानां समुदयं चास्तंगमं चास्वादं चादीनवं च निःसरणं च यथाभूतं प्रजानामीति,
तस्य वेदनानां समुदयं चास्तंगमं चास्वादं चादीनवं च निःसरणं च यथाभूतं प्रजानत
उत्पन्नासु वेदनास्वनित्यतानुदर्शी विहरति, व्ययानुदर्शी विरागानुदर्शी निरोधानुदर्शी
प्रतिसर्गानुदर्शी । स कायपर्यन्तिकां वेदनां वेदयमानः कायपर्यन्तिकां वेदनां वेदय इति
यथाभूतं प्रजानाति । जीवितपर्यन्तिकां वेदनां वेदयमानो जीवितपर्यन्तिकां वेदनां वेदय
इति यथाभूतं प्रजानाति । भेदाच्च कायस्योर्ध्वं जीवितपर्यादानादिहैवास्य सर्वाणि वेदनानि
अपरिशेषं निरुध्यन्ते अपरिशेषमस्तं परिक्षयं पर्यादानं गच्छन्ति । तस्यैवं भवति—सुखामपि
वेदनां वेदयतो भेदः कायस्य भविष्यति । एष एवान्तो दुःखस्य । दुःखामपि, अदुःखासुखामपि
वेदनां वेदयतो भेदः कायस्य भविष्यति । एष एवान्तो दुःखस्य । स सुखामपि वेदनां वेदयते,
विसंयुक्तो वेदयते, न संयुक्तः । दुःखामपि अदुःखासुखामपि वेदनां वेदयते, विसंयुक्तो
वेदयते, न संयुक्तः । केन विसंयुक्तः? विसंयुक्तो रागेण द्वेषेण मोहेन, विसंयुक्तो जाति-
जरामरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैः, विसंयुक्तो दुःखादिति वदामि ॥

B 194 तेन खलु समयेन आयुष्माञ्शारिपुत्रोऽर्धमासोपसंपन्नो भगवतः पृष्ठतः स्थितोऽभूद्
व्यजनं गृहीत्वा भगवन्तं वीजयन् । अथायुष्मतः शारिपुत्रस्यैतदभवत्—भगवांस्तेषां धर्माणां
प्रहाणमेव वर्णयति, विरागमेव निरोधमेव प्रतिनिःसर्गमेव वर्णयति । यन्न्वहं तेषां तेषां
धर्माणां प्रहाणानुदर्शी विहरेयम्, विरागानुदर्शी निरोधानुदर्शी विहरेयम्, प्रतिनिः-
सर्गानुदर्शी विहरेयमिति । अथायुष्मतः शारिपुत्रस्यैषां धर्माणामनित्यतानुदर्शिनो विहरतो
व्ययानुदर्शिनो विरागानुदर्शिनो निरोधानुदर्शिनः प्रतिनिःसर्गानुदर्शिनो विहरतः अनु-
पादाय आस्रवेभ्यश्चित्तं विमुक्तम् । दीर्घनखस्य च परिव्राजकस्य विरजो विगतमलं धर्मेषु
धर्मचक्षुरुत्पन्नम् ॥

अथ दीर्घनखः परिव्राजको दृष्टधर्मा प्राप्तधर्मा विदितधर्मा पर्यवगाढधर्मा तीर्णकाङ्क्ष-
स्तीर्णविचिकित्सोऽपरप्रत्ययोऽनन्यनेयः शास्तुः शासने धर्मेषु वैशारद्यप्राप्तः उत्थायासनादेकांस-
मुत्तरासङ्गं कृत्वा येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणमय्य भगवन्तमिदमवोचत्—लभेयाहं भदन्त
स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावम् । चरेयमहं भगवतोऽन्तिके ब्रह्मचर्यम् ।
लब्धवान् दीर्घनखपरिव्राजकः स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावम् । एवं
प्रव्रजितः स आयुष्मानेको व्यपकृष्टोऽप्रमत्त आतापी प्रहितात्मा व्यहार्षीत् । एको व्यप-
कृष्टोऽप्रमत्त आतापी प्रहितात्मा विहरन् यदर्थं कुलपुत्राः केशश्मश्रु अवतार्य काषायाणि
B 195 वस्त्राण्याच्छाद्य सम्यगेव श्रद्धया अगारादनगारिकां प्रव्रजन्ति, तदनुत्तरं ब्रह्मचर्यपर्यवसानं

---

[1] Compare मज्झिमनिकाय, 74, where दीर्घनख becomes an उपासक and not a monk.

दृष्ट एव धर्मे स्वयमभिज्ञया साक्षात्कृत्वा प्रतिपद्य प्रवेदयते–क्षीणा मे जातिः, उषितं ब्रह्मचर्यम्, कृतं करणीयम्, नापरमस्माद्भवं प्रजानामीति। आज्ञातवान् स आयुष्मानर्हन् बभूव सुविमुक्तचित्तः। तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म–एषोऽग्रो मे भिक्षवो भिक्षूणां मम श्रावकाणां प्रतिसंविद्गतानां यदुत कोष्ठिलो भिक्षुरिति॥

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः–कानि भदन्त महाकोष्ठिलेन कर्माणि कृतान्युपचितानि, येन महावादी संवृत्तः। प्रव्रज्य चार्हत्त्वं साक्षात्कृतमिति। भगवानाह–कोष्ठिलेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि। कोष्ठिलेन कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम्॥ १॥

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि वाराणस्यां नगर्यां पञ्चमात्राणि तस्करशतानि सेनापतिप्रमुखाणि चौर्येण संप्रस्थितानि। यावत्ते चञ्चूर्यमाणा अन्यतमं खदिरवणमनुप्राप्ताः। B 198
यावत्सेनापतिनाभिहिताः–पश्यत यूयं कमलायताक्षः कश्चिदपरकीयो मनुष्यः संविद्यते, येन वयं यक्षबलिं दत्त्वा प्रक्रामेमेति। तत्र च खदिरवने प्रत्येकबुद्धः प्रतिवसति। ततस्तैस्तस्करैः पर्यटद्भिर्दृष्ट्वा सेनापतिसकाशं नीतः। ततश्चौरसेनापतिना वध्यतामयमित्याज्ञा दत्ता। ततोऽसौ प्रत्येकबुद्धस्तेषामनुग्रहार्थं विततपक्ष इव हंसराजः खगपथमभ्युद्गम्य विचित्राणि प्रातिहार्याणि विदर्शयितुमारब्धः। ततः सेनापतिर्मूलनिकृत्त इव द्रुमः पादयोर्निपत्य अत्ययं देशितवान्। पिण्डकेन प्रतिपाद्य प्रणिधानं कृतवान्–अहमप्येवंविधानां गुणानां लाभी स्याम्, प्रतिविशिष्टतरं चातः शास्तारमारागयेयं मा विरागयेयमिति॥

भगवानाह–किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन चौरसेनापतिः, अयमेवासौ कोष्ठिलः। भूयः काश्यपे भगवति प्रव्रजितो बभूव। तत्रानेन दशवर्षसहस्राणि ब्रह्मचर्यवासः परिपालितः। तेनेदानीमर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्॥

इदमवोचद्भगवान्। आत्तमनसस्ते भिक्षवो भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्॥

---

१०० संगीतिः।

B 197 बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नरमहोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः कुशिनगर्यां विहरति मल्लानामुपवर्तने यमकशालवने। अथ भगवांस्तदेव परिनिर्वाणकालसमये आयुष्मन्तमानन्दमामन्त्रयते स्म—प्रज्ञापय आनन्द तथागतस्य अन्तरेण यमकशालयोरुत्तराशिरसं मञ्चम्। अद्य तथागतस्य रात्र्या मध्यमे यामे निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वाणं भविष्यतीति। एवं भदन्तेत्यायुष्मानानन्दो भगवतः प्रतिश्रुत्य अन्तरेण यमकशालयोरुत्तराशिरसं मञ्चं प्रज्ञप्य येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा एकान्तेऽस्थात्। एकान्तस्थित आयुष्मानानन्दो भगवन्तमिदमवोचत्—प्रज्ञप्तो भदन्त तथागतस्य अन्तरेण यमकशालयोरुत्तराशिरसं मञ्चः। अथ भगवान् येन मञ्चस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य दक्षिणेन पार्श्वेन शय्यां कल्पयति पादं पादेनोपधाय आलोकसंज्ञी स्मृतः संप्रजानन् निर्वाणसंज्ञामेव मनसि कुर्वन्निति॥

B 198 तत्र भगवान् रात्र्या मध्यमे यामेऽनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः। समनन्तरपरिनिर्वृते बुद्धे भगवति अत्यर्थं तस्मिन् समये महापृथिवीचालोऽभूत् उल्कापाता दिशोदाहाः। अन्तरीक्षे देवदुन्दुभयो नदन्ति। समनन्तरपरिनिर्वृते बुद्धे भगवति उभौ यमकशालवनस्य द्रुमोत्तमौ तथागतस्य सिंहशय्यां शालपुष्पैरवाकिरताम्। समनन्तरपरिनिर्वृते भगवति अन्यतरो भिक्षुस्तस्यां वेलायां गाथां भाषते—

सुन्दरौ खल्विमौ शालवनस्यास्य द्रुमोत्तमौ।
यदवाकिरतां पुष्पैः शास्तारं परिनिर्वृतम्॥ १॥

समनन्तरपरिनिर्वृते बुद्धे भगवति शक्रो देवेन्द्रो गाथां भाषते—

अनित्या बत संस्कारा उत्पादव्ययधर्मिणः।
उत्पद्य हि निरुध्यन्ते तेषां व्युपशमः सुखम्॥ २॥

समनन्तरपरिनिर्वृते बुद्धे भगवति ब्रह्मा सहांपतिर्गाथां भाषते—

सर्वभूतानि लोकेऽस्मिन्निक्षेप्स्यन्ति समुच्छ्रयम्।
B 199 एवंविधो यत्र शास्ता लोकेष्वप्रतिपुद्गलः।
तथागतबलप्राप्तः चक्षुष्मान् परिनिर्वृतः॥ ३॥

समनन्तरपरिनिर्वृते बुद्धे भगवति आयुष्माननिरुद्धो गाथां भाषते—

स्थिता आश्वासप्रश्वासा स्थिरचित्तस्य तायिनः।
आनिञ्ज्यां शान्तिमागम्य चक्षुष्मान् परिनिर्वृतः॥ ४॥

तदाभवद्भीषणकं तदाभूद्रोमहर्षणम् ।
सर्वाकारबलोपेतः शास्ता कालं यदाकरोत् ॥ ५ ॥
असंलीनेन चित्तेन वेदना अधिवासयन् ।
प्रद्योतस्येव निर्वाणं विमोक्षस्तस्य चेतसः ॥ ६ ॥ इति ॥

सप्ताहपरिनिर्वृते बुद्धे भगवति आयुष्मानानन्दो भगवतश्चितां प्रदक्षिणीकुर्वन् गाथां भाषते—

येन कायरतनेन नायको
ब्रह्मलोकमगमन्महर्द्धिकः ।
दह्यते स्म तनुजेन तेजसा B 200
पञ्चभिर्युगशतैः स वेष्टितः ॥ ७ ॥
सहस्रमात्रेण हि चीवराणां
बुद्धस्य कायः परिवेष्टितोऽभूत् ।
द्वे चीवरे तत्र तु नैव दग्धे
अभ्यन्तरं बाह्यमथ द्वितीयम् ॥ ८ ॥

वर्षशतपरिनिर्वृते बुद्धे भगवति पाटलिपुत्रे नगरे राजा अशोको राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नम् । धार्मिको धर्मराजो धर्मेण राज्यं पालयति । यावदपरेण समयेन देव्या सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य B 201 परिचारयतः कालान्तरेण देवी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातो अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः कुणालसदृशाभ्यां नेत्राभ्याम् । तस्य जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते—किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः—यस्मादस्य जातमात्रस्य कुणालसदृशे नेत्रे, तस्माद्भवतु दारकस्य कुणाल इति नामेति । कुणालो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तो द्वाभ्यामंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिमण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैः । आशु वर्धते ह्रदस्थमिव पङ्कजम् । ततस्तं सर्वालंकारविभूषितं राजा उत्सङ्गेन कृत्वा पुनः पुनः प्रेक्ष्य रूपसंपदा प्रहर्षित उवाच—असदृशो मे पुत्रो लोके रूपेणेति ॥

तत्र च समये गान्धारे पुष्पभेरोत्सो नाम ग्रामः । तत्रान्यतमस्य गृहपतेः पुत्रो जातोऽतिक्रान्तो मानुषं वर्णमसंप्राप्तश्च दिव्यं वर्णम् । जन्मनि चास्य दिव्यगन्धोदकपरिपूर्णा

---

1 Both Tibetan and Sanskrit versions mention a period of one hundred and not two hundred eighteen years after the Parinirvāṇa when Aśoka came to the throne.

रत्नमयी पुष्करिणी प्रादुर्भूता, पुष्पसंपन्नं च महदुद्यानं जङ्गमं च। यत्र यत्र कुमारो गच्छति तत्र तत्र च पुष्करिणी उद्यानं च प्रादुर्भवति। तस्य सुन्दर इति नामधेयं व्यवस्थापितम्॥

यावत्क्रमेण कुमारो महान् संवृत्तः। ततोऽपरेण समयेन पुष्पभेरोत्साद्वणिजः केनचि-
B 202 देव करणीयेन पाटलिपुत्रं गताः। ते प्राभृतमादाय राज्ञः सकाशमुपगताः। ततः पादयोर्निपत्य प्राभृतं राज्ञे उपनमय्य पुरस्तादवस्थिताः। ततो राजा अशोकस्तेषां कुणालं दर्शयति—हं भो वणिजः, कदाचित्कुत्रचिद्भवद्भिः पर्यटद्भिरेवंविधं रूपविशेषयुक्तं दृष्टपूर्वमिति? ततस्ते वणिजः कृतकरपुटाः पादयोर्निपत्य अभयं मार्गयित्वा राजानमूचुः—अस्ति देव अस्मदीये विषये सुन्दरो नाम कुमारोऽतिक्रान्तो मानुषं वर्णमसंप्राप्तश्च दिव्यं वर्णम्। जन्मनि चास्य दिव्यगन्धोदकपरिपूर्णा रत्नमयी पुष्करिणी प्रादुर्भूता पुष्पफलसमृद्धं च महदुद्यानं जङ्गमम्। यत्र यत्र च स कुमारो गच्छति, तत्र तत्र पुष्करिणी उद्यानं च प्रादुर्भवतीति। श्रुत्वा राजा अशोकः परं विस्मयमापन्नः। कुतूहलजातश्च दूतसंप्रेषणं कृतवान्—एष राजा अशोक आगन्तुमिच्छति सुन्दरस्य कुमारस्य दर्शनहेतोः। यद्वः कृत्यं वा करणीयं वा तत्कुरुध्वमिति। ततो महाजनकायो भीतः—यदि राजा महासाधनेन इहागमिष्यति, मा हैव कंचिदनर्थमुत्पादयिष्यतीति। ततः स कुमारो भद्रयानं योजयित्वा शतसहस्रं च मुक्ताहारं प्राभृतस्यार्थे दत्त्वा अशोकस्य सकाशं प्रेषितः। सोऽनुपूर्वेण चङ्क्रम्यमाणः पाटलिपुत्रं नगरं प्राप्तः। शतसहस्रं च मुक्ताहारं गृहीत्वा राज्ञोऽशोकस्य सकाशमनुप्राप्तः। राजा अशोकश्च सहदर्शनात्सुन्दरस्य कुमारस्य रूपं शोभां वर्णपुष्कलतां च दिव्यां पुष्करिणीमुद्यानं च दृष्ट्वा परं विस्मयमुपगतः॥

B 203 ततो राजा अशोकः स्थविरोपगुप्तस्य विस्मयजननार्थं सुन्दरं च कुमारमादाय कुक्कुटारामं गतः। तत्रोपगुप्तप्रमुखाण्यष्टादशार्हत्सहस्राणि निवसन्ति, तद्द्विगुणाः शैक्षाः पृथग्जनकल्याणकाः। ततः स स्थविरस्य पादाभिवन्दनं कृत्वा पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय। स्थविरोपगुप्तेनास्य धर्मो देशितः। ततः कुमारः परिपक्वसंततिर्धर्मं श्रुत्वा प्रव्रज्याभिलाषी संवृत्तः। स राजानमशोकमनुज्ञाप्य स्थविरोपगुप्तस्य सकाशे प्रव्रजितः। तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चन आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पो विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः॥

B 204 ततो राजा अशोकः संदिग्धः स्थविरं पृच्छति—कानि भदन्त सुन्दरेण कर्माणि कृतानि, येनास्यैवंविधं रूपम्, कानि पुनः कर्माणि येन दिव्यगन्धोदकपरिपूर्णा रत्नमयी पुष्करिणी प्रादुर्भूता, पुष्पफलसमृद्धं च महदुद्यानं जङ्गमम्? स्थविरोपगुप्त आह—सुन्दरेणैव

महाराज पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि । सुन्दरेणैव कर्माणि कृतान्युपचितानि । कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ, अपि तूपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च ।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ १ ॥

भूतपूर्वं महाराज यदा भगवान् परिनिर्वृतः, तदा आयुष्मान् महाकाश्यपः पञ्चशतपरिवारो मगधेषु जनपदचारिकां चरन् धर्मसंगीतिं कर्तुकामः । यावदन्यतमेन दरिद्रकर्पकेण महान् भिक्षुसंघो दृष्टः, शास्तृवियोगाच्छोकार्तोऽध्वपरिश्रान्तो रजसावचूर्णितगात्रः । B 205 ततोऽस्य कारुण्यमुपपन्नम् । ततस्तेन काश्यपप्रमुखाणि पञ्च भिक्षुशतानि जेन्ताकस्नात्रेणोप[1]निमन्त्रितानि । ततस्तेन नानागन्धपरिभावितमुष्णोदकं कृत्वा ते भिक्षवः स्नापिताः, चीवरकाणि शोभितानि । प्रणीतेन चाहारेण संतर्प्य शरणगमनशिक्षापदानि दत्वा प्रणिधानं कृतम्—अस्मिन्नेव शाक्यमुनेः प्रवचने प्रव्रज्य चार्हत्त्वं प्राप्नुयामिति ॥

किं मन्यसे महाराज योऽसौ तेन कालेन तेन समयेन दरिद्रकर्पकः, अयं स सुन्दरो भिक्षुः । यत्तेन भिक्षवो जेन्ताकस्नात्रेण स्नापिताः, तेनास्यैवंविधो रूपविशेषः संवृत्तः, दिव्यचन्दनोदकपरिपूर्णा रमणीया पुष्करिणी पुष्पफलसमृद्धं च महदुद्यानं जङ्गमं प्राप्तम् । यत्तेन शरणगमनशिक्षापदानि उपलब्धानि, तेनेह जन्मन्यर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । इति हि महाराज एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि महाराज एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं ते महाराज शिक्षितव्यम् ॥

अथ राजा अशोक आयुष्मतः स्थविरोपगुप्तस्य भाषितमभिनन्द्यानुमोद्य उत्थायासनात्प्रक्रान्तः ॥ B 206



१ जेन्ताकस्नान, a hot-water bath. Compare the expression जन्ताघर, hot-chamber.

प्रथमं परिशिष्टम् ।

कल्पद्रुमावदानमालायां

१० सुभूत्यवदानम् ।

अथाशोको महाराजः सर्वशोकविनोदितः ।
उपगुप्तं गुरुं नत्वा कृताञ्जलिपुटोऽवदत् ॥ १ ॥
भदन्त श्रोतुमिच्छामि पुनरन्यत्सुभाषितम् ।
यदुक्तं शाक्यसिंहेन तन्मे गदितुमर्हसि ॥ २ ॥
इति पृष्टो नृपेणासावुपगुप्तो यतीश्वरः ।
पर्षदं च समालोक्य संबभाष सुभाषितम् ॥ ३ ॥
शृणु राजन्महाबाहो सर्वलोकहितार्थतः ।
सुभूतेरवदानं यत्तत्प्रवक्ष्ये यथाश्रुतम् ॥ ४ ॥
पुरा श्रीभगवान् बुद्धो धर्मराजस्तथागतः ।
विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविज्जिनः ॥ ५ ॥
शास्ता देवमनुष्याणां सम्यक्संबोधिदेशकः ।
सत्कृतो मानितः सत्त्वैर्गुरुकृतश्च पूजितः ॥ ६ ॥
राजभी राजमात्रैश्च धनिभिः पुरवासिभिः ।
श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैश्च नानादेशसमागतैः ॥ ७ ॥
देवासुरमहानागैर्यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ।
गरुडैश्च महासर्पैस्तथान्यसत्त्वजातिकैः ॥ ८ ॥
सुसंज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरवाससाम् ।
पिण्डपातासनादीनां शय्यादीनां तथैव च ॥ ९ ॥
औषधादिपरिष्कारवस्तूनां सर्वतः सदा ।
सार्धं सश्रावकैः संघैर्भिक्षुभिश्च जितेन्द्रियैः ॥ १० ॥
भिक्षुण्युपासिकाभिश्च चेल्कोपासकैस्तथा ।
बोधिसत्त्वमहासत्त्वैः सत्त्वार्थबोधिवाञ्छिभिः ॥ ११ ॥
श्रावस्त्यां राजधान्या वै जेतवने मनोरमे ।
विहारे व्यहरद्धर्मं देशयञ्छुभयन्सदा ॥ १२ ॥
सदा भगवता सत्त्वविनयानुग्रहार्थिना ।
आमन्त्र्य भिक्षवः सर्वे सम्यगाज्ञापिता इति ॥ १३ ॥
गच्छत भिक्षवो यूयं सत्त्वानां विनयार्थतः ।
देशान् प्रत्यभिगच्छन्तः प्रकाशयत संवृतिम् ॥ १४ ॥

तथेत्येव प्रतिश्रुत्य शास्तुः पादौ प्रणम्य च ।
श्रावका भिक्षवश्चैवं प्रतस्थुस्ते नियोगिनः ॥ १५ ॥

गुरोराज्ञां वहन्तस्ते केचित्प्राचीं दिशं गताः ।
देशयन्ति स्म सद्धर्मं प्रतिदेशानुपास्थिताः ॥ १६ ॥

दक्षिणस्यां तथा केचित्केचिच्च पश्चिमां दिशम् ।
तथोत्तरां दिशं गत्वा विदिक्षु चापि सर्वतः ॥ १७ ॥

तेषां ध्यानरता ये वै ते विविक्तसुखैषिणः ।
मेरोरुपरिपण्डायामभ्यूषुर्ध्यानतत्पराः ॥ १८ ॥

तदाब्धेर्गरुडेनैको नागपोतः समुद्धृतः ।
तमाश्रममुपानीय भक्षितुमुपचक्रमे ॥ १९ ॥

तत्रस्थास्तेन नागेन भिक्षवो ध्यानसंरताः ।
दृष्ट्वैव सुप्रसन्नेन मनसा प्रणिधिर्दधे ॥ २० ॥

धन्यास्ते भिक्षवो ह्येते सद्धर्मसुखचारिणः ।
अहमपि च भूयासं तादृग्धर्मसमाहितः ॥ २१ ॥

इति प्रणिधिं कुर्वाणो जीविताद्व्यवरोपितः ।
तत्रैव गरुडेनैवं भक्षितोऽभूत्स नागकः ॥ २२ ॥

ततः कालगतस्तत्र श्रावस्त्यां पुरि * * * ।
भूतिनाम्नो द्विजस्यासौ भार्याया गर्भमाविशत् ॥ २३ ॥

ततश्च क्रमतस्तस्या गर्भः समनुवर्धितः ।
ततस्तत्समये प्राप्ते दारकः समजायत ॥ २४ ॥

ततः पिता च तं दृष्ट्वा दारकं संप्रसादिकम् ।
दर्शनीयं सुभद्राङ्गं मुहुः पश्यन्ननन्द सः ॥ २५ ॥

ततो जातिमहं कृत्वा ज्ञातीनाहूय चादरात् ।
भवन्तोऽस्य नु किं नाम क्रियतामिति सोऽब्रवीत् ॥ २६ ॥

ज्ञातयोऽपि तथा श्रुत्वा दृष्ट्वा चैनं च बालकम् ।
सर्वे हर्षसमापन्ना भूतिं तमब्रुवंस्तथा ॥ २७ ॥

यस्माद्भूतेरयं पुत्रं सुजातो लक्षणान्वितः ।
तस्मात्सुभूतिरित्येव नाम्ना भवतु विश्रुतः ॥ २८ ॥

तथा क्रमाद्विवृद्धोऽसौ सुभूतिर्बालसुन्दरः ।
कुमारत्वं क्रमात्प्राप्तो रराम स वयोन्वितः ॥ २९ ॥

पूर्वकर्मबलाधानात्क्रोधनः क्रूरभाषणः ।
किंचिन्निमित्तसंरुष्टो विग्रहे निरतोऽभवत् ॥ ३० ॥

परुषीभूतचित्तत्वान्न तस्य कोऽप्यभूत्सुहृत् ।
सर्वज्ञातिविरुद्धत्वात्पितृभ्यामप्युपेक्षितः ॥ ३१ ॥

बन्धुभिश्च परित्यक्तो नैव कस्याप्यभूत्प्रियः ।
विश्रम्भप्रणयं तस्मिन्नैव कश्चिदमापत ॥ ३२ ॥

स्नातुं गन्तुं तथा भोक्तुं शयितुं वाभिलापितुम् ।
तेनैव क्रोधिना सार्धं समुत्सेहुर्न केचन ॥ ३३ ॥

तदा पित्रा नियुक्तोऽसौ लिपिशालामुपागमत् ।
सुभूतिश्च गुरुं नत्वा लिपिमन्वग्रहीत्क्रमात् ॥ ३४ ॥

ततो व्याकरणादीनि सर्वशास्त्राण्यनुक्रमात् ।
सोऽधीत्यैषां सुशीघ्रेण पारं प्राप सुबुद्धिमान् ॥ ३५ ॥

तथा वेदानधीत्यैवं साङ्गोपाङ्गान् यथाक्रमम् ।
अथर्वमप्यधीतुं स प्रारभत्तीक्ष्णमानसः ॥ ३६ ॥

तत्र पिता द्विजो भूतिरथर्वाधीतसंरतम् ।
सुभूतिं स्वात्मजं पुत्रं दृष्ट्वैवं समचिन्तयत् ॥ ३७ ॥

सुभूतिर्मम पुत्रोऽयमग्निकल्पः सुतीक्ष्णधीः ।
कदाचित्कुपितो रोषाल्लोकेऽनर्थं करिष्यति ॥ ३८ ॥

तदन्वाहरितव्योऽयमाथर्वणात्प्रयत्नतः ।
ऋषिषु प्रेषयित्वैनं योजयिष्ये च संयमे ॥ ३९ ॥

इति मत्वा पिता भूतिः सुभूतिं स्वात्मजं तथा ।
आथर्वणाद्विनिर्हृत्य प्रबोधयंस्तमब्रवीत् ॥ ४० ॥

शृणु पुत्र मया प्रोक्तं हितार्थं तव संमतम् ।
त्वं हि विद्वान् महाविज्ञः सर्वशास्त्राङ्गपारगः ॥ ४१ ॥

किं तवाथर्ववेदेन मायाक्लेशार्थसाधिना ।
विरम्य तदधिष्ठानादृषिचर्यां समाचर ॥ ४२ ॥

मुनीनामुपदेशानि प्रतिलभ्य जितेन्द्रियः ।
शान्तात्मा सुखमास्थाय चरस्व व्रतमुत्तमम् ॥ ४३ ॥

धन्यास्ते वीतरागा ये गुरुभक्ताश्च निर्मदाः ।
विविक्तारण्यवासेषु वसन्ति ध्यायिनः सदा ॥ ४४ ॥

येऽपि परिग्रहांस्त्यक्त्वा भवन्ति ब्रह्मचारिणः।
देवानामपि ते मान्या वन्दनीयाः सदा खलु ॥ ४५ ॥

ये प्रव्रज्यां समागृह्य शान्तात्मानो जितेन्द्रियाः।
वसन्ति पुण्यतीर्थेषु तेऽपि हि परमर्षयः ॥ ४६ ॥

कामभोग्यानि ये हित्वा साधयन्ते तपोवने।
फलमूलोदकैस्तुष्टास्तेऽपि धन्या द्विजोत्तमाः ॥ ४७ ॥

येऽपि क्लेशान् विनिर्जित्य चतुर्ब्रह्मविहारिणः।
भिक्षाशिनः समाधिस्थास्ते हि ब्रह्मविदां वराः ॥ ४८ ॥

ये चापरिग्रहीतारो निर्लोभाः सत्यवादिनः।
निर्मदा निरहंकारास्त एव ब्राह्मणोत्तमाः ॥ ४९ ॥

यस्य दातुं मनो नास्ति मत्सराक्रान्तचेतसः।
वेदशास्त्रागमैस्तस्य किमेव स्वात्मपोषिणः ॥ ५० ॥

यस्य चित्तं ह्यविशुद्धं शीलसंवरवर्जितम्।
किं भाति मुनिवेषेण स नटोपिरिवोन्मदः ॥ ५१ ॥

यस्य लोके दया नास्ति बालवृद्धादिदुःखिते।
किं तस्य ब्रह्मवृत्तेन * चित्ते परिमोहिते ॥ ५२ ॥

यस्य न कुशलोत्साहं चित्ते लोकार्थं साधितुम्।
तस्य किं तपसा सिद्धे केवलं पापहेतुभिः ॥ ५३ ॥

यस्य चित्तं प्रविक्षिप्तं क्लेशाद्यैरसमाहितम्।
स किं गुहानिविष्टोऽपि न साधुर्दुष्टजन्तुवत् ॥ ५४ ॥

यस्य प्रज्ञा विशुद्धा न सद्धर्मगुणसाधने।
तस्य किं ब्रह्मचर्येण केवलं दुःखहेतुना ॥ ५५ ॥

यश्च दाता विशुद्धात्मा सर्वसत्त्वानुपालकः।
नीचोऽपि स द्विजकल्पो यतो दाता प्रजापतिः ॥ ५६ ॥

येन संरक्षितं नित्यं शीलं संयमसंवृतम्।
स एव ब्राह्मणः शुद्धः श्रोत्रियो वेदवान् यतिः ॥ ५७ ॥

यस्य चित्तं दयाशूलं सर्वसत्त्वहितैषितम्।
चण्डालोऽपि स विप्रः स्याल्लोकेशो हि क्षमाकरः ॥ ५८ ॥

येनैवं दुष्करं कर्म साधितं सत्त्वहेतुना।
स एव ब्राह्मणो धीरो विश्वकर्मा यतो विधिः ॥ ५९ ॥

यस्य चित्तं सदा सत्त्वहितार्थेषु समाधितम्।
स हि विप्रो महाभिज्ञो ब्रह्मा ज्ञानरतो यतः ॥ ६० ॥

यस्य प्रज्ञा जगल्लोकहितानुशासनोज्ज्वला।
सैव द्विजवरो विज्ञो वेदधर्मास्थितो द्विजः ॥ ६१ ॥

येनैवं निर्जिताः क्लेशाश्चतुर्ब्रह्मविहारिणा।
स्वचित्ते भावितं ब्रह्म स एव ब्राह्मणोत्तमः ॥ ६२ ॥

तस्मात्पुत्र मया प्रोक्तं श्रुत्वा लोकहितोत्सुकः।
सर्वक्लेशान् विनिर्जित्य सद्धर्माभिरतो भव ॥ ६३ ॥

इति पितुर्वचः श्रुत्वा सुभूतिः सोऽनुमोदितः।
कृताञ्जलिस्तथा नत्वा पितरमित्यभाषत ॥ ६४ ॥

तथा सत्यं मनस्तात रोचते तपसे मम।
तदाज्ञां देहि मे तात चरिष्ये ब्रह्म सद्व्रतम् ॥ ६५ ॥

तेनैवं प्रार्थ्यमानोऽसौ सुभूतिना पिता ततः।
परिष्वज्यात्मजं पुत्रं पुनरप्यब्रवीन्मुदा ॥ ६६ ॥

एवं चेत्तव वाञ्छास्ति पुत्र ब्रह्मसुसाधनैः।
चर ब्रह्मव्रतं सम्यग्धीर चित्तसमाहितः ॥ ६७ ॥

आदौ क्रोधरिपुं जित्वा दुष्टमारान् विनिर्जय।
यावत्क्रोधमनिर्जित्य दुष्टाञ्जेतुं न शक्नुयाः ॥ ६८ ॥

यावद्दुष्टाननिर्जित्य धर्मे स्थातुं न शक्नुयाः।
असुसंस्थितधर्माणं हन्युर्मारा हि सर्वथा ॥ ६९ ॥

तस्माद्वाञ्छति यो ब्रह्म तेनादौ चित्तकोटरात्।
विनिःकृष्य प्रयत्नेन हन्तव्यः क्रोधपन्नगः ॥ ७० ॥

क्रोधो हि वसते यस्य चित्ते मानमदाकुले।
तावत्सद्गुणयुक्तोऽपि सेव्यते नैव सज्जनैः ॥ ७१ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन क्रोधजिष्णुः समाहितः।
प्रव्रज्यां समुपासि(श्रि)त्य चर ब्राह्मण्यमादरात् ॥ ७२ ॥

तथेत्यसौ प्रतिश्रुत्य सुभूतिः संप्रमोदितः।
सहसा पितरौ नत्वा मुनीनामाश्रमं ययौ ॥ ७३ ॥

तत्र प्राप्तो मुनीन्नत्वा कृताञ्जलिपुटो मुदा।
ब्राह्मण्यसंवरं प्राप्तुं प्रव्रज्यां समयाचत ॥ ७४ ॥

गुरो ब्रह्मविदां श्रेष्ठ कल्याणवर्त्मदेशक ।
प्रव्रज्यां देहि मे सत्यं चरेयं भवमुक्तये ॥ ७५ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा गुरुर्ब्रह्मविदां वरः ।
एहि वत्स चर ब्रह्मचर्यं जित्वा षडिन्द्रियम् ॥ ७६ ॥

इत्युक्तो गुरुणा सोऽभूत्सुभूतिर्मुनिवेषभृत् ।
ब्रह्मविहारसंपन्नो विनीतः श्रद्धयान्वितः ॥ ७७ ॥

तथापि दैवसामर्थ्यात्क्रोधसंरक्तमानसः ।
किंचिन्निमित्तमात्रेऽपि विग्रहवानसंयतः ॥ ७८ ॥

वेदसिद्धान्तशास्त्रेषु विवादी क्रोधबाहुलः ।
अतीव रोषसंक्रुष्टो विचिक्षेप यतीनपि ॥ ७९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु निरपेक्षः सुतीक्ष्णवाक् ।
सर्वत्र मुनिभिश्चापि विजग्राहासमाहितः ॥ ८० ॥

इत्येनं क्रोधसंरक्तं वेदसिद्धान्तमानिनम् ।
सुभूतिं ब्राह्मणं दृष्ट्वा गुरुश्चैवमचिन्तयत् ॥ ८१ ॥

अहो दैवबलाधानात्सुभूतिर्ब्राह्मणोऽप्ययम् ।
स्वसिद्धान्तसमानोऽद्य क्रूरवाग्विग्रहोत्सुकः ॥ ८२ ॥

अग्निकल्पो महातीक्ष्णः सर्वशास्त्रार्थकोविदः ।
विशारदो महाभिज्ञो धर्मसंयमतत्परः ॥ ८३ ॥

तपश्चरणसंरक्तस्तीक्ष्णबुद्धिः कृतोद्यमः ।
महोत्साहो महावीरः सिद्धविद्यो महोत्कटः ॥ ८४ ॥

सर्वशास्त्रकलाभिज्ञो मन्त्रसिद्धिप्रयोगवित् ।
वेदसिद्धान्तयोगानां पारगश्च महासुधीः ॥ ८५ ॥

किं तु क्रोधाविशुद्धात्मा विग्रही वादसंरतः ।
किंचिन्निमित्तमात्रेऽपि निकृष्टोऽस्य दुराशयः ॥ ८६ ॥

यदाचित्कुपितो दुष्टेः संक्लेशार्धरचेतनः ।
शापाशनिप्रहारेण लोकेऽनर्थं करिष्यति ॥ ८७ ॥

तदहं संप्रबोध्यैनं सुभूतिं द्विजसत्तमम् ।
समाधिध्यानचर्यासु योजयेयं च सर्वथा ॥ ८८ ॥

इति मत्वा गुरुश्चैनं सुभूतिं समबोधयत् ।
शृणु वत्स हितं वक्ष्ये तत्र भव समाहितः ॥ ८९ ॥

सर्ववर्णाग्रजो विप्रः सर्वजातिवरोत्तमः ।
ब्राह्मणोऽस्मीत्यहंकारो न कर्तव्यः कदाचन ॥ ९० ॥
न जीवो ब्राह्मणस्तावद्यस्मात्संस्कारतो द्विजः ।
जीवश्चेद्ब्राह्मणस्तावद्वृथा स्याद्धर्मसंस्कृतैः ॥ ९१ ॥
आद्यन्ते पशवो देवा इति वेदेऽपि कथ्यते ।
ततो धर्माभिसंस्कारैः सर्वे स्युर्मानवा द्विजाः ॥ ९२ ॥
श्वपचा अपि धर्मस्थाः संस्कृताः स्युर्द्विजाधमाः ।
गुणधर्मानुसारैश्च देवा दैत्याश्च मानुषाः ॥ ९३ ॥
सत्त्वधर्मधरा देवा रजोधर्मधरा नराः ।
तमोधर्मधरा दैत्या इति सिद्धान्तसंमतम् ॥ ९४ ॥
इति धर्मगुणाधानात्रैधातुकभवालये ।
चतुर्योनिसमुद्भूताः पञ्चतिषु भ्रमन्ति ते ॥ ९५ ॥
तत्रापि कर्मभेदेन जातिभेदा ह्यनेकशः ।
जातिष्वपि च सर्वासु स्वकर्मपरिणामतः ॥ ९६ ॥
सत्त्वा नैकविधा जाता अधमोत्तममध्यमाः ।
ये सत्त्वास्तामसा रौद्रा हिंसाकर्मानुसंरताः ।
तेऽधोभुवनसंजाता वसन्ति क्लेशभागिनः ॥ ९७ ॥
रजोधर्मरता ये हि रागचर्यानुसारिणः ।
ते सत्त्वा भूमिसंजाता वसन्ति मानुषादयः ॥ ९८ ॥
सत्त्वधर्मरता ये तु सात्विकाः शान्तचारिणः ।
ते देवा निर्मलानन्दा वसन्ति स्वर्गतिं गताः ॥ ९९ ॥
तथैते सर्वसत्त्वाश्च गुणधर्मानुसारतः ।
स्वकृतं कर्म भुञ्जन्तो भ्राम्यन्ति त्रिभवालये ॥ १०० ॥
वृद्धिं प्राप्य गुणाश्चैत्यमेकैकं गुणवृद्धितः ।
* * * * * ॥ १०१ ॥
आकाशस्य गुणश्चैकः शब्द एव न चापरः ।
शब्दस्पर्शौ च वायोर्वै द्वौ गुणौ परिकीर्तितौ ॥ १०२ ॥
अग्नेः शब्दश्च स्पर्शश्च रूपमेव त्रयो गुणाः ।
शब्दस्पर्शरूपरसाश्चत्वार्येव समीरणे ॥ १०३ ॥
स्पर्शः शब्दो रसो रूपं गन्धश्च पृथिवीगुणाः ।
एवं मिलितयोगैश्च ब्रह्माणोत्पत्तिरुच्यते ॥ १०४ ॥

सर्वे जीवा मिलित्वैव ब्रह्माणांश्च समुद्भवाः।
चतुरशीतिलक्षाश्च प्रोक्ता वै जीवजातयः ॥ १०५ ॥
धर्मतः सुखिनो भूताः पापतो दुःखभागिनः।
मिश्रतो मिश्रभुक्तार इत्युक्तमवदानिकैः ॥ १०६ ॥
भारतेऽपि तथा प्रोक्तमृषिभिः कर्मवादिभिः।
सप्त व्याधा दशारण्ये मृगाः कालिञ्जरे गिरौ ॥ १०७ ॥
चक्रवाकौ शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे।
तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १०८ ॥
उक्तं च मानवे धर्मे मुनिना मनुना * *।
मिथ्याजीवेन जीवन् यः पतितो ब्राह्मणो ह्यसौ ॥ १०९ ॥
वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च।
तथैव सहसुप्तस्य निष्कृतिर्नोपलभ्यते ॥ ११० ॥
शूद्रीहस्तेन यो भुङ्क्ते मासमेकं निरन्तरम्।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतश्च स प्रजायते ॥ १११ ॥
अधीत्य चतुरो वेदान् साङ्गोपाङ्गांश्च तत्त्वतः।
शूद्रात्प्रतिग्रहग्राही ब्राह्मणो जायते खरः ॥ ११२ ॥
खरो द्वादश जन्मानि षष्टिजन्मानि सूकरः।
श्वानः सप्ततिजन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ११३ ॥
तथोक्तमवदानेऽपि बुद्धेनाद्वयवादिना।
ब्राह्मणोऽदत्तमादाय बभूव वानराधिपः ॥ ११४ ॥
तत्र स बुद्धनाथाय ददौ च पणसं मुदा।
ततश्च मानवो भूत्वा पांशुदाता ह्यभूच्छिशुः ॥ ११५ ॥
तत्कर्मफलतो राजा सर्वानन्दो बभूव सः।
तत्रापि बुद्धनाथाय पिण्डपातं ददौ मुदा ॥ ११६ ॥
तद्दीपंकरप्रसादेन बोधिसत्त्वोऽभवन्नृपः।
सर्वपारमिताः पूर्य बुद्धोऽपि स भविष्यति ॥ ११७ ॥
इत्युक्तमवदानेऽपि जिनेनाद्वयवादिना।
तस्माद्धेतं विजानीया न जीवो ब्राह्मणः स्मृतः ॥ ११८ ॥
जात्यापि ब्राह्मणो नैव संस्कृतस्तु द्विजो भवेत्।
जात्या चेद्ब्राह्मणो भूतो वृथा स्यात्संस्कृतेर्विधिः ॥ ११९ ॥

स्मृतौ हि तत्तथा प्रोक्तं ना जात्या धर्मतो द्विजः ।
* * * * * * * * ॥ १२० ॥
धर्मसंस्कृतिवृत्तिस्थः श्वपचोऽपि द्विजो भवेत् ।
तथा हि मानवे धर्मे मनुनाभिहितं खलु ॥ १२१ ॥
अरणीगर्भसंभूतः कठिनाख्यो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥ १२२ ॥
कैवर्तिगर्भसंभूतो व्यासो नाम महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥ १२३ ॥
उर्वशीगर्भसंभूतो वसिष्ठाख्यो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥ १२४ ॥
हरिणीगर्भसंभूतो ऋष्यशृङ्गो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥ १२५ ॥
चण्डालीगर्भसंभूतो विश्वामित्रो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥ १२६ ॥
ताण्डुलीगर्भसंभूतो नारदाख्यो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥ १२७ ॥
एवमन्येऽपि सर्वे च ऋषयो ब्रह्मचारिणः ।
तपसा ब्राह्मणा भूता न ब्राह्मणीगर्भसंभवाः ॥ १२८ ॥
धर्मसंस्कारतः सर्वे मानवा ब्राह्मणाः खलु ।
धर्मवृत्तिप्रमाणेन सर्वे स्युर्ब्राह्मणा नराः ॥ १२९ ॥
एकवर्णमिदं सर्वं ब्रह्मसृष्टिसमुद्भवम् ।
धर्मकल्पविकल्पेन चातुर्वर्ण्यं प्रकल्पितम् ॥ १३० ॥
सर्वे वै योनिजा मर्त्याः सर्वे मूत्रपुरीषिणः ।
एकेन्द्रियक्रियार्थाश्च तस्माच्छीलगुणैर्द्विजाः ॥ १३१ ॥
शूद्रोऽपि शीलसंपन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात्प्रत्यवरो भवेत् ॥ १३२ ॥
गुणधर्मैस्तथा शीलैर्वर्णा ह्यनेकजातयः ।
ब्रह्मजेषु हि सर्वेषु नरेषु किं विशेषता ॥ १३३ ॥
यथा भस्मनि सौवर्णे विशेष उपलभ्यते ।
ब्राह्मणे चान्यजातौ वा न विशेषोऽस्ति वै तथा ॥ १३४ ॥
यथा प्रकाशतमसोर्विशेष उपलभ्यते ।
ब्राह्मणे चान्यजातौ वा विशेषो नैव विद्यते ॥ १३५ ॥

न हि ब्राह्मण आकाशान्मरुतो वा समुद्भवः ।
भित्त्वा वा पृथिवीं जातो जातवेदा यथारणेः ॥ १३६ ॥
ब्राह्मणा योनितो जाताश्चण्डाला अपि योनितः ।
श्रेष्ठत्वे वृषलत्वे च किं वास्ति भेदकारणम् ॥ १३७ ॥
ब्राह्मणोऽपि मृतोत्सृष्टो जुगुप्स्योऽशुचिरुच्यते ।
वर्णास्तथव चाप्यन्ये का नु तत्र विशेषता ॥ १३८ ॥
यथा सिंहादिजन्तूनां पदादिभेदलक्षणम् ।
देहसंस्थानलिङ्गैश्च नराणां किं विशेषता ॥ १३९ ॥
यथा हंसमयूरादिपक्षिणां च विशेषता ।
मुखादिवर्णशब्दैश्च नराणां नास्ति भेदता ॥ १४० ॥
यथा च कृमिकीटानां कायसंस्थानभेदता ।
तथैव नरजातीनां नैवास्ति भेदलक्षणम् ॥ १४१ ॥
यथा भूरुहवृक्षाणां पत्राद्याकारभेदता ।
तथा नास्ति मनुष्याणामाकृतेर्भेदलक्षणम् ॥ १४२ ॥
तृणौषधादिशस्यानां यथाकृतिविशेषता ।
मानवानां तथा नास्ति संस्थानं भिन्नलक्षणम् ॥ १४३ ॥
धान्यादिव्रीहिजातीनां वर्णाकारादिलक्षणम् ।
तथा नास्ति मनुष्याणां वर्णाकारविशेषता ॥ १४४ ॥
जातिकुन्दादिपुष्पाणां यथा वर्णादिभेदता ।
मानवानां तथा नास्ति वर्णगन्धादिभेदता ॥ १४५ ॥
जलजानां च पुष्पाणां पद्मादीनां विशेषता ।
वर्णसंस्थानगन्धाश्च नराणां तु तथा न हि ॥ १४६ ॥
यथाम्रादिफलानां च स्वादादिगुणभेदता ।
मनुजानां तथा नास्ति मांसास्थिगुणभेदता ॥ १४७ ॥
यथा षड्रसजातीनां गुणास्वादादिभेदता ।
तथा नास्ति मनुष्याणां षडिन्द्रियविशेषता ॥ १४८ ॥
यथा हेमादिधातूनां द्रव्यवर्णादिभेदता ।
तथा नास्ति मनुष्याणां संस्थानवर्णभेदता ॥ १४९ ॥
यथा वज्रादिरत्नानां संस्थानवर्णभेदता ।
तथा नास्ति मनुष्याणां शरीराकारभेदता ॥ १५० ॥
सुमर्मांसादिभेदाश्च षडिन्द्रियसमास्तथा ।
एकाशतो निरासो न पुनो देहेषु भेदता ॥ १५१ ॥

यथा हि वालका बाला क्रीडमाना महापथे ।
पांशुपुञ्जानि संपिण्ड्य स्वयं नामानि कुर्वते ॥ १५२ ॥
इदं क्षीरमिदं मांसमिदं घृतमिदं दधि ।
न च वालस्य वचनात्पांशवोऽन्ना भवन्ति हि ॥ १५३ ॥
वर्णास्तथैव चत्वारः सुभूत इति कल्पिताः ।
पांशुपुञ्जाभिधानेन योगोऽप्येष न विद्यते ॥ १५४ ॥
न केशेन न कर्णेन न शीर्षेण न चक्षुषा ।
न मुखेन न नासाया न ग्रीवया न बाहुना ॥ १५५ ॥
नोरसा न च पार्श्वेन न पृष्ठेनोदरेण वा ।
नोरुभ्यामथ जङ्घाभ्यां पाणिपादनखैर्न च ॥ १५६ ॥
न स्वरेण न वर्णेन न सर्वांशैर्न मैथुनैः ।
नैका विशेषता वापि मनुष्येषु न विद्यते ॥ १५७ ॥
तथा नास्ति यथान्यासु जातेर्लिङ्गं पृथक्पृथक् ।
सामान्यकारणं मन्ये किंचिन्न भेदलक्षणम् ॥ १५८ ॥
संज्ञामात्रेण कल्प्यन्ते ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा ।
वैश्याः शूद्रास्तथान्येऽपि संज्ञामात्रे हि कीर्तिताः ॥ १५९ ॥
यथैकवृक्षजातानां फलानां नास्ति भेदता ।
तथैकमनुजातानां किं विशेषत्वलक्षणम् ॥ १६० ॥
गुणधर्मानुचारेण जातिभेदा भवन्ति हि ।
चातुर्वर्ण्यमिदं लोके सर्वं हि मनुसंभवम् ॥ १६१ ॥
गुणधर्मप्रमाणेन जातेर्नैव प्रमाणता ।
तथा च प्रोच्यते बौद्धैरवदानार्यकोविदैः ॥ १६२ ॥
मानवा ये प्रशान्तास्था सत्यधर्मव्रतान्विताः ।
ब्राह्मणास्ते महाशुद्धाश्चतुर्ब्रह्मविहारिणः ॥ १६३ ॥
परिग्रहान् परित्यज्य वनप्रस्थनिवासिनः ।
ये भजन्ति सदा ब्रह्म वानप्रस्था हि ते द्विजाः ॥ १६४ ॥
षट्कर्मनिरता ये तु श्रोत्रिया गृहवासिनः ।
महायज्ञसमाचारा उपाध्याया हि ते द्विजाः ॥ १६५ ॥
निरपेक्षाः स्वदेहेऽपि सत्कमाराभिगोचराः ।
भिक्षाशिनो मनस्वास्ते भिक्षवो ब्रह्मवादिनः ॥ १६६ ॥
ये च माराग्निनिर्जित्य निःसङ्गा धीरमानसाः ।
तपन्ति पुन्यक्षेत्रेषु मानवास्ते तपस्विनः ॥ १६७ ॥

दशाकुशलनिर्मुक्ता दशाकुशलसंरताः ।
सत्यवाचो व्रतस्था ये ऋषयस्ते द्विजोत्तमाः ॥ १६८ ॥
ये च लोकप्रचारेषु विरता धर्ममानसाः ।
वाचंयमाश्च ते भद्रा मुनयः सत्यवादिनः ॥ १६९ ॥
ये च जितेन्द्रियग्रामा निर्मुक्तभवचारकाः ।
निर्ममा निरहंकारा यतयो योगिनोऽपि ते ॥ १७० ॥
ये च स्थण्डिलमाश्रित्य चरन्ति व्रतमादरात् ।
तेऽपि च मानवा धीराः स्थण्डिला जटिलास्तथा ॥ १७१ ॥
ये च भस्मविलिप्ताङ्गा हाराभरणभूषिताः ।
कापालिकाश्च ते वीराः श्मशानव्रतचारिणः ॥ १७२ ॥
ये समिद्धव्यद्रव्याणि जुह्वत्यग्नौ समाहिताः ।
ते होतारश्च यज्वानो वेदधर्मार्थसाधकाः ॥ १७३ ॥
ये च क्षत्राणि रक्षन्तः पालयन्ति सदा प्रजाः ।
सत्त्वरक्षाव्रताचाराः क्षत्रियास्ते नृपा नराः ॥ १७४ ॥
ये रक्षयन्ति धर्मार्थे लोकान्नीतिप्रयोजकाः ।
राजानस्ते महावीराः सर्वधर्माभिपालकाः ॥ १७५ ॥
ये च सत्त्वहिताधाने विविधार्थानुकारिणः ।
वेशयन्ति प्रजा धर्मे वैश्यास्ते हि नरोत्तमाः ॥ १७६ ॥
व्रताचारविहीना ये सत्त्वरक्षार्थचारिणः ।
मन्यन्ते सेवया शुद्धिं शूद्रास्ते श्रेष्ठिनस्तथा ॥ १७७ ॥
ये च क्षेत्राणि कर्षन्ति धान्यादिव्रीहिसाधकाः ।
कृषिकास्ते नरा धान्यैः सत्त्वजीवानुपोषकाः ॥ १७८ ॥
साधयन्ति महत्कार्यं धनादिवस्तुसंग्रहैः ।
वणिक्कर्माभिसंयुक्ता वणिजस्ते महोत्तमाः ॥ १७९ ॥
ये च सार्थान् समाहृत्य रत्नाकरसमागताः ।
साधयन्ति च रत्नानि सार्थवाहाश्च ते नराः ॥ १८० ॥
तथान्ये शिल्पविद्यादीन्ये च कुर्वन्ति मानवाः ।
शिल्पिनस्ते तथान्येऽपि स्वर्णकारादयो नराः ॥ १८१ ॥
ज्योतिर्विद्याविदो ये च गणयन्ति दिवानिशम् ।
युगान्तकालविज्ञाता गणकास्तेऽपि मानवाः ॥ १८२ ॥
धातुदोषाण्यभिज्ञाय लोकानां परिचारकाः ।
भैषज्यं ये ददन्त्येवं भिषजस्ते हि वैद्यकाः ॥ १८३ ॥

भूतदोषाण्यभिज्ञाय बलिपूजाविधानतः।
शमयन्ति च ये भूतान्भौतिकास्तेऽपि मानवाः॥ १८४॥
एवं चान्येऽपि ये सत्त्वा यद्यत्कर्मानुचारिणः।
तत्तत्कर्मानुशीलेन जातिधर्मप्रवृत्तिकाः॥ १८५॥
ततो ये मानवाः क्रूरा निर्दयाः सत्त्वहिंसकाः।
चण्डवृत्तिप्रचाराश्च चण्डाला इति ते स्मृताः॥ १८६॥
ये भजन्ति शिवं नित्यं शिवभक्तिपरायणाः।
ते शैवा मनुजा ज्ञेयाः शिवधर्मानुचारतः॥ १८७॥
ये भजन्ति विष्णुं नित्यं विष्णुभक्तिपरायणाः।
विष्णुधर्मसमाचाराद्वैष्णवास्तेऽपि मानवाः॥ १८८॥
ब्रह्माणं ये भजन्त्येव ब्रह्मभक्तिपरायणाः।
ब्रह्मधर्मसमाचाराद्ब्राह्मणास्तेऽपि मानवाः॥ १८९॥
ये भजन्ति महारौद्रं भैरवभक्तिमानसाः।
महारौद्राश्च ते ख्याता भैरविकाश्च मानवाः॥ १९०॥
ये च माहेश्वरीं देवीं भजन्ति कुलधर्मिणः।
माहेश्वरीव्रताधाराः कालिकास्तेऽपि मानवाः॥ १९१॥
ये भजन्ति सदा बुद्धं बौद्धधर्मपरायणाः।
तेऽपि च मानवा बौद्धाः संबोधिपदसाधिनः॥ १९२॥
ये भजन्ति जिनं चैव जैनधर्मपरायणाः।
तेऽपि च मनुजा जैना जैनधर्मानुचारणात्॥ १९३॥
एवं चान्येऽपि ये सत्त्वा व्रतचर्यानुलिङ्गिनः।
तेऽपि च मानवाः सर्वे धर्मचर्यानुवर्णिनः॥ १९४॥
यादृशं साध्यते कर्म तादृशी जातिता भवेत्।
प्रजापतिर्हि चैकत्वे निर्विशेषोऽभवद्यतः॥ १९५॥
न चेन्द्रियेषु नानात्वं क्रियावादेन दृश्यते।
ब्राह्मणे चान्यजातौ वा नैषां किंचिद्विशिष्यते॥ १९६॥
न ह्यात्मनः समुत्कर्षाच्छ्रेष्ठत्वमिह युज्यते।
शुक्रशोणितसंभूतं योनिजं सर्वमेव हि॥ १९७॥
चातुर्वर्ण्यमिदं लोकमिति तीर्थ्यैर्विकल्पितम्।
ब्रह्मजा ब्राह्मणा नैवं धर्मसंस्कारजाः खलु॥ १९८॥
यदि वा ब्रह्मजा विप्रा ब्राह्मणी कुत्र संभवा।
ब्राह्मण्यपि तथा चैव ब्रह्मजा यदि सांप्रतम्॥ १९९॥

ब्राह्मणस्य च सा भार्या स्याच्चैवेदं न युक्तितः ।
न भार्या भगिनी युक्ता ब्रह्मणां ब्रह्मजा यदि ॥ २०० ॥
न सत्त्वा ब्रह्मणो जाताः कर्मसंस्कारजास्त्वमी ।
निहीनोत्कृष्टमध्याश्च सत्त्वा नानाश्रयाः पृथक् ॥ २०१ ॥
तेषां हि जातिसामान्याद्ब्राह्मणे क्षत्रिये तथा ।
वैश्यशूद्रे तथान्येषु समं ज्ञानं प्रवर्तते ॥ २०२ ॥
शीलं प्रधानं न कुलं प्रधानं कुलेन किं शीलविवर्जितेन ।
बहवो नरा नीचकुलप्रसूताः स्वर्गं गताः शीलमुपेत्य धीराः ॥ २०३ ॥
न जातिर्दृश्यते देवैः शीलः कल्याणकारकः ।
चण्डालोऽपि हि शीलस्थस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २०४ ॥
सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म शीलश्चेन्द्रियसंयमः ।
सर्वभूतदया ब्रह्म एतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ २०५ ॥
सत्यं नास्ति तपो नास्ति नास्ति चेन्द्रियसंयमः ।
सर्वभूतदया नास्ति एतच्चण्डाललक्षणम् ॥ २०६ ॥
देवमनुष्यनारीणां तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
मैथुनं नाधिगच्छन्ति ते नरा ब्राह्मणाः खलु ॥ २०७ ॥
शूद्रीहस्तेन यो भुङ्क्ते मासमेकं निरन्तरम् ।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः स श्वा प्रजायते ॥ २०८ ॥
शूद्रीपरिवृतो विप्रः शूद्री च गृहमेधिनी ।
वर्जितः पितृदेवैश्च रौरवं सोऽधिगच्छति ॥ २०९ ॥
तस्माद्धर्मतपःशीलसंयमज्ञानतो द्विजः ।
न त्वेतैर्हि विना विप्रः किं स्यात्संस्कारमात्रतः ॥ २१० ॥
तत्र शरीरसंस्कारमात्रेण ब्राह्मणो भवेत् ।
संस्कृतेन द्विजो वा चेच्छूद्रोऽपि संस्कृतो द्विजः ॥ २११ ॥
यदि विप्रः शरीरः स्यात्पावको ब्रह्महा भवेत् ।
ब्रह्महत्या च बन्धूनां शरीरदहनाद्भवेत् ॥ २१२ ॥
ब्राह्मणबीजसंभूतः शूद्रोऽपि न कथं द्विजः ।
तस्माद्धि ब्राह्मणो नैव देहसंस्कारमात्रतः ॥ २१३ ॥
सद्यः पतति मांसेन धान्यजक्षीरविक्रयी ।
ब्राह्मणोऽपि भवेच्छूद्रः सुरया लवणेन च ॥ २१४ ॥
आकाशगामिनो विप्राः पतिता मांसभक्षणात् ।
विप्राणां पतनं दृष्ट्वा ततो मांसानि वर्जयेत् ॥ २१५ ॥

भक्ष्यन्ते येन मांसानि भक्ष्यते तेन किं न हि।
अभक्ष्यभक्षणाच्चैव ब्राह्मणः पतितो भवेत्॥ २१६॥
पतितो ब्राह्मणश्चैवं संस्कारं नार्हते पुनः।
तस्माज्ज्ञानं विना नैव शरीरो ब्राह्मणो भवेत्॥ २१७॥
ज्ञानवान् हि भवेत्पूज्यो ब्राह्मणा अपि मानवाः।
समानेषु च देहेषु कुत्राप्यस्ति विशेषता॥ २१८॥
तस्माज्ज्ञानप्रमाणेन न शरीरप्रमाणता।
यथा करोति भाण्डानि मृत्तिकयैव भार्गवः॥ २१९॥
मृत्तिकाया न भेदोऽस्ति तत्कृतभाजनेष्वपि।
किं तु प्रक्षिप्तवस्तूनां संज्ञया ख्यायते खलु॥ २२०॥
प्रक्षिप्तं यत्र यद्द्रव्यं तद्भाण्डं तेन लक्ष्यते।
ज्ञानधर्मगुणाचारैर्लक्ष्यते मानवस्तथा॥ २२१॥
ज्ञानधर्मगुणाचारैर्विहीनो मानवः पशुः।
ज्ञानविज्ञानभेदेन वर्तते गुणभेदता॥ २२२॥
गुणभेदाद्भवेद्धर्मभेदा च संप्रजायते (?)।
धर्मभेदात्ततः कर्मभेदता संप्रवर्तते॥ २२३॥
कर्मभेदात्तथाचारभेदता च प्रवर्तते।
तथाचारविशेषेण जातिभेदाः प्रवर्तिताः॥ २२४॥
महाभूतसमुद्भूतस्कन्धेष्वायतनेषु च।
सर्वजन्तुशरीरेषु समेषु का विशेषता॥ २२५॥
ज्ञानविज्ञानमात्रेण भिद्यन्ते खलु मानवाः।
ज्ञानविज्ञानपात्रत्वात्पूज्यन्ते नीचजा अपि॥ २२६॥
ज्ञानविज्ञानहीनत्वान्मानवोऽपि न पूज्यते।
पशुवत्स नराकारः ततः पूजा न चाकृतेः॥ २२७॥
ज्ञानेनापि द्विजो नैव कर्माचारप्रमाणतः।
ज्ञानेन यदि वा विप्रः शूद्रोऽपि ब्राह्मणो भवेत्॥ २२८॥
अन्येऽपि बहवः सन्ति सकैवर्तादिनीचजाः।
ज्ञानवन्तश्च ये धीरास्तेऽपि स्युर्ब्राह्मणाः खलु॥ २२९॥
तस्माच्च ज्ञानमात्रेण ब्राह्मणो न भवेत्खलु।
कर्माचारप्रमाणेन न ज्ञानस्य प्रमाणता॥ २३०॥
कर्मणापि द्विजो नैव शुद्धाचारप्रमाणतः।
कर्मणा वै द्विजाश्चैवं सर्वे स्युर्ब्राह्मणाः खलु॥ २३१॥

सन्ति हि बहवो लोके महायज्ञादिकर्मिणः ।
क्षत्रियवैश्यशूद्राश्च कथं न ब्राह्मणा नु ते ॥ २३२ ॥
तस्मान्न कर्ममात्रेण ब्राह्मणाः स्युर्नराः खलु ।
नापि स्वाचारमात्रेण ब्राह्मणाः स्युस्तथा नराः ॥ २३३ ॥
यदि स्वाचारतो विप्रः सर्वे स्युर्ब्राह्मणाः खलु ।
ये ये स्वाचारवन्तश्च ते ते स्युर्ब्राह्मणाः किल ॥ २३४ ॥
सन्ति च बहवः शूद्राः शुद्धाचारसमन्विताः ।
व्रतोपवासधर्मिष्ठा नीचजा अपि सन्ति च ॥ २३५ ॥
तेऽपि स्युर्ब्राह्मणाश्चैवं यथाचारप्रमाणता ।
तस्मादाचारमात्रेण ब्राह्मणा नैव मानुषाः ॥ २३६ ॥
वेदेनापि तथा नैव ब्राह्मणाः स्युर्नरोत्तमाः ।
यदि वेदैर्भवेद्विप्रो राक्षसोऽपि द्विजः खलु ॥ २३७ ॥
तथाभूद्रावणो नाम राक्षसो वेदपारगः ।
सर्वेऽपि राक्षसाश्चैवं वेदकर्मानुचारकाः ॥ २३८ ॥
कथं ते ब्राह्मणा नैव यदि वेदाद् द्विजो भवेत् ।
तस्माच्च वेदमात्रेण नैव स्युर्ब्राह्मणाः खलु ॥ २३९ ॥
सत्यधर्मप्रमाणेन सर्वमेकं जगत्त्रयम् ।
चातुर्वर्ण्यमिदं लोके तीर्थिकैरिति कल्पितम् ॥ २४० ॥
तथा च कल्प्यते लोकबोधार्थमिति तीर्थिकैः ।
स्वयंभूदेहसंभूतं चातुर्वर्ण्यमिदं खलु ॥ २४१ ॥
मुखतो ब्राह्मणो जातो बाहुभ्यां क्षत्रियः स्मृतः ।
ऊरुभ्यां संभवो वैश्यः पद्भ्यां शूद्रः समुद्भवः ॥ २४२ ॥
तथा चेदिह भवेद्दोषो धर्मेषु वर्णवादिनाम् ।
अगम्यगमनाद्येवं कथं धर्मविशुद्धिता ॥ २४३ ॥
यदि विप्रो मुखाज्जातो ब्राह्मणी कुत्र संभवा ।
ब्राह्मण्यपि मुखाज्जाता स्वसा भार्या कथं ननु ॥ २४४ ॥
तथा च क्षत्रिया जाता बाहुभ्यामेव चेत्तथा ।
क्षत्रियस्य भवेद्भार्या क्षत्रिया भगिनी खलु ॥ २४५ ॥
वैश्यापि हि तथा चैवमूरुभ्यामेव संभवा ।
वैश्यस्यापि भवेद्भार्या वैश्या तु भगिनी स्वसा ॥ २४६ ॥
पद्भ्यां जातो यथा शूद्रः शूद्री चापि तथोद्भवा ।
शूद्रस्यापि भवेद्भार्या शूद्री हि भगिनी खलु ॥ २४७ ॥

न युक्ता भगिनी भार्या तथा धर्मः कथं भवेत्।
अगम्यगमनाच्चैवमधर्म एव संभवेत्॥ २४८॥
ततोऽत्यन्तविरुद्धं स्याद्ब्रह्मजा ब्राह्मणा यदि।
धर्मक्रियाविशेषात्तु वर्णावस्थाः प्रतिष्ठिताः॥ २४९॥
भारतेऽपि तथा चैवं धर्मराजो युधिष्ठिरः।
वैशम्पायनमागम्य प्राञ्जलिः पर्यपृच्छत॥ २५०॥
के ते ये ब्राह्मणाः प्रोक्ताः किं वा ब्राह्मणलक्षणम्।
एतदिच्छामि भो ज्ञातुं तद्भवान् व्याकरोतु मे॥ २५१॥
इति श्रुत्वा महाविज्ञो वैशम्पायन आदरात्।
प्रत्युवाचेति कौन्तेय शृणु तत्कथ्यते मया॥ २५२॥
क्षान्त्यादिभिर्गुणैर्युक्तस्त्यक्तदण्डो निरामिषः।
न हन्ति सर्वभूतानि प्रथमं ब्राह्मलक्षणम्॥ २५३॥
यदा सर्वपरद्रव्यं पथि वा यदि वा गृहे।
अदत्तं नैव गृह्णाति द्वितीयं ब्राह्मलक्षणम्॥ २५४॥
त्यक्तक्रूरस्वभावस्तु निर्ममो निःपरिग्रहः।
मुक्तश्चरति यो नित्यं तृतीयं ब्राह्मलक्षणम्॥ २५५॥
देवमनुष्यनारीणां तिर्यग्योनिगतेष्वपि।
मैथुनं हि सदा त्यक्तं चतुर्थं ब्राह्मलक्षणम्॥ २५६॥
सत्यं शौचं दया शौचं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया शौचं तपः शौचं च पञ्चमम्॥ २५७॥
पञ्चलक्षणसंपन्न ईदृशो यो भवेद् द्विजः।
तमहं ब्राह्मणं ब्रूयां शेषाः शूद्राः युधिष्ठिर॥ २५८॥
न कुलेन न जात्या च क्रियाभिर्ब्राह्मणो न च।
चाण्डालोऽपि हि वृत्तस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिर॥ २५९॥
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च विशुद्धात्मापरिग्रहः।
फलेष्वनभिलिप्साय ब्राह्मणः स्याद्युधिष्ठिर॥ २६०॥
एकवर्णमिदं विश्वं पूर्वमासीद्युधिष्टिर।
कर्मक्रियाविशेषेण चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम्॥ २६१॥
सर्वे वै योनिजा मर्त्याः सर्वे मूत्रपुरीषिणः।
एकेन्द्रियक्रियार्थाश्च तस्माच्छीलगुणैर्द्विजाः॥ २६२॥
शूद्रोऽपि शीलसंपन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत्।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रादप्यवरो भवेत्॥ २६३॥

पञ्चेन्द्रियार्णवं घोरं यदि शूद्रोऽपि तीर्णवान् ।
तस्मै दानं प्रदातव्यमप्रमेयं युधिष्ठिर ॥ २६४ ॥
न जातिर्दृश्यते राजन् गुणाः कल्याणकारकाः ।
गुणविद्यानिधिर्विद्वान् ब्राह्मणो ब्रह्मचारणात् ॥ २६५ ॥
जीवितं यस्य लोकार्थे धर्मार्थे यस्य जीवितम् ।
अहोरात्रं चरेन्मुक्तस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २६६ ॥
परित्यज्य गृहावासं ये स्थिता मोक्षकाङ्क्षिणः ।
कामेष्वसक्ताः कौन्तेय ब्राह्मणास्ते युधिष्ठिर ॥ २६७ ॥
अहिंसा निर्ममत्वं वासत्कृत्यस्य विवर्जनम् ।
रागद्वेषनिवृत्तिश्च एतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ २६८ ॥
क्षमा दया दमो दानं सत्यं शौचं स्मृतिर्घृणा ।
विद्या विज्ञानमाधीत्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ २६९ ॥
गायत्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः ।
नाधीत्य चतुरो वेदान् सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ २७० ॥
एकरात्रोषितस्यापि या गतिर्ब्रह्मचारिणः ।
न तां क्रतुसहस्रेण प्राप्नुवन्ति युधिष्ठिर ॥ २७१ ॥
पारगः सर्ववेदानां सर्वतीर्थाभिषिञ्चनैः ।
मुक्तश्चरति धर्मं यो तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २७२ ॥
यदा न कुरुते पापं सर्वभूतेषु दारुणम् ।
कायेन मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ २७३ ॥
यस्य लोकहिते चित्तं मैत्रीयुक्तमिवात्मजे ।
तेन संपद्यते ब्रह्म तस्मान्मैत्रीं विभावय ॥ २७४ ॥
यस्य लोकेषु कारुण्यं स्वात्मजे इव दुःखिते ।
तेन संपद्यते ब्रह्म तस्मात्कारुणिको भव ॥ २७५ ॥
यच्चित्तं मुदितं लोके सुखीभूते इवात्मजे ।
तस्य संजायते ब्रह्म तल्लोके मोदयांश्चर ॥ २७६ ॥
यस्योपेक्षायुतं चित्तं सर्वलोकेष्विवात्मजे ।
तस्य संजायते ब्रह्म तदुपेक्षायुतश्चर ॥ २७७ ॥
एतद्धि परमं ब्रह्मविहारं ब्रह्मसाधनम् ।
ज्ञात्वा लोकहितार्थेन चर ब्रह्मविहारिणम् ॥ २७८ ॥
ततः क्लेशान् विनिर्जित्य स्वात्मचित्तसमाहितः ।
ब्रह्मप्रसिध्यालम्ब्य स्थिरीभव समाधिषु ॥ २७९ ॥

तथा ब्रह्मगुणाधानाद्ब्रह्मर्षिस्त्वं भवेः किल।
पश्चाभिज्ञपदप्राप्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयाः॥ २८०॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं स सुभूतिर्गुणोत्सुकः।
तथेति प्रतिसंश्रुत्य ध्यानचर्यामुपाश्रयत्॥ २८१॥
ततोऽन्यद्वनमाश्रित्य गुरोराज्ञासमाधृतः।
सर्वेन्द्रियविनिर्जित्या व्यहरद्ध्यानतत्परः॥ २८२॥
तत्राधिवसतोऽस्यापि क्रोधाग्निः समुदीरितः।
कर्माधानबलाभ्यासान्नैव शान्तिमुपाययौ॥ २८३॥
तत्र च वनषण्डे या वसन्ती वनदेवता।
सा सुभूतिं महाक्रोधं दृष्ट्वैवं समचिन्तयत्॥ २८४॥
सुभूतिर्ब्राह्मणो ह्येष सर्ववेदार्थपारगः।
सर्वमन्त्रविधानज्ञः सुतीक्ष्णक्रोधबाहुलः॥ २८५॥
कदाचित्कुपितश्चाय क्रोधतः शापवह्निना।
धक्ष्यति पर्वतांश्चापि सपक्षिजन्तुमानवान्॥ २८६॥
समाधिध्यानयुक्तोऽपि नैव चित्तसमाहितः।
ज्ञानविज्ञानधर्मेषु विशेषं नाधिगच्छति॥ २८७॥
यदि बौद्धेषु धर्मेषु नियुक्तोऽयं द्विजोत्तमः।
क्षिप्रं क्लेशान् विनिर्जित्य बोधिचित्तं च लप्स्यति॥ २८८॥
बोधिचित्ते प्रलब्धे तु तदालोकहिते चरेत्।
बोधिसत्त्वो महाविज्ञो भविष्यति न संशयः॥ २८९॥
इति निश्चित्य सा देवी कारुण्यहितमानसा।
तं सुभूतिं समागम्य जगादैवं पुरः स्थिता॥ २९०॥
शृणु वत्स महाभाग यन्मया हितमुच्यते।
धन्योऽसि त्वं महाधीर महर्षिर्द्विजसत्तम॥ २९१॥
किमर्थं वससे चैवमेकाकी निर्जने वने।
निश्चित्तः प्रतिसंलीनः काष्ठपाषाणवद्वृथा॥ २९२॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु यदि वाञ्छास्ति ते यते।
बुद्धस्य वचनं श्रुत्वा चर संबोधिसत्पथे॥ २९३॥
बुद्धो हि भगवान्नाथः सर्वज्ञो लोकनायकः।
मुनीन्द्रः श्रीघनः शास्ता सर्वधर्मानुपालकः॥ २९४॥
तस्यैव धर्मता शुद्धा दशकुशलसंभवा।
पद् च पारमिताः ख्याताः पठेद् दिशंकराः॥ २९५॥

धन्यास्ते भिक्षवश्चैव बुद्धस्योपासकाश्च ये ।
सर्वसत्त्वहितार्थेन संबोधिगुणसाधकाः ॥ २९६ ॥
त्वं चापि हि तथा मत्वा स्वपरात्महितार्थतः ।
त्रिरत्नशरणं गत्वा चर ब्रह्मन् व्रतोत्तमम् ॥ २९७ ॥
ततः क्लेशगणान् हित्वा ब्रह्मचारिञ्जिनेन्द्रवत् ।
साक्षादर्हत्पदं प्राप्य निर्वृतिसुखमाप्नुयाः ॥ २९८ ॥
इति श्रुत्वा सुभूतिः स त्रिरत्नगुणवर्णनाम् ।
तथानुमोदितः प्राह तां देवतां पुरः स्थिताम् ॥ २९९ ॥
तथाहं देवते यामि संबुद्धदर्शनं प्रति ।
त्रिरत्नसमयं प्राप्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादतः ॥ ३०० ॥
यदि तेऽस्ति कृपा देवि मयि मोक्षार्थसाधिनि ।
संबुद्धं दर्शय क्षिप्रं तद्धर्मेषु निवेशय ॥ ३०१ ॥
त्रिरत्नशरणं गत्वा चरिष्ये तद् व्रतोत्तमम् ।
तथाशु कृपया नीत्वा मां विहारे प्रवेशय ॥ ३०२ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य सुभूतेर्वनदेवता ।
विज्ञाय बोधिमार्गेषु चित्तं तथानुमोदितम् ॥ ३०३ ॥
तत एव समागृह्य सुभूतिं ब्रह्मचारिणम् ।
ऋद्ध्या साकाशमार्गेण निनाय जिनमन्दिरम् ॥ ३०४ ॥
सुभूतिस्तत्र संप्राप्तो ददर्श जिनभास्करम् ।
भगवन्तं महासौम्यं लक्षणैः समलंकृतम् ॥ ३०५ ॥
व्यञ्जनैश्च विराजन्तं व्यामप्रभामहोज्ज्वलम् ।
सहस्रकिरणाधिक्यं रत्नाङ्गमिव जङ्गमम् ॥ ३०६ ॥
समन्ततो महाभद्रं जगन्नाथं मुनीश्वरम् ।
सर्वदेवाधिपं सम्यक्संबोधिगुणसागरम् ॥ ३०७ ॥
दृष्ट्वैव सहसा चाथ सुभूतेस्तस्य सर्वथा ।
आघातो यश्च सत्त्वेषु स प्रतिविगतोऽप्यभूत् ॥ ३०८ ॥
ततः प्रसादजातोऽसौ सुभूतिर्द्विजसत्तमः ।
नत्वा पादौ मुनेर्धर्मं श्रोतुं तस्थौ मुदा पुरः ॥ ३०९ ॥
ततोऽसौ भगवांस्तस्य सुभूतेश्चित्तमुद्रताम् ।
ज्ञात्वार्यसत्यधर्माणि दिदेशैवं सविस्तरम् ॥ ३१० ॥
शृणु विप्र महाभाग सर्वसत्त्वहितार्थिनः ।
यदि ते धर्मकाम्योऽस्ति संबोधिपदसाधने ॥ ३११ ॥

सत्कारलाभेषु पराङ्मुखत्वात्सशक्रदेवासुरमानुषाणाम् ।
पूज्यश्च मान्यो अभिवादनीयो बभूव स ब्रह्मविहारचारी ॥ ३२८ ॥

अथ सुभूतिरायुष्मान् समन्वाहरदात्मवान् ।
कुतश्च्युतोऽहमायातः कुत्र केन च कर्मणा ॥ ३२९ ॥
अपश्यत्स ततश्चेति पञ्चजन्मशतानि च ।
नागयोनिसमुत्पन्नस्ततश्च्युत्वाहमागतः ॥ ३३० ॥
यद् द्वेषाभ्यासतश्चासं क्रूरो लोकोपघातकः ।
तेनैव हेतुना चाहं महद्व्यसनमाप्तवान् ॥ ३३१ ॥
इदानीं तु तया चैतं क्रोधं प्रहातुमाचरे ।
यस्यैव हेतुना लोका भ्रमन्ति नरकेषु ते ॥ ३३२ ॥
तस्मादहं चरिष्यामि निःसङ्गो निरहंकृतिः ।
सङ्गाद्धि जायते माया मायायां जायते रतिः ॥ ३३३ ॥
रतौ रागोऽभिजायेत रागे मोहः प्रवर्धते ।
मूढस्य दूयते चित्तं स्वेष्टकार्योपघाततः ॥ ३३४ ॥
उपघाता हते चित्ते क्रोधाग्निः परिदीप्यते ।
क्रोधानलसमुद्दीप्तो दहते स परानपि ॥ ३३५ ॥
यावत्क्रोधानलोद्दीप्तं स्वचित्तं क्लेशवायुभिः ।
तावत्किं तपसाप्येतन्निर्यं दुःखहेतवे ॥ ३३६ ॥
धर्मं सुचरितं पुण्यं दानशीलादिसाधनम् ।
कृतं कल्पसहस्रैर्यद्दहेत्क्रोधानलः क्षणात् ॥ ३३७ ॥
तस्मात्क्रोधाग्निशान्त्यर्थं कृत्वेन्द्रियविनिग्रहम् ।
एकान्ते हि वसेयं च विविक्तारण्यगोचरे ॥ ३३८ ॥
यदा च गरुडेनाहं बलादाकृष्य भक्षितः ।
यतीन् दृष्ट्वानुमोदं च कुर्वन् मृत्युमवाप्तवान् ॥ ३३९ ॥
तेनैव हेतुना चाद्य द्विजातिकुलसंभवः ।
सर्वक्लेशान् विनिर्जित्य ब्रह्मचारी भवाम्यहम् ॥ ३४० ॥
अथापि चेत्तथा चात्र वसेयं जनपदाश्रमे ।
येनचित्क्लेशिनश्चाहं भ्रष्टिमेरमवाप्नुयाम् ॥ ३४१ ॥
इति निश्चित्य चित्तेन सुभूतिर्निरहंकृतिः ।
विविक्तेऽरण्यवासे स निःसङ्गो न्यवसत्सुधीः ॥ ३४२ ॥
तथैकाकी वसंस्तत्र चतुर्ध्यानसंयुतः ।
फलमूलाम्बुसंतुष्टो ब्रह्मचारी मुमोद सः ॥ ३४३ ॥

अथ सङ्गेऽपि ग्रामेषु देशे जनपदेषु च ।
भिक्षाहेतोर्विहर्तुं वा स सकामोऽभवद्यदा ॥ ३४४ ॥
तदा पूर्वमसौ दृष्ट्वा गोचरमभ्यलक्षयत् ।
अहो देशेषु सर्वत्र भवन्ति निर्गुणा जनाः ॥ ३४५ ॥
मानिनो मदमोहान्धा दुष्टा मत्सरिणः शठाः ।
तत्कथं संचरिष्येऽत्र भिक्षाहेतोः कुले कुले ॥ ३४६ ॥
दूषयिष्यन्ति चित्तानि केचिद् दृष्ट्वैव मां यतिम् ।
यद्धेतोर्जनाश्चैवं भ्रमन्ति दुर्गतिष्वपि ॥ ३४७ ॥
कल्पकोटिसहस्राणि नैव मुक्ताश्च दुर्गतेः ।
तदहं सर्वसत्त्वेषु कुन्तपिपीलिकादिषु ॥ ३४८ ॥
दयाचित्तं समालम्ब्य वसेयं ध्यानसंरतः ।
येनैवं सर्वसत्त्वानां भवेच्चित्तं प्रसादितम् ।
तमेव धर्ममाधाय यतिर्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ३४९ ॥
इति संलक्ष्य चित्तेन स सुभूतिः सुबुद्धिमान् ।
विविक्तेऽरण्यदेशेऽपि न्यवसद्ध्यानसंरतः ॥ ३५० ॥
अथ सोऽर्हन्निमासानामत्ययाद्बोधिमानसः ।
इत्येवं चिन्तयामास लोकानुग्रहकारणात् ॥ ३५१ ॥
किमत्र ध्यानसंलीनः करोमि लोकबोधनम् ।
कियत्कालं च जीवेयं काष्ठपाषाणवत्स्थितः ॥ ३५२ ॥
केवलं श्रमणस्तुष्टो ध्यानं सौख्यार्थसाधनम् ।
सुखं लब्ध्वापि किं सारं सत्त्वानुग्रहणं विना ॥ ३५३ ॥
तस्माद्ध्यानात्समुत्थाय सत्त्वानुग्रहकारणात् ।
ऋद्धिं प्रदर्श्य संबोधौ स्थापयिष्ये महज्जनान् ॥ ३५४ ॥
इति निश्चित्य चित्तेन स सुभूतिः समृद्धिमान् ।
शरणानां जिनमार्गेण प्रातिहार्यमदर्शयत् ॥ ३५५ ॥
तदृद्धिनिर्मितान्येव गरुडानां महौजसाम् ।
पञ्च कुलशतान्यत्र प्रससिरे समन्ततः ॥ ३५६ ॥
एतांश्च गरुडान् दृष्ट्वा नागाः संत्रसितात्मनः ।
इतस्ततः समुद्भ्रान्ताः सुभूतेः शरणं ययुः ॥ ३५७ ॥
अथ सर्द्धिकेनैव समाश्वास्य सुभूतिना ।
सर्वे नागाः सुपर्णेन्द्रैः परित्राताश्च सर्वतः ॥ ३५८ ॥

पुनस्तेन सुपर्णानां विनयार्थं सुभूतिना ।
स्वर्द्धिबलप्रभावेण महान्नागो विनिर्मितः ॥ ३५९ ॥
तेनाप्येवं सुपर्णानां पञ्चकुलशतानि च ।
अभिद्रुतानि नागेन समन्तत इतस्ततः ॥ ३६० ॥
तेनैवाभिद्रुताः सर्वे गरुडास्त्राससमागताः ।
इतस्ततः समुद्भ्रान्ताः सुभूतेः शरणं ययुः ॥ ३६१ ॥
सुभूतिना तया चैवं सर्वे ते गरुडा अपि ।
स्वर्द्धिबलप्रभावेण समाश्वास्य सुरक्षिताः ॥ ३६२ ॥
एवमृद्धिप्रभावाणि सुभूतेस्तस्य सद्यतेः ।
दृष्ट्वा सर्वे जनौघास्ते सहर्षाद्भुतमाययुः ॥ ३६३ ॥
धन्योऽयमृद्धिमान् भिक्षुरर्हन् संबुद्धसेवकः ।
येनैते रक्षिताः सर्वे नागाश्च गरुडा अपि ॥ ३६४ ॥
इति सोऽर्हन् सुभूतिस्तान् सर्वान् दृष्ट्वा प्रसन्नितान् ।
सद्धर्मे विनयार्थेन मैत्रीधर्ममुपादिशत् ॥ ३६५ ॥
शृणुध्वं मद्वचः सर्वे नागाश्च गरुडास्तथा ।
यदि मे शरणं याथ रमध्वं मैत्रमानसाः ॥ ३६६ ॥
ये एते सुखिनो लोके सर्वे ते मैत्रचारिणः ।
ये एते दुःखिनो लोके सर्वे ते क्रोधिनो नराः ॥ ३६७ ॥
तस्मात्क्रोधप्रहाणाय क्रियतां यत्नमादरात् ।
यावच्चित्ते स्थितं क्रोधं तावन्मैत्री न भाव्यते ॥ ३६८ ॥
न च द्वेषसमं पापं न च मैत्रीसमं तपः ।
तस्मान्मैत्री प्रयत्नेन भावनीया सदादरात् ॥ ३६९ ॥
मनः शमं न गृह्णाति न प्रीतिसुखमश्नुते ।
न निद्रां न धृतिं याति द्वेषशल्ये हृदि स्थिते ॥ ३७० ॥
न द्विषन्तः क्षयं यान्ति यावज्जीवमपि घ्नतः ।
क्रोधमेकं तु यो हन्यात्तेन सर्वे द्विषो हताः ॥ ३७१ ॥
विकल्पेन्धनदीप्तेन जन्तुः क्रोधहविर्भुजा ।
दहत्यात्मानमेवादौ परान् धक्ष्यति वा न वा ॥ ३७२ ॥
जरा रूपवतां क्रोधस्तमश्चक्षुष्मतामपि ।
वधो धर्मार्थकामानां तस्मात्क्रोधो निवार्यताम् ॥ ३७३ ॥
दिव्यभोगानुभोक्ता च प्रासादे मणिमण्डिते ।
सुप्तोऽपि न लभेन्निद्रां क्रोधपर्याकुलो नरः ॥ ३७४ ॥

ऋषिभिर्योगिभिश्चाम्बुफलमूलादितोषितैः ।
दग्धा जनपदाश्चापि क्रोधाच्छापहुताशनैः ॥ ३७५ ॥

यच्छंकरो महारौद्रो निर्घृणो दक्प्रभानलैः ।
ददाह ब्रह्मजं कामं तच्च क्रोधप्रभावतः ॥ ३७६ ॥

यद्राजानो विरुद्धाश्च युद्धं कृत्वा परस्परम् ।
मृत्युं यान्ति जनैः सार्धं तच्चापि क्रोधभावतः ॥ ३७७ ॥

सुहृदो यत्सहायांश्च स्नेहविश्रम्भचारिणः ।
सत्यधर्मावनादत्य घ्नन्ति क्रोधादनार्यकाः ॥ ३७८ ॥

साधवो ये महात्मानः संवृतिधर्मचारिणः ।
तानपि संमुखं घ्नन्ति दुर्वाग्बाणै रुषा खलाः ॥ ३७९ ॥

मातरं जन्मदात्रीं च धात्रीर्वा स्नेहपालिनीः ।
स्वात्मजानिर्दया घ्नन्ति तच्च क्रोधप्रभावतः ॥ ३८० ॥

स्वात्मजाः पितरं यच्च स्नेहसत्कारपालकम् ।
अविगणय्य पापानि घ्नन्ति क्रोधप्रभावतः ॥ ३८१ ॥

गुरून् सद्धर्मशास्तृंश्च कल्याणाध्वावतारकान् ।
अनादत्य भयं पापा घ्नन्ति क्रोधोद्धता नराः ॥ ३८२ ॥

यत्पिता स्वात्मजं पुत्रं पुत्रीं वा बालकामपि ।
निर्दयस्ताडयन् हन्ति तस्मात्क्रोधो महारिपुः ॥ ३८३ ॥

भ्रातरः सहजाश्चापि रोषिता भेदिताशयाः ।
विगृह्णन्ति महाक्रुद्धास्तस्मात्क्रोधो महारिपुः ॥ ३८४ ॥

यत्स्वयं परिणीतापि भार्या धर्मानुचारिणी ।
ताडिता त्यज्यते भर्त्रा क्रोधाच्चतो महद्भयम् ॥ ३८५ ॥

प्रमदापि च भर्तारं स्वामिनं स्नेहकारिणम् ।
कुलधर्ममनादत्य जहाति क्रोधतस्तथा ॥ ३८६ ॥

ये शान्ता यतयो धीराश्चतुर्ब्रह्मविहारिणः ।
तानपि संमुखं दुष्टास्ताडयन्ति रुषान्विताः ॥ ३८७ ॥

शान्तात्मा हितकृद्योगी क्षान्तिवादी वने वसन् ।
सोऽपि शंकल्पितो राज्ञा स्वयमेवासिना रुषा ॥ ३८८ ॥

दानवा घ्नन्ति देवांश्च देवाश्च घ्नन्ति दानवान् ।
अन्योन्यं विग्रहं कृत्वा प्रमथ्नन्ति रुषायुताः ॥ ३८९ ॥

पुनस्तेन सुपर्णानां विनयार्थं सुभूतिना ।
स्वर्द्धिबलप्रभावेण महानागो विनिर्मितः ॥ ३५९ ॥
तेनाप्येवं सुपर्णानां पञ्चकुलशतानि च ।
अभिद्रुतानि नागेन समन्तत इतस्ततः ॥ ३६० ॥
तेनैवाभिद्रुताः सर्वे गरुडास्त्रासमागताः ।
इतस्ततः समुद्भ्रान्ताः सुभूतेः शरणं ययुः ॥ ३६१ ॥
सुभूतिना तथा चैवं सर्वे ते गरुडा अपि ।
स्वर्द्धिबलप्रभावेण समाश्वास्य सुरक्षिताः ॥ ३६२ ॥
एवमृद्धिप्रभावाणि सुभूतेस्तस्य सद्यतेः ।
दृष्ट्वा सर्वे जनौघास्ते सहर्षाद्भुतमाययुः ॥ ३६३ ॥
धन्योऽयमृद्धिमान् भिक्षुरर्हन् संबुद्धसेवकः ।
येनैते रक्षिताः सर्वे नागाश्च गरुडा अपि ॥ ३६४ ॥
इति सोऽर्हन् सुभूतिस्तान् सर्वान् दृष्ट्वा प्रसन्नितान् ।
सद्धर्मे विनयार्थेन मैत्रीधर्ममुपादिशत् ॥ ३६५ ॥
शृणुध्वं मद्वचः सर्वे नागाश्च गरुडास्तथा ।
यदि मे शरणं याथ रमध्वं मैत्रमानसाः ॥ ३६६ ॥
ये एते सुखिनो लोके सर्वे ते मैत्रचारिणः ।
ये एते दुःखिनो लोके सर्वे ते क्रोधिनो नराः ॥ ३६७ ॥
तस्मात्क्रोधप्रहाणाय क्रियतां यत्नमादरात् ।
यावच्चित्ते स्थितं क्रोधं तावन्मैत्री न भाव्यते ॥ ३६८ ॥
न च द्वेषसमं पापं न च मैत्रीसम तपः ।
तस्मान्मैत्री प्रयत्नेन भावनीया सदादरात् ॥ ३६९ ॥
मनः शमं न गृह्णाति न प्रीतिसुखमश्नुते ।
न निद्रां न धृतिं याति द्वेषशल्ये हृदि स्थिते ॥ ३७० ॥
न द्विषन्तः क्षयं यान्ति यावज्जीवमपि घ्नतः ।
क्रोधमेकं तु यो हन्यात्तेन सर्वे द्विषो हताः ॥ ३७१ ॥
विकल्पेन्धनदीप्तेन जन्तुः क्रोधहविर्भुजा ।
दहत्यात्मानमेवादौ परान् धक्ष्यति वा न वा ॥ ३७२ ॥
जरा रूपवतां क्रोधस्तमश्चक्षुष्मतामपि ।
वन्धो धर्मार्थकामानां तस्मात्क्रोधो निवार्यताम् ॥ ३७३ ॥
दिव्यभोगानुभोक्ता च प्रासादे मणिमण्डिते ।
सुप्तोऽपि न लभेन्निद्रां क्रोधपर्याकुलो नरः ॥ ३७४ ॥

ऋषिभिर्योगिभिश्चाम्बुफलमूलादितोषितैः।
दग्धा जनपदाश्चापि क्रोधाच्छापहुताशनैः॥ ३७५॥

यच्छंकरो महारौद्रो निर्घृणो दक्प्रभानलैः।
ददाह ब्रह्मजं कामं तच्च क्रोधप्रभावतः॥ ३७६॥

यद्राजानो विरुद्धाश्च युद्धं कृत्वा परस्परम्।
मृत्युं यान्ति जनैः सार्धं तच्चापि क्रोधभावतः॥ ३७७॥

सुहृदो यत्सहायांश्च स्नेहविश्रम्भचारिणः।
सत्यधर्मावनादृत्य घ्नन्ति क्रोधादनार्यकाः॥ ३७८॥

साधवो ये महात्मानः संवृतिधर्मचारिणः।
तानपि संमुखं घ्नन्ति दुर्वाग्बाणै रुषा खलाः॥ ३७९॥

मातरं जन्मदात्रीं च धात्रीश्चो स्नेहपालिनीः।
स्वात्मजान्निर्दया घ्नन्ति तच्च क्रोधप्रभावतः॥ ३८०॥

स्वात्मजाः पितरं यच्च स्नेहसत्कारपालकम्।
अविगणय्य पापानि घ्नन्ति क्रोधप्रभावतः॥ ३८१॥

गुरून् सद्धर्मशास्तृंश्च कल्याणाभ्यावतारकान्।
अनादृत्य भयं पापा घ्नन्ति क्रोधोद्धता नराः॥ ३८२॥

यत्पिता स्वात्मजं पुत्रं पुत्रीं वा बालकामपि।
निर्दयस्ताडयन् हन्ति तस्मात्क्रोधो महारिपुः॥ ३८३॥

भ्रातरः सहजाश्चापि रोपिता भेदिताशयाः।
विगृह्णन्ति महाक्रुद्धास्तस्मात्क्रोधो महारिपुः॥ ३८४॥

यत्स्वयं परिणीतापि भार्या धर्मानुचारिणी।
ताडिता त्यज्यते भर्त्रा क्रोधात्ततो महद्भयम्॥ ३८५॥

प्रमदापि च भर्तारं स्वामिनं स्नेहकारिणम्।
कुलधर्ममनादृत्य जहाति क्रोधतस्तथा॥ ३८६॥

ये शान्ता यतयो धीराश्चतुर्ब्रह्मविहारिणः।
तानपि संमुखं दुष्टास्ताडयन्ति रुषान्विताः॥ ३८७॥

शान्तात्मा हितकृद्योगी क्षान्तिवादी वने वसन्।
सोऽपि शंकलितो राज्ञा स्वयमेवासिना रुषा॥ ३८८॥

दानवा घ्नन्ति देवांश्च देवाश्च घ्नन्ति दानवान्।
अन्योन्यं विग्रहं कृत्वा प्रमथ्नन्ति रुषाकुलाः॥ ३८९॥

आत्मानमात्मना हत्वा विषशस्त्रानलादिभिः ।
वसन्ति नरके घोरे तेऽपि सर्वे रुषान्विताः ॥ ३९० ॥
ये ये दुष्टाशयाः क्रूराः स्वपरार्थाभिघातकाः ।
पतन्ति नरके घोरे तेऽपि सर्वे रुषाश्रयात् ॥ ३९१ ॥
क्रोधेन भिद्यते लोकः क्रोधेन परिभाप्यते ।
क्रोधेन हिंस्यते जन्तुस्तस्मात्क्रोधो महारिपुः ॥ ३९२ ॥
क्रोधेनैव महारुद्रश्चिच्छेद ब्रह्मणः शिरः ।
तेनैव पातकेनैव भ्रान्तचित्तोऽभवच्छिवः ॥ ३९३ ॥
क्रोधेनैव तथा रुद्रः सुरज्येष्ठात्मजस्य च ।
श्वशुरस्यापि दक्षस्य च्छेदयामास मस्तकम् ।
तत्पापकर्मणा ह्येव शिवोऽप्यभूद्दिगम्बरः ॥ ३९४ ॥
क्रोधेन ध्वंस्यते धर्मः क्रोधेन विलयं गतः ।
क्रोधेन त्यज्यते सत्त्वं तस्मात्क्रोधो महारिपुः ॥ ३९५ ॥
यानि महान्ति पापानि महादुःखभयानि च ।
तानि सर्वाणि दुष्टानि क्रोधचित्तोद्भवानि च ॥ ३९६ ॥
तत्क्रोधादपरो वैरः पातकोऽन्यो न विद्यते ।
तस्मात्क्रोधविनाशाय प्रयतध्वं समाहिताः ॥ ३९७ ॥
येन क्रोधो जितो वैरी ज्ञानवज्रेण साधुना ।
तेन सर्वे जिता दुष्टाः शत्रवो दुःखदायकाः ॥ ३९८ ॥
यस्य चित्ते दया नास्ति क्रोधानलविदाहिनी ।
स साधुपुरुषश्चापि नैव विश्वस्यते जनैः ॥ ३९९ ॥
क्रोधकलङ्कितो यो हि सद्गुणालंकृतो यदि ।
स विद्वानपि नासेव्यो यथा कृष्णोऽहिवेष्टितः ॥ ४०० ॥
दानशीलादिसद्धर्मवृत्तैश्च यदि भूषितः ।
क्रोधवान्न विभात्येव अहिपूर्णो यथा ह्रदः ॥ ४०१ ॥
सर्वविद्याकलाज्ञोऽपि समृद्धः शिल्पवानपि ।
अन्नमद्याद्यभिज्ञोऽपि क्रोधवान्नैव सेव्यताम् ॥ ४०२ ॥
क्रोधवान् हस्यते लोकैः क्रोधवान् वध्यते जनैः ।
क्रोधवान् हीयते मित्रैः क्रोधवान् परिभूयते ॥ ४०३ ॥
क्रोधो धर्मविरुद्धत्वाच्चतुर्वर्गविनाशकृत् ।
तस्मात्क्रोधविनाशाय प्रयतध्वं समाहिताः ॥ ४०४ ॥

क्रोधेन भिद्यते चित्तं भिन्नचित्तो विकीर्यते।
विकीर्णः क्लिश्यते मारैः क्लेशितोऽधैर्यतां व्रजेत् ॥ ४०५ ॥
अधैर्यत्वाद्भवेन्मूढो मूढो दुष्टवशं व्रजेत्।
दुष्टमित्रोपदेशेन कुपथे चरते कुधीः ॥ ४०६ ॥
असन्मार्गे समारूढो विपरीतं समाचरेत्।
विपरीतानुबोधेन भवेदार्यापवादकः ॥ ४०७ ॥
सद्धर्मादीन् प्रतिक्षिप्य प्रतिमादीन् विघातयेत्।
इत्यादिपातकं कृत्वा पञ्चानन्तर्यमाप्नुयात् ॥ ४०८ ॥
ततश्च नरकान् यायाद्रौरवादीन् समन्ततः।
नरकान्नरकं गत्वा महादुःखमवाप्नुयात् ॥ ४०९ ॥
इत्थं दुःखानुवेदी स नरकेषु सदा वसेत्।
नरकेभ्यस्तमुद्धर्तुं जिनोऽपि नैव शक्नुयात् ॥ ४१० ॥
यावन्ति पापदुःखानि दुर्वृत्तिप्रभवानि हि।
तानि सर्वाणि जानीध्वं क्रोधचित्तोद्भवानि हि ॥ ४११ ॥
सर्वेषां पातकानां तत्क्रोधं मूलं जगुर्जिनाः।
धर्माणां तु क्षमा मूलं यतः सौख्यं प्रवर्तते ॥ ४१२ ॥
इति क्रोधं विनिर्जित्य क्षमैव साध्यतां सदा।
मैत्रीचित्तं समालम्ब्य विहरध्वं यथासुखम् ॥ ४१३ ॥
आत्मनीव दया स्याच्चेत्स्वजने वा यथा जने।
कस्य नाम भवेच्चित्तमधर्मप्रणयाशिवम् ॥ ४१४ ॥
दयावियोगतो लोकः परमामेति विक्रियाम्।
मनोवाक्कायविस्पन्दैः स्वजनेऽपि यथा जने ॥ ४१५ ॥
धर्मार्थी न त्यजेदस्माद्दयामिष्टफलोदयाम्।
सुवृष्टिरिव शस्यानि गुणान् सा हि प्रसूयते ॥ ४१६ ॥
दयाक्रान्तं चित्तं न भवति परद्रोहरभसं
शुचौ तस्मिन् वाणी व्रजति विकृतं नैव च तनुः।
विवृद्धा तस्यैवं परहितरुचिर्मैत्र्यनुगता
प्रदानक्षान्त्यादीञ्जनयति गुणान् कीर्त्यनुसृतान् ॥ ४१७ ॥
दयालुर्नोद्वेगं जनयति परेषामुपशमा-
द्दयालुर्विश्वास्यो भवति जगतां बान्धव इव।
न संरम्भक्षोभः प्रभवति दयाधीरहृदये
न कोपाग्निश्चित्ते ज्वलति हि दयातोयशिशिरे ॥ ४१८ ॥

संक्षेपेण दयामतः स्थिरतया पश्यन्ति धर्मं बुधाः
को नामास्ति गुणः स साधुदयितो यो नानुयातो दयाम् ।
तस्मात्पुत्र इवात्मनीव च दयां नीत्वा प्रकर्षं जने
सन्मैत्र्या विहरन्त एव मुदितां प्रोद्भावयध्वं सदा ॥ ४१९ ॥

दयालोर्हृदये जाता मैत्री सद्धर्मसाधनी ।
तस्माद्दयां हृदि स्थाप्य मैत्री लोके प्रसार्यताम् ॥ ४२० ॥

मैत्रीमान् पुरुषः साधुर्देवैरपि प्रशस्यते ।
विश्वस्यते सदा सद्भिर्बान्धवैः स्वजनैर्जनैः ॥ ४२१ ॥

मैत्रीमान् सज्जनो लोके निर्गुणोऽपि प्रशोभते ।
मैत्रीमान् सन्मतिर्बन्धुर्लोकानां जगतामपि ॥ ४२२ ॥

मैत्रीमाञ्जगतामिष्टो मैत्रीमाञ्जगतां सुहृद् ।
मैत्रीमाञ्जगतां मित्रो मैत्रीमाञ्जगतां सखा ॥ ४२३ ॥

मैत्रीमान् पुरुषः श्रीमान् यत्र यत्र प्रगच्छति ।
तत्र तत्रैव सर्वत्र पूज्यते स्वजनैर्यथा ॥ ४२४ ॥

बुद्धो हि जगतां बन्धुस्त्रैलोक्याधिपनायकः ।
सोऽपि शास्ता विभात्येवं मैत्र्या संस्फारयञ्जगत् ॥ ४२५ ॥

ये ये सत्त्वा महाभिज्ञाः सर्वलोकानुकम्पकाः ।
पूज्यन्ते सत्त्वलोकैश्च तेऽपि मैत्र्याः प्रभावतः ॥ ४२६ ॥

बोधिसत्त्वा महासत्त्वा बोधिसंभारसाधकाः ।
सर्वसत्त्वहितार्थस्थास्तेऽपि मैत्रीप्रचारिणः ॥ ४२७ ॥

यन्माता दुःखिताप्येवमा गर्भाद्बालकं सुतम् ।
पाति स्नेहोपचारेण तच्च मैत्रीप्रभावतः ॥ ४२८ ॥

यत्पिता बालकं पुत्रमभुञ्जानः स्वयं सुखम् ।
पाति स्नेहोपचारेण तच्च मैत्रीप्रभावतः ॥ ४२९ ॥

यच्च राजा प्रजाः पाति स्वयं वीरव्रतं दधत् ।
दुर्जनान् मर्दयन् सर्वान् तच्च मैत्रीप्रभावतः ॥ ४३० ॥

यच्च विद्वान् गुरुः शिष्यान् सद्धर्मार्थोपदर्शयन् ।
प्रबोध्य बालकाञ्छास्ति तच्च मैत्रीप्रभावतः ॥ ४३१ ॥

यच्च वीरा रणे स्थित्वा सद्गन्स्यरीन् प्रहारिणः ।
प्ररक्षन्ति स्वपक्षांश्च तच्च मैत्रीप्रभावतः ॥ ४३२ ॥

सार्थवाहोऽम्बुधिं गत्वा यत्नै रत्नानि साधयन् ।
सत्त्वान् पाति ददद्दान तच्च मैत्रीप्रभावत ॥ ४३३ ॥

यच्च भार्यानुयात्येव मृतेन स्वामिना सह ।
अनपेक्ष्य स्वजीवेऽपि तच्च मैत्रीप्रभावत ॥ ४३४ ॥

पितृभ्यो मृतकेभ्योऽपि ददाति पिण्डमादरात् ।
अनुशोचन् मुहुश्चापि तच्च मैत्रीप्रभावत ॥ ४३५ ॥

तिर्यग्योन्युद्भवाश्चापि पशव क्रूरमानसा ।
स्वसुतान् स्नेहत पान्ति तच्च मैत्रीप्रभावत ॥ ४३६ ॥

कृम्यादिकीटयश्चापि क्रूरा गृध्रादिपक्षिण ।
स्वबन्धून् स्नेहत पान्ति तद्धि मैत्रीप्रभावत ॥ ४३७ ॥

चण्डाला निर्घृणा रौद्रा सत्त्वहिंसारता खला ।
बान्धवास्तेऽपि रक्षन्ति तद्धि मैत्रीप्रभावत ॥ ४३८ ॥

यद्ददन्ति महासत्त्वा स्वदेहेऽप्यनपेक्षिता ।
अर्थिभ्य प्रार्थितं वस्तु तद्धि मैत्रीप्रभावत ॥ ४३९ ॥

एवमन्येऽपि ये लोका भोजयन्त परस्परम् ।
पालयन्ति महास्नेहात्तच्च मैत्रीप्रभावत ॥ ४४० ॥

मैत्री हि जगता माता पिता शास्ता गुरु प्रभु ।
पतिर्मित्रसुहृद्बन्धुस्तस्मान्मैत्री प्रसाध्यताम् ॥ ४४१ ॥

मैत्रीं विना न जायेत करुणा स्वात्मजेऽपि च ।
न मुदिता न चोपेक्षा तस्मान्मैत्री प्रधीयताम् ॥ ४४२ ॥

एता ब्रह्मविहाराख्या सम्बोधिपदसाधका ।
त्रैलोक्यभर्तृका नाथा सर्वसत्त्वानुपालका ॥ ४४३ ॥

एता विना न शोभन्ति महाभिज्ञास्तपस्विन ।
कल्पकोटिसहस्राणि तप्त्वापि दुष्कर तप ॥ ४४४ ॥

एता हि परमाचार्या सद्धर्मगुणदायका ।
एता विना न सिध्यन्ति सर्वपारमितारता ॥ ४४५ ॥

यावन्ति सुरभोग्यानि पुण्यसिद्धानि सर्वथा ।
तानि सर्वाणि जानीत मैत्रीमूलोद्भवानि हि ॥ ४४६ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन क्रोध जित्वारिरेपि (?) ।
मैत्री चित्ते समाधाय युरुध्वं प्राणिषु क्षमाम् ॥ ४४७ ॥

ततो धर्मप्रभावेण यूयं सर्वेऽनुमोदिताः।
यावज्जीवं सुखं भुक्त्वा सौखावतीं गमिष्यथ ॥ ४४८ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य नागाश्च गरुडा यतेः।
वैरानुशयतां त्यक्त्वा बभूवुर्मैत्रिचारिणः ॥ ४४९ ॥
इति दृष्ट्वा च ते सत्त्वा विस्मयहर्षसंयुताः।
धर्मानुमोदनं कृत्वा बभूवुर्मैत्रिचारिणः ॥ ५५० ॥
एवं सुभूतिना तेन नागाश्च गरुडाश्च ते।
मैत्रीधर्मोपदेशेन विनीता धर्मसत्पथे ॥ ४५१ ॥
अथ श्रीभगवान् बुद्धः सर्वदर्शी विनायकः।
भिक्षूनामन्त्रयामास संवृतिचारकानपि ॥ ४५२ ॥
पश्यध्वं भिक्षवो यूयं सुभूतिं ब्रह्मचारिणम्।
येनैते गरुडा नागा विनीता धर्मसत्पथे ॥ ४५३ ॥
एष मे श्रावकाणां च भिक्षूणां ब्रह्मचारिणाम्।
सुभूतिः कुलपुत्रोऽयमग्रोऽरणाविहारिणाम् ॥ ४५४ ॥
इति तेन मुनीन्द्रेण सुभूतिरेव सद्यतिः।
निर्दिष्टः सर्वभिक्षूणामग्रोऽरणाविहारिणाम् ॥ ४५५ ॥
अथ ते भिक्षवः सर्वे संशयोद्गतमानसाः।
छेत्तारं संशयानां तं पप्रच्छुरेवमीश्वरम् ॥ ४५६ ॥
कानि भदन्त कर्माणि कृतान्यपि सुभूतिना।
निर्दिष्टो भवता येन ज्येष्ठोऽरणाविहारिणाम् ॥ ४५७ ॥
इति तैर्भिक्षुभिः पृष्टो भगवानित्युदाहरत्।
शृणुध्वं भिक्षवः सर्वे सत्कृतं यत्सुभूतिना ॥ ४५८ ॥
सुभूतिना कृतं कर्म तत्कोऽन्यः परिभोक्ष्यते।
येनैव यत्कृतं कर्म तेनैव तत्प्रभुज्यते ॥ ४५९ ॥
भूतपूर्वमतीतेऽध्वन्यस्मिन् कल्पे च भद्रके।
वर्षसहस्रमायुश्च विंशतिगुणितं यदा ॥ ४६० ॥
तस्मिंश्च समये बुद्धः काश्यपो नाम नायकः।
विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविज्जिनः ॥ ४६१ ॥
शास्ता देवमनुष्याणां पुरुषदम्यसारथिः।
सर्वज्ञो भगवान्नाथः षडभिज्ञो मुनीश्वरः ॥ ४६२ ॥

वाराणसीमुपाश्रित्य मृगदावे जिनाश्रमे ।
व्यहरत्सर्वसत्त्वानां सद्धर्मं समुपादिशन् ॥ ४६३ ॥

तस्यैव शासने शुद्धे स्वाख्याते धर्मवैनये ।
अयं प्रव्रजितो भूत्वा महादाताप्यभूत्तदा ॥ ४६४ ॥

दशवर्षसहस्राणि ब्रह्मचर्यमपालयत् ।
प्रणिधानं तथा चायमकरोद्ब्रह्मवित्तमः ॥ ४६५ ॥

अनेन कुशलेनाहं भवेयं बौद्धसद्यतिः ।
योसौ भगवतानेन काश्यपेन सुतायिना ॥ ४६६ ॥

माणव उत्तरो नाम व्याकृत इति बोधये ।
माणव त्वं प्रजानां तु यदा वर्षशतायुषि ॥ ४६७ ॥

शाक्यमुनिर्महाबुद्धः सर्वज्ञो लोकनायकः ।
संबुद्धो भगवान्नाथस्तथागतो भविष्यसि ॥ ४६८ ॥

अस्यैव शासने चाहं भवेयं श्रावकोत्तमः ।
अर्हतामग्रसंप्राप्तो भूत्वारणाविहारिणाम् ॥ ४६९ ॥

तेनैव कर्मणा चाद्य प्रविष्टो मम शासने ।
अर्हतां ज्येष्ठतां प्राप्तस्तथारणाविहारिणाम् ॥ ४७० ॥

कानि पुनरनेनैव कर्माणि प्रकृतान्यपि ।
येनैव नागयोनौ च समुत्पन्नो बभूव सः ॥ ४७१ ॥

यत्तः क्लेशाप्रहीणत्वदुक्रान्तेन्द्रियचेतसा ।
शैक्षाशैक्षगणानां च भिक्षुणां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ४७२ ॥

अनेन रुष्टचित्तेन परुषावद्धचेतसा ।
चित्तानि संप्रदूष्यैव निकल्पानि कृतान्यपि ॥ ४७३ ॥

सदाशीविषवादेन निकुत्स्याभाणि सांघिके ।
तेनैव पातकेनैवं पञ्चजन्मशतान्यपि ॥ ४७४ ॥

नागयोनिसमुत्पन्नो बभूवायं महाविषः ।
यद्यनेन पुनस्तत्र प्रव्रज्य बुद्धशासने ॥ ४७५ ॥

सदा दानानि संदत्त्वा ब्रह्मचर्यं च पालितम् ।
तेनेदानीं तथार्हत्त्वं प्राप्य साक्षात्कृतं मुदा ॥ ४७६ ॥

अरणाविहारिणां चाग्रो निर्दिष्टोऽयं मया ध्रुवं ।
इति हि भिक्षवो यूयं जानीध्वं कर्मनाफलम् ॥ ४७७ ॥

येनैव यत्कृतं कर्म तस्यैव तत्फलं ध्रुवम् ।
न नश्यन्ति हि कर्माणि कल्पकोटिशतैरपि ।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥ ४७८ ॥

अभुक्तं क्षीयते नैव कर्म क्वापि कथंचन ।
नाग्निभिर्दह्यते कर्म वायुभिर्नापि शुष्यति ॥
उदकैः क्लिद्यते नैव भूमिष्वपि न नश्यति ॥ ४७९ ॥

अन्यथापि च नो भूता सर्वथा कर्मणां गतिः ।
शुक्लानां शुक्लता नित्यं कृष्णानां कृष्णता खलु ॥
मिश्रतैव तु मिश्राणां पक्तौ भुज्यते ध्रुवम् ॥ ४८० ॥

तस्मादपास्य कृष्णानि कर्माणि मिश्रितानि च ।
यतितव्यं शुभेष्वेव कर्मसु सुखवाञ्छिभिः ॥ ४८१ ॥

तथेति भिक्षवः श्रुत्वा ते च लोकाः प्रभाषिताः ।
बुद्धवचोमृतं पीत्वा ननन्दुरनुमोदिताः ॥ ४८२ ॥

एवमेतन्महाराज श्रुतं मे गुरुभाषितम् ।
इति मत्वा त्वया राजन् परात्मशुभवाञ्छिना ॥ ४८३ ॥

क्रोधारिं यत्नतो जित्वा क्षमाधर्मपुरस्कृतः ।
मैत्रीं भावय सत्त्वेषु स्वात्मजेषु यथा सदा ॥ ४८४ ॥

इति सुभाषितं श्रुत्वा उपगुप्तस्य सद्गुरोः ।
तथेति नृपराजः स ननन्द ससभाजनः ॥ ४८५ ॥

ये मैत्रीभावधर्मं कलिमतिहरणं तत्सुभूतेश्चरित्रं
शृण्वन्ति श्रावयन्ति त्रिभुवनसुखदं संनिपात्य जनौघान् ।
ते लोका मैत्रचित्ताखिभुवनसुखदाः क्षान्तिसौरम्ययुक्ताः
याताः सौखावतीं तेऽप्यमितरुचिमुनेर्धर्ममाराधयन्ति ॥ ४८६ ॥



द्वितीयं परिशिष्टम् ।

पुनः पुनः प्रयुक्तानां कथांशानां सूची ।

1 *The stereo-typed description of Buddha :-*

बुद्धो भगवान् सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो राजभी राजमात्रैर्धनिभिः पौरैः श्रेष्ठिभिः सार्थवाहैर्देवैर्नागैर्यक्षैरसुरैर्गरुडैः किन्नरैर्महोरगैरिति देवनागयक्षासुरगरुडकिन्नर-महोरगाभ्यर्चितो बुद्धो भगवान् ज्ञातो महापुण्यो लाभी चीवरपिण्डपातशयनासनग्लान-प्रत्ययभैषज्यपरिष्काराणां सश्रावकसंघः ॥

2 *Description of a house-holder :-*

आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवण-धनप्रतिस्पर्धी ॥

3 *Description of the physical characteristics of Buddha :-*

ददर्श भगवन्तं द्वात्रिंशता महापुरुषलक्षणैः समलंकृतमशीत्या चानुव्यञ्जनैर्विराजित-गात्रं व्यामप्रभालंकृतं सूर्यसहस्रातिरेकप्रभं जङ्गममिव रत्नपर्वतं समन्ततो भद्रकम् ।

4 *Result on an upāsaka of seeing miraculous powers of Buddha :-*

प्रसादजातो मूलनिकृत्त इव द्रुमो हृष्टतुष्टप्रमुदित उदग्रप्रीतिसौमनस्यजातो भगवतः पादयोर्निपत्य ॥

5 *Effect of the smile of Buddha :-*

स्मितं प्राविष्कार्षीत् । धर्मता खलु यस्मिन् समये बुद्धा भगवन्तः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति, तस्मिन् समये नीलपीतलोहितावदाताः अर्चिषो मुखान्निश्चार्य काश्चि-दधस्ताद्गच्छन्ति, काश्चिदुपरिष्टाद्गच्छन्ति । या अधस्ताद्गच्छन्ति, ताः संजीवं कालसूत्रं रौरवं महारौरवं तपनं प्रतापनमवीचिमर्बुदं निरर्बुदमटटं हहवं हुहुवमुत्पलं पद्मं महापद्मं नरकान् गत्वा ये उष्णनरकास्तेषु शीतीभूत्वा निपतन्ति, ये शीतनरकास्तेषु उष्णीभूत्वा निपतन्ति । तेन तेषां सत्त्वानां कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रभ्यन्ते । तेषामेवं भवति—किं नु वयं भवन्त इतश्च्युताः, आहोस्विदन्यत्रोपपन्ना इति । तेषां प्रसादसंजननार्थं भगवान् निर्मितं विसर्जयति । तेषां निर्मितं दृष्ट्वा एवं भवति—न ह्येव वयं भवन्त इतश्च्युताः, नाप्य-न्यत्रोपपन्नाः, अपि तु अयमपूर्वदर्शनः सत्त्वः, अस्यानुभावेन अस्माकं कारणाविशेषाः प्रतिप्रस्रब्धा इति । ते निर्मिते चित्तमभिप्रसाद्य तन्नरकवेदनीयं कर्म क्षपित्वा देवमनुष्येषु प्रतिसंधिं गृह्णन्ति, यत्र सत्यानां भाजनभूता भवन्ति । या उपरिष्टाद् गच्छन्ति, ताश्चातु-र्महाराजिकांस्त्रायस्त्रिंशान् यामांस्तुषितान् निर्माणरतीन् परनिर्मितवशवर्तिनो ब्रह्मकायिकान् ब्रह्मपुरोहितान् महाब्रह्मणः परीत्ताभानप्रमाणाभानाभास्वरान् परीत्तशुभानप्रमाणशुभान् शुभ-कृत्स्नाननभ्रकान् पुण्यप्रसवान् बृहत्फलानबृहानतपान् सुदृशान् सुदर्शनानकनिष्ठान् देवान् गत्वा अनित्यं दुःखं शून्यमनात्मेत्युद्घोषयन्ति, गाथाद्वयं च भाषन्ते—

आरभध्वं निष्क्रामत युज्यध्वं बुद्धशासने ।
धुनीत मृत्युनः सैन्यं नडागारमिव कुञ्जरः ॥ १ ॥
यो ह्यस्मिन् धर्मविनये अप्रमत्तश्चरिष्यति ।
प्रहाय जातिसंसारं दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥ २ ॥ इति ॥

अथ ता अर्चिषस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुमन्वाहिण्ड्य भगवन्तमेव पृष्ठतः पृष्ठतः समनुगच्छन्ति । तद्यदि भगवान् अतीतं कर्म व्याकर्तुकामो भवति, भगवतः पृष्ठतोऽन्तर्धीयन्ते । अनागतं व्याकर्तुकामो भवति, पुरस्तादन्तर्धीयन्ते । नरकोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादतलेऽन्तर्धीयन्ते । तिर्यगुपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पार्ष्ण्यामन्तर्धीयन्ते । प्रेतोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, पादाङ्गुष्ठेऽन्तर्धीयन्ते । मनुष्योपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, जान्वोरन्तर्धीयन्ते । बलचक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, वामे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । चक्रवर्तिराज्यं व्याकर्तुकामो भवति, दक्षिणे करतलेऽन्तर्धीयन्ते । देवोपपत्तिं व्याकर्तुकामो भवति, नाभ्यामन्तर्धीयन्ते । श्रावकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, आस्येऽन्तर्धीयन्ते । प्रत्येकबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, ऊर्णायामन्तर्धीयन्ते । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिं व्याकर्तुकामो भवति, उष्णीषेऽन्तर्धीयन्ते ॥

अथ ता अर्चिषो भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवत उष्णीषेऽन्तर्हिताः । अथायुष्मानानन्दः कृतकरपुटो भगवन्तं पप्रच्छ—

नानाविधो रङ्गसहस्रचित्रो वक्त्रान्तरान्निष्कसितः कलापः ।
अवभासिता येन दिशः समन्ताद्दिवाकरेणोदयता यथैव ॥ ३ ॥

गाथाश्च भाषते—

विगतोद्भवा दैन्यमदप्रहीणा बुद्धा जगत्युत्तमहेतुभूताः ।
नाकारणं शङ्खमृणालगौरं स्मितमुपदर्शयन्ति जिना जितारयः ॥ ४ ॥
तत्कालं स्वयमधिगम्य वीर बुद्ध्या
श्रोतॄणां श्रमण जिनेन्द्र काङ्क्षितानाम् ।
धीराभिर्मुनिवृष वाग्भिरुत्तमाभि-
रुत्पन्नं व्यपनय संशयं शुभाभिः ॥ ५ ॥
नाकस्माल्लवणजलाद्रिराजधैर्याः
संबुद्धाः स्मितमुपदर्शयन्ति नाथाः ।
यस्यार्थे स्मितमुपदर्शयन्ति धीराः
तं श्रोतुं समभिलषन्ति ते जनौघाः ॥ ६ ॥ इति ॥

भगवानाह—एवमेतदानन्द, एवमेतत् । नाहेत्वप्रत्ययमानन्द तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्मितं प्राविष्कुर्वन्ति ॥

(३) तया ह्यसौ श्रमणब्राह्मणनैमित्तिकसुहृत्संबन्धिबान्धवविप्रलब्धोऽपुत्रः पुत्राभिनन्दी शिववरुणकुबेरशक्रब्रह्मादीनन्यांश्च देवताविशेषानायाचते स्म । तद्यथा—आरामदेवता वनदेवताश्चत्वरदेवताः शृङ्गाटकदेवता बलिप्रतिग्राहिका देवताः । सहजाः सहधार्मिका नित्यानुबन्धा अपि देवता आयाचते स्म ।

(४) पञ्च आवेणिका धर्मा एकत्ये पण्डितजातीये मातृग्रामे । कतमे पञ्च ? रक्तं पुरुषं जानाति विरक्तं पुरुषं जानाति । कालं जानाति ऋतुं जानाति । गर्भमवक्रान्तं जानाति । यस्य सकाशाद् गर्भोऽवक्रामति तं जानाति । दारकं जानाति दारिकां जानाति । सचेद्दारको भवति, दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति । सचेद्दारिका भवति, वामं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति ।

(५) सा आत्तमनात्तमनाः स्वामिन आरोचयति—दिष्ट्या आर्यपुत्र वर्धसे । आपन्नसत्त्वास्मि संवृत्ता । यथा च मे दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति, नियतं दारको भविष्यतीति ।

(६) सोऽप्यात्तमनात्तमनाः पूर्वकायमभ्युन्नमय्य दक्षिणं बाहुमभिप्रसार्य उदानमुदानयति—अप्येवाहं चिरकालाभिलषितं पुत्रमुखं पश्येयम् । जातो मे स्यान्नावजातः । कृत्यानि मे कुर्वीत । भृतः प्रतिबिभृयात् । दायाद्यं प्रतिपद्येत । कुलवंशो मे चिरस्थितिकः स्यात् । अस्माकं चाप्यतीतकालगतानामल्पं वा प्रभूतं वा दानानि दत्वा कृत्यानि कृत्वा अस्माकं नाम्ना दक्षिणामादेक्ष्यते—इदं तयोर्यत्रतत्रोपपन्नयोर्गच्छतोरनुगच्छत्विति ।

(७) आपन्नसत्त्वां चैनां विदित्वा उपरिप्रासादतलगतामयन्त्रितां धारयति—शीते शीतोपकरणैरुष्णे उष्णोपकरणैर्वैद्यप्रज्ञप्तैराहारैर्नातितिक्तैर्नात्यम्लैर्नातिलवणैर्नातिमधुरैर्नातिकटुकैर्नातिकषायैस्तिक्ताम्ललवणमधुरकटुककषायविवर्जितैराहारैः । हारार्धहारविभूषितगात्रीमप्सरसमिव नन्दनवनविचारिणीं मञ्चान्मञ्चं पीठात्पीठमनवतरन्तीमधरिमां भूमिम् । न चास्याः किंचिदमनोज्ञश्रवणं यावदेव गर्भस्य परिपाकाय ॥

11 *Insight of the Buddha in helping persons in distress :-*

अत्रान्तरे नास्ति किंचिद् बुद्धानां भगवतामज्ञातमदृष्टमविदितमविज्ञातम् । धर्मता खलु बुद्धानां भगवतां महाकारुणिकानां लोकानुग्रहप्रवृत्तानामेकारक्षाणां शमथविपश्यनाविहारिणां त्रिदमथवस्तुकुशलानां चतुरोघोत्तीर्णानां चतुर्ऋद्धिपादचरणतलसुप्रतिष्ठितानां चतुर्षु संग्रहवस्तुषु दीर्घरात्रकृतपरिचयानां पञ्चाङ्गविप्रहीणानां पञ्चगतिसमतिक्रान्तानां षडङ्गसमन्वागतानां षट्पारमितापरिपूर्णानां सप्तबोध्यङ्गकुसुमाढ्यानामष्टाङ्गमार्गदेशिकानां नवानुपूर्वविहारसमापत्तिकुशलानां दशबलबलिनां दशदिक्समापूर्णयशसां दशशतवशवर्तिप्रविशिष्टानां त्री रात्रेस्त्रिर्दिवसस्य बुद्धचक्षुषा लोकं व्यवलोक्य ज्ञानदर्शनं प्रवर्तते—को

हीयते, को वर्धते, कः कृच्छ्रप्राप्तः, कः संकटप्राप्तः, कः संबाधप्राप्तः, कः कृच्छ्रसंकटसंबाधप्राप्तः, कोऽपायनिम्नः, कोऽपायप्रवणः, कोऽपायप्राग्भारः। कमहमपायादुद्धृत्य स्वर्गे मोक्षे च प्रतिष्ठापयेयम्, कस्य कामपङ्कनिमग्नस्य हस्तोद्धारमनुप्रदद्याम्, कमार्यधनविरहितमार्यधनैश्वर्याधिपत्ये प्रतिष्ठापयेयम्, कस्याज्ञानतिमिरपटलपर्यवनद्धनेत्रस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया चक्षुर्विशोधयामि, कस्यानवरोपितानि कुशलमूलान्यवरोपयेयम्, कस्यावरोपितानि परिपाचयेयम्, कस्य परिपक्वानि विमोचयेयम्। आह च—

अप्येयातिक्रमेद्वेलां सागरो मकरालयः।
न तु वैनेयवत्सानां बुद्धो वेलामतिक्रमेत्॥

12 The अग्रप्रज्ञप्तिसूत्रः—

तिस्र इमा ब्राह्मणगृहपतयोऽग्रप्रज्ञप्तयः। कतमास्तिस्रः? बुद्धेऽग्रप्रज्ञप्तिः, धर्मेऽग्रप्रज्ञप्तिः, संघेऽग्रप्रज्ञप्तिः॥

बुद्धेऽग्रप्रज्ञप्तिः कतमा? ये केचिद् ब्राह्मणगृहपतयः सत्त्वा अपदा वा द्विपदा वा बहुपदा वा रूपिणो वा अरूपिणो वा संज्ञिनो वा असंज्ञिनो वा नैवसंज्ञिनो नासंज्ञिनः, तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेषामग्र आख्यातः। ये केचिद् बुद्धेऽभिप्रसन्नाः, अग्रे तेऽभिप्रसन्नाः। तेषामग्रेऽभिप्रसन्नानामग्र एव विपाकः प्रतिकाङ्क्षितव्यः, देवेषु वा देवभूतानाम्, मनुष्येषु वा मनुष्यभूतानाम्। इयमुच्यते ब्राह्मणगृहपतयो बुद्धे अग्रप्रज्ञप्तिः।

धर्मे अग्रप्रज्ञप्तिः कतमा? ये केचिद्धर्माः संस्कृता वा असंस्कृता वा, विरागो धर्मस्तेषामग्र आख्यातः। ये केचिद् धर्मेऽभिप्रसन्नाः, अग्रे तेऽभिप्रसन्नाः। तेषामग्रे प्रसन्नानामग्र एव विपाकः प्रतिकाङ्क्षितव्यो देवेषु वा देवभूतानां मनुष्येषु वा मनुष्यभूतानाम्। इयमुच्यते ब्राह्मणगृहपतयो धर्मे अग्रप्रज्ञप्तिः।

संघेषु अग्रप्रज्ञप्तिः कतमा? ये केचित् संघा वा गणा वा पूगा वा परिषदो वा, तथागतश्रावकसंघस्तेषामग्र आख्यातः। ये केचित् संघेऽभिप्रसन्नाः, अग्रे तेऽभिप्रसन्नाः। तेषामग्रेऽभिप्रसन्नानामग्र एव विपाकः प्रतिकाङ्क्षितव्यो देवेषु वा देवभूतानां मनुष्येषु वा मनुष्यभूतानाम्। इयमुच्यते ब्राह्मणगृहपतयः संघेऽग्रप्रज्ञप्तिः॥

13 *Description of samsāra and attainment of Arhattva:—*

(तेन युज्यमानेन घटमानेन व्यायच्छमानेन) इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्वं साक्षात्कृतम्॥

14 *The effect of Buddha's sermon on the audience:—*

अथ भगवांस्तेषां × × × आशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशीं चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकीं धर्मदेशनां कृतवान्, यां श्रुत्वा अनेकैः स्रोतआपत्तिफलानि प्राप्तानि,

कैश्चित् सकृदागामिफलानि, कैश्चिदनागामिफलानि, कैश्चित् प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्, कैश्चिच्छ्रावकबोधौ चित्तान्युत्पादितानि, कैश्चित् प्रत्येकबोधौ, कैश्चिदनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। सर्वा च सा पर्षद् बुद्धनिम्ना धर्मप्रवणा संघप्राग्भारा व्यवस्थिता ॥

15 *Acts of* तथागत *or any other person in his previous life* :-

तथागतेनैव भिक्षवः पूर्वमन्यासु जातिषु कर्माणि कृतान्युपचितानि लब्धसंभाराणि परिणतप्रत्ययानि ओघवत्प्रत्युपस्थितान्यवश्यंभावीनि ॥

There is an addition to the above in some stories :-

मयैवैतानि कर्माणि कृतान्युपचितानि। कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति? न भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि बाह्ये पृथिवीधातौ विपच्यन्ते, नाब्धातौ, न तेजोधातौ, न वायुधातौ। अपि तु उपात्तेष्वेव स्कन्धधात्वायतनेषु कर्माणि कृतानि विपच्यन्ते शुभान्यशुभानि च।

न प्रणश्यन्ति कर्माणि अपि(कल्पकोटि)शतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालं च फलन्ति खलु देहिनाम् ॥

16 सत्कायदृष्टिः

(१) विंशति शिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा ॥

17 *Description of the king and his kingdom* :-

राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं च आकीर्णबहुजनमनुष्यं च प्रशान्तकलिकलहडिम्बडमरं तस्कररोगापगतं शालीक्षुगोमहिषीसंपन्नम् अखिलमकण्टकम्। धार्मिको धर्मराजो धर्मेण राज्यं कारयति प्रियमिवैकपुत्रकं राज्यं परिपालयति ॥

18 *An Arhat* :-

अर्हन् संवृत्तः त्रैधातुकवीतरागः समलोष्टकाञ्चनः आकाशपाणितलसमचित्तो वासीचन्दनकल्पः विद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंविप्राप्तो भवलाभलोभसत्कारपराङ्मुखः। सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः।

19 *Description of the entry of Buddha in a city* :-

अथ भगवान् दान्तो दान्तपरिवारः शान्तः शान्तपरिवारो मुक्तो मुक्तपरिवारः आश्वस्त आश्वस्तपरिवारो विनीतो विनीतपरिवारः अर्हन् अर्हत्परिवारः वीतरागो वीतरागपरिवारः प्रासादिकः प्रासादिकपरिवारः, वृषभ इव गोगणपरिवृतः, गज इव कलभगणपरिवृतः, सिंह इव दंष्ट्रिगणपरिवृतः, हंस इव हंसगणपरिवृतः, सुपर्णीव पक्षिगणपरिवृतः, विप्र इव शिष्यगणपरिवृतः, सदश्व इव तुरगगणपरिवृतः, शूर इव योधगणपरिवृतः, देशिक इव अध्वगगणपरिवृतः, सार्थवाह इव वणिग्गणपरिवृतः, श्रेष्ठीव पौरगणपरिवृतः, कोट्टराज इव मन्त्रिगणपरिवृतः, चक्रवर्तीव पुत्रसहस्रपरिवृतः, चन्द्र इव नक्षत्रगणपरिवृतः, सूर्य इव

रश्मिसहस्रपरिवृतः, धृतराष्ट्र इव गन्धर्वगणपरिवृतः, विरूढ इव कुम्भाण्डगणपरिवृतः, विरूपाक्ष इव नागगणपरिवृतः, धनद इव यक्षगणपरिवृतः, वेमचित्रीव असुरगणपरिवृतः, शक्र इव त्रिदशगणपरिवृतः, ब्रह्म इव ब्रह्मकायिकपरिवृतः, स्तिमित इव जलनिधिः, सजल इव जलधरः, विमद इव गजपतिः, सुदान्तैरिन्द्रियैरसंक्षोभितैर्यापथप्रचारः, अनेकैरावेणिकैर्बुद्धधर्मैः परिवृतो भगवांस्तत् पुरं प्रविशति ॥

20 *Effect of Buddha's entry in a place*:—

भगवतः पुरप्रवेशे एवंरूपाण्यद्भुतानि भवन्ति, अन्यानि च । तद्यथा—संक्षिप्तानि विशालीभवन्ति, हस्तिनः क्रोशन्ति, अश्वाश्च ह्रेषन्ते, ऋषभा नर्दन्ति, गृहगतानि विविधवाद्यभाण्डानि स्वयं नदन्ति, अन्धाश्चक्षूंषि प्रतिलभन्ते, बधिराः श्रोत्रम्, मूकाः प्रव्याहरणसमर्था भवन्ति, परिशिष्टेन्द्रियविकला इन्द्रियाणि परिपूर्णानि प्रतिलभन्ते, मद्यमदाक्षिप्ता विमदीभवन्ति, विषपीता निर्विषीभवन्ति, अन्योन्यवैरिणो मैत्रीं प्रतिलभन्ते, गुर्विण्यः स्वस्तिना प्रजायन्ते, बन्धनबद्धा विमुच्यन्ते, अधना धनानि प्रतिलभन्ते, आन्तरिक्षाश्च देवासुरगरुडकिन्नरमहोरगा दिव्यं पुष्प(वर्ष)मुत्सृजन्ति ॥

21 *Exclamations of a person who realises the Truth*:—

इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतम्, न पित्रा, न राज्ञा, न देवताभिः, नेष्टेन स्वजनबन्धुवर्गेण, न पूर्वप्रेतैः, न श्रमणब्राह्मणैः, यद्भगवता अस्माकं कृतम्। उच्छोषिता रुधिराश्रुसमुद्राः, लङ्घिता अस्थिपर्वताः, पिहितान्यपायद्वाराणि, विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि, प्रतिष्ठापिताः स्मो देवमनुष्येषु। आह च—

तवानुभावात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः।
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः ॥ १ ॥
त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः।
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णश्च दुःखार्णवपारमस्मि ॥ २ ॥
नरवरेन्द्र नरामरपूजित विगतजन्मजरामरणामय।
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम् ॥ ३ ॥

22 *Newly-born God on a visit to Buddha*:—

(१) धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते—कुतश्च्युतः, कुत्रोपपन्नः, केन कर्मणेति। पश्यति × × च्युताः, प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नाः, भगवतोऽन्तिके चित्तं प्रसाद्येति। अथ × × देवपुत्रस्य(कन्याया) एतदभवत्—न मम प्रतिरूपं स्याद्यदहं पर्युषितपरिवासो भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रमेयम्, यन्न्वहमपर्युषितपरिवास एव भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रमेयमिति। अथ × × देवपुत्रश्च-

विमलकुण्डलधरो हारार्धहारविराचितगात्रो मणिरत्नचित्रचूडः कुङ्कुमतमालपत्रस्पृक्कादिसंसृष्टगात्रस्तस्यामेव रात्रौ दिव्यानामुत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकमन्दारवाणां पुष्पाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा ×× उदारेणावभासेनावभास्य भगवन्तं पुष्पैरवकीर्य भगवतः पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय ॥

23 *Salutation of a newly born god to Buddha :-*

अवनम्य ततः प्रलम्बहारश्चरणौ द्वावभिवन्द्य जातहर्षः ।
परिगम्य च दक्षिणं जितारिं सुरलोकाभिमुखो दिवं जगाम ॥

24 *Return of god after the visit :-*

अथ × × देवपुत्रो वणिगिव लब्धलाभः, संपन्नसस्य इव कर्षकः, शूर इव विजितसंग्रामः, सर्वरोगपरिमुक्त इवातुरः यया विभूत्या भगवत्सकाशमागतः, तयैव विभूत्या....

25 *Query of monks to Buddha re: the divine visitor :-*

भिक्षवः पूर्वरात्रापररात्रं जागरिकायोगमनुयुक्ता विहरन्ति । तैर्दृष्टो भगवतोऽन्तिके उदारोऽवभासः । यं दृष्ट्वा संदिग्धा भगवन्तं पप्रच्छुः—किं भगवन् अस्यां रात्र्यां भगवन्तं दर्शनाय ब्रह्मा सहांपतिः शक्रो देवेन्द्रश्चत्वारो लोकपाला उपसंक्रान्ताः ? भगवानाह—न भिक्षवो ब्रह्मा सहांपतिर्न शक्रो देवेन्द्रो नापि चत्वारो लोकपाला मां दर्शनायोपसंक्रान्ताः, अपि तु योऽसौ × × × स ममान्तिके चित्तमभिप्रसाद्य प्रणीतेषु देवेषु त्रायस्त्रिंशेषूपपन्नः, सोऽस्यां रात्रौ मम सकाशमुपसंक्रान्तः । तस्य मया धर्मो देशितः । दृष्टसत्यश्च स्वभवनं गतः ॥

26 *Acts and their maturity :-*

इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः, एकान्तशुक्लानामेकान्तशुक्लः, व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एकान्तकृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि च, एकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ॥



तृतीयं परिशिष्टम् ।

श्लोकसूची ।

[The figures refer to the stories. अङ्कः कथाक्रमाङ्कं बोधयति ।]

बौद्धसंस्कृतग्रन्थावल्यां प्रकाश्यत्वेन संकल्पिता ग्रन्था: ।



१ नव धर्माः–

१ ललितविस्तरः

२ समाधिराजसूत्रम्

३ लङ्कावतारसूत्रम्

४ अष्टसाहस्रिका (प्रज्ञापारमिता)

५ गण्डव्यूहसूत्रम्

६ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्रम्

७ दशभूमिकसूत्रम्

८ सुवर्णप्रभाससूत्रम्

९ तथागतगुह्यकम्

२ माध्यमिकमते:–

१० मध्यमकशास्त्रं नागार्जुनीयम्, आचार्यचन्द्रकीर्तिविरचितया प्रसन्नपदाख्य-व्याख्यया संवलितम्

११ शिक्षासमुच्चयः शान्तिदेवविरचितः

१२ बोधिचर्यावतारः शान्तिदेवविरचितः प्रज्ञाकरमतिविरचितया पञ्जिकाख्य-व्याख्यया संवलितः

३ योगाचारमते:–

१३ सूत्रालंकारः आचार्यासङ्गविरचितः

४ विनयाः–

१४-१५ महावस्तु–लोकोत्तरवादिनां विनयः

१६ मूलसर्वास्तिवादिनां विनयः (Gilgit Mss.)

५ महायानसूत्रसंग्रहः–

१७ प्रथमः खण्डः–वज्रच्छेदिका, सुखावतीव्यूहः, कारण्डव्यूहः, राष्ट्रपालपरिपृच्छा, शालिस्तम्बसूत्रम्, प्रतीत्यसमुत्पादसूत्रम्

१८ द्वितीयः खण्डः–अन्येषां सूत्राणां संग्रहः

६ अवदानसंग्रहः—

१९ अवदानशतकम्

२० दिव्यावदानम्

२१ जातकमाला (बोधिसत्त्वावदानमाला) सुभाषितरत्नकरण्डककथा च आर्यशूरविरचिता

२२-२३ अवदानकल्पलता क्षेमेन्द्रविरचिता

७ प्रकीर्णग्रन्थाः—

२४ महायानस्तोत्रसंग्रहः

२५ अश्वघोषग्रन्थाः—बुद्धचरितम्, सौन्दरनन्दम्, शारिपुत्रप्रकरणम्

Copies of this Volume, postage paid, can be had from your usual Book-seller or from the Director, Mithila Institute, Darbhanga, on prepayment of Rs. 10.00 for Ordinary edition and Rs. 12.50 for Library edition either in cash, Postal order or M. O.